उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

MAED-103
शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श

खण्ड

1

निर्देशन की अवधारणा एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

इकाई-1 5
निर्देशन का स्वरूप एवं आवश्यकता

इकाई-2 22
निर्देशन के प्रतिमान

इकाई-3 35
निर्देशन का ऐतिहासिक विकास

इकाई-4 59
निर्देशन के सिद्धान्त एवं तकनीकी

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव कुलपति - अध्यक्ष

डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक

डॉ0 ए0 के0 सिंह कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0 पी0 गुप्ता निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रो0 राम शकल पाण्डेय पूर्व आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रो0 हरिकेश सिंह आचार्य शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

परिमापक

प्रो0 एस0 पी0 गुप्ता निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक

डा0 सरोज पाण्डेय एसोसियेट प्रोफेसर, एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली

लेखक

डॉ0 सुषमा पाण्डेय वरिष्ठ प्रवक्ता, शिक्षाशास्त्र विभाग, दी0 द0 उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, **प्रयागराज**

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित वर्ष – 2024

मुद्रक: सिग्नस इन्फार्मेशन सल्यूशन प्रा० लि०, लोढ़ा सुप्रीमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई।

IOST-023

खण्ड-1: परिचय

प्रस्तुत खण्ड में निर्देशन की अवधारणा एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर विस्तार से चर्चा की गई है।

इकाई–1 निर्देशन के स्वरूप एवं आवश्यकता से सम्बन्धित है। आज के भौतिकवादी युग में औद्योगिक क्रान्ति व संयुक्त परिवार के विघटन ने मानव जीवन को तनावयुक्त कर दिया है और स्थिति यह है कि जीवन के प्रत्येक चरण मे उसे अनुभवी व्यक्ति के सलाह की आवश्यकता अनुभव होती है। मानव जीवन का यही तनाव उसे बचपन से लेकर किशोरावस्था तक किसी न किसी रूप में उसके समक्ष उपस्थित रहता है और यह उसके शिक्षाकाल में भी उसके उपलब्धि व समायोजन क्षमता पर कुप्रभाव डालता है। तब बालक को कक्षा व विद्यालय में मानसिक सहारा देने का दायित्व शिक्षक को निभाना होता है और यही निर्देशन है।

इकाई–2 में निर्देशन के प्रतिमानों पर विस्तृत चर्चा की गई है। निर्देशन कार्यक्रम की सफलता उसके उद्देश्यों व उचित संचालन पर निर्भर करती है। उद्देश्य प्राप्ति हेतु निर्देशन के विभिन्न सिद्धान्तों का विशेष महत्व हैं । इसकी सम्पूर्णता और उद्देश्यपूर्णता को प्रत्येक क्रम में बनाये रखने के लिए प्रतिमान विकसित किये गये हैं। प्रतिमानों के विकास में सिद्धान्त विशेष महत्व रखते हैं। सिद्धान्त का विश्लेषण नियम के रूप में किया जाता है। जिसे प्रदत्तों अथवा आंकड़ों के द्वारा प्रतिपादित किया जाता है। यह प्रतिपादन मूलतः किन्हीं व्यापारों या घटनाओं के समूहों अथवा तथ्यों के मध्य पाये जाने वाले सम्बन्धों के विवेचन हेतु होता है। दूसरी ओर प्रतिमान किन्हीं जटिल संरचनाओं या प्रतिक्रियाओं की सहज अभिव्यक्ति का माध्यम है। एक प्रकार से ये सिद्धान्त के अमूर्त प्रतिरूप है।

इकाई–3 में निर्देशन के विकास के इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। निर्देशन सदैव से ही मानव समाज में विद्यमान रहा। एक अच्छा अध्यापक हर प्रकार से विद्यार्थी को समझते हुए उसे उसकी सभी क्षमताओं के साथ संसार की हर समस्या के समाधान के योग्य बनाता है। जीवविज्ञानी मानते हैं कि प्रत्येक प्राणी को जीवित रहने के लिए अपनी परिस्थिति से संघर्ष करना पड़ता है। मानव अपने विकसित मस्तिष्क के कारण प्रकृति का विलक्षण प्राणी बना और उसके साथ ही मानव विकास की राह पकड़ी और जीवन जटिलताओं से भर गया। मानव जीवन में इन जटिलताओं से संघर्ष करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक है, पर जहॉ पर संघर्ष योग्य परिस्थितियाँ नहीं होती वहीं पर उसे दूसरे के सहयोग एवं परामर्श की आवश्यकता होती है। निर्देशन की प्रवृत्ति एवं प्रक्रिया आदि काल से ही अव्यवस्थित स्वरूप में चली आ रही है परन्तु अब इसने एक व्यवस्थित सेवा का स्वरूप ग्रहण कर लिया है।

अन्तिम इकाई मे निर्देशन के सिद्धान्तों एवं तकनीक पर विस्तृत चर्चा की गई है। निर्देशन एक जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है और इसके अन्तर्गत व्यक्ति को अपनी क्षमताओं को समझने विकास करने समायोजन करने और समस्याओं के समाधान में सहायता दी जाती है। निर्देशन की सम्पूर्ण प्रक्रिया कुछ सिद्धान्तों पर कार्य करती है और इसके लिये कुछ तकनीकों का भी प्रयोग किया जाता है।

MAED-103

शैक्षिक निर्देशन व परामर्श

खण्ड–01 निर्देशन की अवधारणा एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

इकाई–01 निर्देशन का स्वरूप एवं आवश्यकता

इकाई–02 निर्देशन के प्रतिमान

इकाई–03 निर्देशन का ऐतिहासिक विकास

इकाई–04 निर्देशन के सिद्धान्त एवं तकनीकी

खण्ड–02 निर्देशन के प्रकार

इकाई–05 शैक्षिक निर्देशन

इकाई–06 व्यावसायिक निर्देशन

इकाई–07 वैयक्तिक निर्देशन

इकाई–08 कैरियर निर्देशन व स्थापन्न

खण्ड –03 परामर्श की प्रकृति

इकाई–09 परामर्श का स्वरूप

इकाई–10 जन–सम्पर्क तथा निर्देशन कार्यक्रम

इकाई–11 परामर्श की प्रक्रिया

इकाई–12 परामर्शदाता की विशेषतायें

खण्ड–04 परामर्श के प्रकार एवं परीक्षण

इकाई–13 परामर्श के विविध रूप

इकाई–14 वैयक्तिक एवं सामूहिक परामर्श

इकाई–15 निर्देशन में परीक्षणों का उपयोग

इकाई–16 विशेष समूहों के लिये निर्देशन

इकाई–01 निर्देशन का स्वरूप एवं आवश्यकता

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 निर्देशन का अभिप्राय

1.4 निर्देशन की परिभाषायें

1.5 निर्देशन की प्रकृति

1.6 निर्देशन का क्षेत्र

1.7 निर्देशन का उद्देश्य

1.8 निर्देशन की आवश्यकता

1.9 सारांश

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.11 अभ्यास कार्य

1.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

आज के भौतिकवादी युग में औद्योगिक क्रान्ति व संयुक्त परिवार के विघटन ने मानव जीवन को तनावयुक्त कर दिया है और स्थिति यह है कि जीवन के प्रत्येक चरण में उसे अनुभवी व्यक्ति के सलाह की आवश्यकता अनुभव होती है। मानव जीवन का यही तनाव बचपन से लेकर किशोरावस्था तक किसी न किसी रूप में उसके समक्ष उपस्थित रहता है और यह उसके शिक्षाकाल में भी उसकी उपलब्धि व समायोजन क्षमता पर कुप्रभाव डालता है। अतः बालक को कक्षा व विद्यालय में मानसिक सहारा देने का दायित्व शिक्षक को निभाना होता है और यही निर्देशन है। इस इकाई में हम निर्देशन प्रक्रिया को विस्तार से समझेंगे ।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि –

- निर्देशन की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगें।
- निर्देशन की महत्वपूर्ण परिभाषाओं को चिन्हित कर सकेंगे।
- निर्देशन के उद्देश्यों का उल्लेख कर सकेंगे।
- निर्देशन की प्रकृति के विषय में अपनी दृष्टि को स्पष्ट कर सकेंगे।
- निर्देशन के विषय क्षेत्र की विवेचना कर सकेंगे।

1.3 निर्देशन की अवधारणा

मानव अपने जीवन काल में व्यक्तिगत व सामाजिक दोनों ही पक्षों में अधिकतम विकास लाने के लिए सदैव सचेष्ट रहता है इसके लिये वह अपने आस पास के पर्यावरण को समझता है और अपनी सीमाओं व सम्भावनाओं हितों व अनहितों गुणों व दोषों को तय कर लेता है। परन्तु जीवन की इस चेष्टा में कभी वे क्षण भी आते हैं जहाँ पर वह इन अद्भुत क्षमताओं का प्रदर्शन अपनी योग्यता के अनुरूप नहीं कर पाता है और तब वह इसके लिये दूसरे से सहयोग लेता है जिससे वह अपनी समस्या को समझ सके एवं अपनी क्षमता के योग्य समाधान निकाल सके। यह प्रयास सम्पूर्ण जीवन चलता है और यह जीवन के विविध पक्षों के साथ बदलता जाता है यही निर्देशन कहलाता है। यह आदिकाल से ही 'सलाह' के रूप में विद्यमान थी परन्तु बीसवीं सदी में इसका वर्तमान स्वरूप उभरा। निर्देशन का अर्थ स्पष्ट करने के लिये इसका समझना आवश्यक है। अनेक विद्वानों ने इसे एक विशिष्ट सेवा माना है और यह व्यक्ति को उसके जीवन के विविध पक्षों में सहयोग देने हेतु प्रयुक्त किया जाता है।

यह वास्तव में निर्देशन कार्मिक द्वारा किसी व्यक्ति को उसकी समस्या को दृष्टिगत रखते हुये अनेक विकल्प बिन्दुओं से अवगत कराते हुये अपेक्षित राय व सहायता देने की प्रक्रिया है।

वास्तव में शिक्षा एवं निर्देशन एक दूसरे के पर्याय हैं क्योंकि इन दोनों के अन्तर्गत व्यक्ति या बालक को उसके शैक्षिक,व्यावसायिक, व्यक्तिगत, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक या शारीरिक जीवन पक्षों के विकास हेतु सहायता दी जाती है। निर्देशन वास्तव में एक अविरल प्रक्रिया है जो कि व्यक्ति हेतु जीवन पर्यन्त चाहिये। इस क्षेत्र में हर प्रशिक्षित व साधक व्यक्ति निर्देशन कार्मिक कहलाता है। इस प्रक्रिया में विद्यालय, परिवार, समाज व राजनीतिक परिवेश सम्मिलित होते हैं। विद्यालय से सम्बन्धित शिक्षक, उपबोधक तथा अन्य सहकर्मी, परिवार के अन्य सभी सदस्य, अभिभावक,मित्र राजनीतिज्ञ इस व्यापक प्रक्रिया को मूर्त स्वरूप प्रदान करते हैं। निर्देशन का अटूट क्रम है और यह व्यक्ति को उसके जीवन के विविध पक्षों में आवश्यक हो जाती है। वास्तव में यह समय व परिस्थिति के साथ केन्द्रि परामर्शदाता व सेवार्थी केन्द्रित हो जाती है जब यह परामर्शदाता को केन्द्र मानकर दी जाती है तो परामर्शदाता केन्द्रित और परामर्श प्रार्थी को केन्द्र बिन्दु मानकर दी जाती है तो यह परामर्श प्रार्थी केन्द्रित हो जाती है। हमारे देश में निर्देशनकर्मी अपनी औपचारिक भूमिका का निर्वाह अनेकानेक 'मनोनितिक' उपकरणों के अनुप्रयोग के अलावा व्यक्तिनिष्ठ या आत्मनिष्ठ प्राविधियों के माध्यम से करते चले आ रहे हैं ।

इस दृष्टि से व्यक्ति के बारे में विश्वसनीय एवं वैध आंकड़े तथा आधार सामग्री, प्राप्त करने के लिये मनोनितिक उपकरण यथा योग्यता व अभिक्षमता परीक्षण व्यक्तित्व

मापन, निर्धारण मापनी तथा अभिवृत्ति एवं रूचि तालिका परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है जिससे कि उसे आवश्यक एवं उपयोगी सलाह दी जा सके और उसे अपनी समस्याओं के प्रति उचित समझ विकसित हो यही निर्देशन कहलाता है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये ।

ख – इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

(1) निर्देशन से आप क्या समझते हैं?

----

(2) निर्देशन देने का कार्य करने वाला व्यक्ति क्या कहलाता है?

----

(3) निर्देशन की आवश्यकता व्यक्ति को कब तक होती है?

1.4 निर्देशन की परिभाषायें

निर्देशन एक प्रक्रिया है जिसके अनुसार एक व्यक्ति को सहायता प्रदान की जाती है जिससे कि वह अपने समस्या को समझते हुए आवश्यक निर्णय ले सके और निष्कर्ष निकालते हुये अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सके। यह प्रक्रिया व्यक्ति को उसे व्यक्तित्व ,क्षमता, योग्यता तथा मानसिक स्तर का ज्ञान प्राप्त कराती है यह व्यक्ति को उसकी समस्या को समझने योग्य बना देती है। यह मुख्यतया व्यक्ति को उन उपायों का ज्ञान कराती है यह व्यक्ति को उसकी समस्या को समझने योग्य बना देती है। यह मुख्यतया व्यक्ति को उन उपायों का ज्ञान कराती है जिनके माध्यम से उसे अपनी प्राकृतिक शक्तियों का बोध होता है और ऐसा होने पर उसका जीवन व्यक्तिगत व सामाजिक स्तर पर अधिकतम हितकर होता है।

यूनाइटेड ऑफिस एजुकेशन ने लिखा है –

"निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति का परिचय विभिन्न उपायों से, जिनमें विशेष प्रशिक्षण भी सम्मिलित है जिनके माध्यम से व्यक्ति को प्राकृतिक शक्तियों का भी बोध हो, कराती है जिससे वह अधिकतम, व्यक्तिगत एवं सामाजिक हित कर सकें।"

शले हैमरिन के अनुसार – "व्यक्ति को अपने आपको पहचानने में मदद करना जिससे वह अपने जीवन में आगे बढ़ सके, निर्देशन कहलाता है"। वस्तुतः इसमें

निर्देशन द्वारा स्वयं आत्मा की अनुभूति कराना मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टियों से जटिल एवं दुसाध्य होने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।''

चाइशोम इस व्याख्या को इस प्रकार लिखते है कि – रचनात्मक उपक्रम तथा जीवन से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान की व्यक्ति में सूझ विकसित करना निर्देशन का उद्‌देश्य है ताकि वह अपनी जीवन भर की समस्याओं का समाधान करने के योग्य बन सके।

जोन्स ने उपरोक्त परिभाषा का सारांश देते हुये कहा – निर्देशन से तात्पर्य ''इंगित करना, सूचित करना तथा पथ प्रदर्शन करना है। इसका अर्थ सहायता देने से अधिक है।'' इस परिभाषा में निर्देशन व्यक्ति को व्यक्तिगत एवं सामाजिक दृष्टि से उपयोगी क्षमताओं के अधिकतम विकास के लिये प्रदत्त सहायता से सम्बन्धित निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया के रूप में इंगित किया गया है –

एमरी स्टूप्स ने अपनी परिभाषा को अलग ढंग से व्यक्त करते हुये लिखा है– ''व्यक्ति को स्वयं तथा समाज के उपयोग के लिये स्वयं की क्षमताओं के अधिकतम विकास के प्रयोजन ने निरन्तर दी जाने वाली सहायता ही निर्देशन है।''

गाइडेन्स कमेटी ऑफ साल्ट लेक सिटी स्कूल्स ने निर्देशन की यथार्थवादी परिभाषा देते हुये बताया कि वास्तविक अर्थ में हर प्रकार की शिक्षा में उसे वैयक्तिक बनाने की चेष्टा या चिन्ता प्रगट होती है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक शिक्षक की जिम्मेदारी है कि वह अपने बालक की रूचियों, योग्यताओं तथा भावनाओं को समझे तथा उसकी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हेतु शैक्षिक कार्यक्रमों में तदनुरूप आवश्यक परिवर्तन लाये ।

आर.एल. गिलक्रिस्ट व डब्लू. रिन्कल्स के अनुसार – ''निर्देशन का अभिप्राय है विद्यार्थी को उपयुक्त तथा प्राप्त होने योग्य उद्‌देश्यों के निर्धारण कर सकने तथा उन्हें सिद्ध करने हेतु अपेक्षित योग्यता का विकास करने में मदद देना एवं अभिप्रेरित करना । इसमें मुख्य तथ्य थे – उद्‌देश्यों का निरूपण संगत अनुभवों का प्रावधान करना, योग्यताओं का विकास करना व उद्‌देश्यों की सम्प्राप्ति सुनिश्चित करना।''

ट्रैक्सलर के मतानुसार –''निर्देशन वह गतिविधि है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यताओं तथा रूचियों को समझने, उन्हें यथा सम्भव विकसित करने, उन्हें जीवन तथ्यों से जोड़ने तथा अन्ततः अपनी सामाजिक व्यवस्था के वांछनीय सदस्य की हैसियत से एक पूर्ण एवं परिपक्व आत्मनिर्देशन की व्यवस्था तक पहुँचने में सहायक होती है।''

लफेवर ने निर्देशन को परिभाषित करते हुये लिखा है कि शिक्षा प्रक्रिया की उस व्यवस्थित एवं गठित अवस्था को निर्देशन कहा जाता है जो युवा वर्ग का अपनी जिन्दगी में ठोस दिशा प्रदान करने की दृष्टि से उसकी क्षमता को बढ़ाने में मदद देता

है तथा वह व्यक्तिगत अनुभव राशि में समृद्धि सुनिश्चित करने के साथ–साथ प्रजातान्त्रिक समाज में अपना अनुपम अवदान करता है।

क्रो0 एवं क्रो0 ने निर्देशन की परिभाषा देते हुये कहा है "निर्देशन लक्ष्य करना नहीं है। यह अपने विचार को दूसरों पर लादना नहीं है। यह उन निर्णयों का जिन्हें एक व्यक्ति को अपने लिये स्वयं लेना चाहिए। निश्चित करना नहीं है, यह दूसरों के दायित्व को अपने ऊपर लेना है, वरन् निर्देशन वह सहायता है जो एक कुशल परामर्शदाता द्वारा किसी भी आयु के व्यक्ति को अपना जीवन निर्देशन करने, अपना दृष्टिकोण विकसित करने, स्वयं निर्णय लेने तथा उत्तरदायित्व संभालने के लिये दी जाती है।"

सभी परिभाषायें शिक्षा के सम्पूर्ण कार्यों के अधिक समीप है। जिस प्रकार से शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति का अधिकतम विकास करना है उसी प्रकार निर्देशन अपनी वितरण एंव समायोजन सेवा द्वारा इस विकास में सुविधा प्रदान करता है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क – नीचे दिये गये रिक्त स्थानों मे अपने उत्तर लिखिये।

ख – इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4. 'निर्देशन का अर्थ सहायता देने से अधिक है।' क्यों?

––

5. निर्देशन व शिक्षा को एक दूसरे का पर्याय क्यों कहा गया है ?

––

6. निर्देशन की एक उपयुक्त परिभाषा स्वयं दीजिये ?

––

1.5 निर्देशन की प्रकृति

आप निर्देशन की अवधारणा से परिचित हो चुके हैं और परिभाषाओं के द्वारा इसे और अधिक स्पष्ट किया जा चुका है। इन परिभाषाओं से निर्देशन की यह प्रकृति उभर रही है–

– यह एक प्रक्रिया है जो कि सतत् चलती है।

– यह मूर्तस्वरूप में है और एक विशेष प्रकार की सेवा के रूप में परिलक्षित होती है।

– निर्देशन का कार्य अपने स्वभाव से एक माली के कार्य जैसा है जो कि अपने पौधों के विकास की प्रक्रिया से जुड़ा रहता है।

- निर्देशन मूलरूप से आदिकाल से मानव जीवन के साथ विद्यमान रहा। इसका वर्तमान स्वरूप बीसवीं सदी के परिणाम है।
- निर्देशन मानव विकास के साथ जुड़ा रहता है। दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में यह व्यक्ति के पूर्णतम विकास का पोषक, उसकी स्वाभाविक शक्तियों का संरक्षक तथा जीवन पर्यन्त गतिशील प्रक्रिया का द्योतक माना जाता है।
- मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में यह अन्तक्रियात्मक व्यापार है जिसके जरिये एक विशेषज्ञ व्यक्ति समस्या ग्रस्त व्यक्ति को उसकी शैक्षिक, सामाजिक, व्यावसायिक एवं व्यक्तिक परिस्थितियों से समंजन की प्रक्रिया को सरल एवं सहज बनाने में मदद देता है।
- समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि में यह एक समाज एवं व्यक्ति के हित हेतु किया जाने वाला कार्य है। यह समाज कल्याण के अवसरों में विस्तार करता है।
- यह व्यक्ति की अभिवृत्तियों रूचियों एवं आकर्षणों पर विशेष ध्यान अपेक्षित है।
- निर्देशन सेवाओं का उद्‌देश्य व्यक्ति का परिस्थिति विशेष से समायोजन कायम करना है।
- निर्देशन का स्वरूप वस्तुनिष्ठ एवं आत्मनिष्ठ दोनों होता है क्योंकि इसमें व्यक्ति सम्बन्धी जानकारी एकत्र करने हेतु परीक्षा तथा परामर्श बातचीत व पूछताछ का उपयोग किया जाता है।
- इसमें व्यक्ति व समाज दोनों के कल्याण की भावना सुनिश्चित की जाती है।
- निर्देशन प्रक्रिया का स्वरूप एक जैसा न होकर बहुपक्षीय होता है। इसमें उपयुक्त सूचनाओं का संकलन निदानात्मक मूल्यांकन, साक्षात्कार, प्रेक्षण, व्यक्ति अध्ययन एवं चिकित्सात्मक पद्धतियों आवश्यकतानुसार एक साथ प्रयुक्त हो सकती है। यह किसी विशेष आयु वर्ग तक ही परिसीमित नहीं है।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये ।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से उपने उत्तर का मिलान कीजिये।

7. निर्देशन का कार्य किसके कार्य जैसा होता है?

____

8. निर्देशन का वस्तुनिष्ठ व आत्मनिष्ठ स्वरूप कब हो जाता है?

____

9. निर्देशन को दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में क्या माना जाता है?

____

1.6 निर्देशन का क्षेत्र

आप निर्देशन की प्रकृति से परिचित हो चुके हैं। निर्देशन का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति होता है परन्तु इसका विषय क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है इसके अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत सेवार्थी, समूह समस्यायें तथा अनेकानेक शैक्षिक व्यावसायिक तथा वैयक्तिक परिस्थितियाँ सम्मिलित हैं। सेवाथी से सम्बन्धित आवश्यक तथ्यों, विवरणों तथा आख्याओं का अध्ययन समूह की आवश्यकताओं को जानना, समस्याओं को विविध श्रेणियों में रखकर उनके कारण मूल तत्वों का विश्लेषण उनका सुधारात्मक पक्ष को विकसित करना इसके अन्तर्गत आता है।

निर्देशन का विषय क्षेत्र सम्पूर्ण मानव जीवन है। मानव जीवन के विविध पक्ष निर्देशन का कार्य क्षेत्र बन जाता है जिसे हम इस तरह से देख सकते हैं –

(1) शिक्षा में निर्देशन –

– शैक्षिक निर्देशन के तहत विविध पाठ्यक्रमों के चयन हेतु सहयोग ।

– शैक्षिक निष्पत्ति एवं प्रगति हेतु सहयोग।

– विद्यार्थियों में अपेक्षित अभिक्षमता स्तर, रूचि तथा अभिवृत्ति का विकास।

– शिक्षण अधिगम की व्यवस्था हेतु सहयोग ।

– अधिगम सम्बन्धी समस्याओं का निदान।

– विद्यालय में समायोजन सम्बन्धी समस्या का निदान।

– अन्य सहपाठियों के साथ सम्बन्धों का ज्ञान ।

– शैक्षिक एवं पाठ्य सहगामी क्रियाओं के द्वारा व्यक्तिगत विकास हेतु सहयोग।

(2) व्यक्तिगत निर्देशन –

व्यक्तिगत निर्देशन के अन्तर्गत उसे शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक विकास से जुड़ी समस्याओं हेतु उनका अध्ययन, व्यक्ति की विशेष परिस्थितियों का जायजा लेना, वैवाहिक व यौन सम्बन्धी विशेषताओं का अध्ययन ।

(3) व्यावसायिक निर्देशन –

– व्यक्ति में व्यावसायिक क्षमताओं के विकास की अवस्थाओं का अध्ययन।

– विविध व्यवसायों से सम्बन्धित पूर्ण एवं विश्वसनीय आंकड़ों का एकत्रीकरण।

– तथ्यों एवं जानकारी को प्रदान करने हेतु उचित माध्यमों का अध्ययन।

– व्यावसायिक अभिक्षमता विश्लेषणं।

– व्यवसाय के प्रति रूचियों,दृष्टिकोणों, बुद्धिस्तर, शारीरिक स्वास्थ्य एवं पात्रता का विश्लेषण।

(4) निर्देशन के लिये उपलब्ध विविध सेवाएँ –

उपबोधन,स्थानन, अनुवर्तन, अनुसंधान, मापन एवं मूल्यांकन ।

(5) अन्य क्षेत्र –

दर्शन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मनोमिति चिकित्सा मनोविज्ञान, सांख्यिकी, शिक्षाशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा विज्ञान आदि की विधियों का भी समावेश।

विद्यालयी निर्देशन प्रक्रिया के प्रमुख अंग –

1. **मूल्यांकन** – जिस व्यक्ति को निर्देशन देना है उसके गुणों का वस्तुनिष्ठ व विश्वसनीय ज्ञान प्राप्त करने हेतु निरन्तर मूल्यांकन की क्रिया की जाती है।

2. **समायोजन –**

– तात्कालिक शैक्षिक, व्यक्तिगत, सामाजिक एवं व्यावसायिक समस्यात्मक परिस्थिति के साथ समायोजन हेतु विद्यार्थियों को तत्काल सहयोग देना।

– व्यक्तिगत कमियों को जानना और उनको परिस्थितिजन्य उपचार करना।

– विद्यालय के शैक्षिक एवं शिक्षणेत्तर क्रियाकलापों के साथ व्यक्ति का समायोजन/ सम्बन्ध स्थापित करना।

– जीवन की वास्तविक परिस्थितियों एवं सत्य को जानने योग्य व्यक्ति की सहायता करना।

3. **नवीन परिस्थितियों को उत्पन्न करना –**

बालकों हेतु विद्यालय एवं व्यवसाय को उचित दशाओं का ज्ञान देकर समायोजन योग्य परिस्थितियॉ प्रदान करना।

4. **विकास हेतु परिवेश प्रदान करना –**

व्यक्ति की योग्यताओ को समझते हुये उन्हें सही दिशा में विकसित करना ताकि वह स्वयं तथा अपने परिवेश को समझते हुये उसके अनुकूल विकास हेतु परिवेश प्रदान करना।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

10. विद्यालय में बालक को कौन–कौन सी समस्यायें होती हैं?

____

11. व्यावसायिक निर्देशन में व्यक्ति को किसकी जानकारी दी जाती है?

____

12. निर्देशन में किन विविधों को समावेशित किया जाता है?

1.7 निर्देशन का उद्देश्य

निर्देशन व्यापक एवं संकुचित दोनों ही अर्थों में एक प्रकार की सेवा है जिसका उद्देश्य व्यक्ति एवं उसके सामाजिक सन्दर्भों की गुणवत्ता,समरसता, उत्कृष्ठता एवं परस्पर तालमेल को सँवारना, सुधारना तथा संजोना है। वास्तव में शिक्षा तथा निर्देशन के उद्देश्य एक ही जैसे हैं क्योंकि दोनों ही व्यक्ति के विकास से सम्बन्धित हैं। निर्देशन की क्रिया परिस्थितिजन्य, व्यवस्थित, औपचारिक व आनुषांगिक हो सकती है और इसके निम्न उद्देश्य होते हैं –

1. व्यक्तिगत उद्देश्य –

– निर्देशन का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति का विकास है।

– व्यक्ति की आत्म विवेचन एवं आत्मविज्ञता को बढ़ाना।

– अपने व्यक्तित्व के सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षो, गुणों एवं सीमाओं प्रतिमाओं तथा न्यूनताओं को स्वयं समझने की क्षमता विकसित करना।

– व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं, क्षमताओं,रूचियों एवं आकर्षणों के विषय में उचित समझ विकसित करना।

– व्यक्ति को अपनी क्षमताओं को समझने में सहायता देना और अपनी सामर्थ्य का एहसास कराना।

– व्यक्ति के आत्मविकास एवं वृद्धि के मार्ग को प्रशस्त करना।

2. समाज से सम्बन्धित उद्देश्य –

– निर्देशन का प्रमुख उद्देश्य मात्र व्यक्ति की मदद नहीं समाज कल्याण भी है।

– निर्देशन द्वारा समाज को तनावमुक्त पीढ़ी प्रदान करना।

– समाज की आवश्यकताओं एवं समस्याओं के प्रति व्यक्ति में उचित समझ पैदा करना।

– समाज के विविध क्षेत्रों में योग्य व कुशल व्यक्तियों को उपर्युक्त स्थान दिलाना।

– समाज को विकास हेतु उपर्युक्त सहयोग देना।

3. व्यवसाय सम्बन्धी उद्देश्य –

– व्यवसायों व व्यक्ति के मध्य संगति बढ़ाना।

– व्यवसायों के प्रति उचित समझ विकसित करना।

– व्यक्ति को उचित व्यवसाय चयनित करने में सहयोग देना।

– विभिन्न व्यवसायों को निरीक्षण करने की सुविधा प्रदान करना।

– विभिन्न व्यावसायिक अवसरों की जानकारी देना।

– व्यक्ति में विभिन्न व्यवसाय सम्बन्धी सूचनाओं का विश्लेषण करने की क्षमता का विकास करना।

– कार्य के प्रति एक आदर्श भावना जागृत करना।

4. शिक्षा सम्बन्धी उद्‌देश्य –

आप ऊपर पढ़ चुके हैं कि शिक्षा और निर्देशन का कार्य एक ही जैसा है। शिक्षा के उद्‌देश्य विविध शिक्षा स्तरों पर बदलते जाते हैं।

पूर्व प्राथमिक स्तर पर – अपनी आदतों का विकास करने में सहायता देना, भावनात्मक नियंत्रण की आदत विकसित करने, वातावरण को जानने की कुशलता विकसित करने, अभिव्यक्ति की क्षमता विकसित करना।

प्राथमिक स्तर पर – सृजनात्मक कार्यों के प्रति रूचि जागृत करना आत्मानुशासन विकसित करना, भावनात्मक सन्तुलन विकसित करना, सामाजिकता की भावना जागृत करना।

जूनियर हाई स्कूल स्तर पर – विचारों, अभिरूचियां व भावनाओं को प्रकट करने के अवसर देना, भावनात्मक नियन्त्रण की क्षमता, विकसित करना, योग्यता एवं रूचि के अनुसार व्यवसाय चयन में सहयोग देना।

हाई स्कूल स्तर पर – मानसिक स्थिरता विकसित करने में सहयोग देना, अच्छा नागरिक बनने में सहयोग देना, स्वतन्त्र कार्य करने व निर्णय करने में सहयोग देना, उचित पाठ्‌यक्रम चयन में सहयोग देना, व्यवसाय के प्रति उचित समझ विकसित करने में सहयोग देना।

उच्च शिक्षा स्तर पर – पाठ्‌यक्रम व विषय चयन सम्बन्धी समस्याओं का निदान, व्यवसाय खोजने में सहयोग, आर्थिक समस्याओं को दूर करने में सहयोग, दैनिक जीवन को तनावमुक्त बनाने में सहयोग देना।

समस्या समाधान सम्बन्धी उद्‌देश्य –

व्यक्तियों में उनके व्यक्तिगत, सामाजिक, शैक्षिक, व्यवसायिक जीवन में समायोजन की समस्या का निदान हेतु योग्यता विकसित करना।

व्यक्तियों को पारिवारिक समस्याओं , स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं एवं यौन समस्याओं को सुलझाने में सहयोग प्रदान करना।

बोध प्रश्न –

टिप्पणी – क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

13. निर्देशन के प्रमुख उद्देश्य क्या हैं?

----

14. निर्देशन व्यक्ति को उसकी किस समस्या को सुलझाने योग्य बना देता है?

1.8 निर्देशन की आवश्यकता

निर्देशन आज मानव जीवन एवं शिक्षा का अभिन्न अंग बन गया है। व्यक्ति को अपने विकास हेतु यथेष्ठ निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रगतिवादी, प्रयोजनवादी एवं भौतिकवादी जीवन दर्शन के मानव जीवन को क्लिष्ट बना दिया है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को जीवन के प्रत्येक स्तर पर निर्देशन की आवश्यकता होती है।

1. सामाजिक दृष्टिकोण से निर्देशन की आवश्यकता

समाज की सुरक्षा और प्रगति के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति ऐसे स्थान पर रखा जाय जहाँ से वह समाज के कल्याण तथा प्रगति में अधिकतम योगदान कर सके अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाय कि वह एक योग्य एवं क्रियाशील नागरिक बन जाए। आज का समाज अनेक नवीन परिस्थितियों से होकर गुजर रहा है। संयुक्त परिवार प्रणाली विघटित होती जा रही है, विभिन्न देशों की संस्कृति के साथ सम्पर्क बढ़ रहा है। नवीन उद्योगों की स्थापना हो रही है। इस बदलते हुए सामाजिक परिवेश में व्यक्ति के विकास को सही दिशा देने में निर्देशन का महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ हम सामाजिक दृष्टि से आवश्यक अन्य आधारों के सन्दर्भ में निर्देशन की आवश्यकता पर विचार करेंगे।

परिवार का बदलता स्वरूप –

प्रशिक्षण का दायित्व अब परिवार पर न रहकर विद्यालय पर आ जाने से विभिन्न प्रकार के वातावरण में पले विविध छात्रों को प्रशिक्षण देना विद्यालयों को कठिन हो गया क्योंकि विद्यालय समस्त छात्रों की पारिवारिक स्थिति, उनकी क्षमताओं, योग्यताओं आदि से अनभिज्ञ थें। अतएव छात्रों को उनकी योग्यता एवं क्षमता के अनुकुल प्रशिक्षण देने के लिए निर्देशन सहायता की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी।

बदलती व्यवसायों की तस्वीर –

विभिन्न व्यवसायों में कार्य प्रणाली विभिन्न प्रकार की होती है। इन प्रणालियों को सीखना तथा उनका प्रशिक्षण आवश्यक है। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक प्रणाली के अनुसार कार्य नहीं कर सकता है। अतः उपयुक्त प्रणाली का उपयुक्त व्यक्ति के लिए चयन निर्देशन द्वारा ही सम्भव है।

जनसंख्या में भीषण वृद्धि –

भारत की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है। सन् 1931 से हमारे देश की जनसंख्या करीब 2755 लाख थी। यही जनसंख्या 1951 में बढ़कर 3569 लाख हुई तथा अब यह जनसंख्या एक अरब हो गई। जनसंख्या वृद्धि के साथ साथ जनसंख्या की प्रकृति में भी परिवर्तन हो गया है। अब व्यक्ति ग्रामों से नगरों की ओर दौड़ रहे हैं। परिणामस्वरूप शहरों में आबादी बढ़ती जा रही है। जिससे नगरों का जीवन अत्यन्त भीड़ युक्त जटिल तथा क्लिष्ट हो गया है। अतः जनसंख्या वृद्धि ने तथा उनकी परिवर्तित प्रकृति ने निर्देशन की आवश्यकता को और बढ़ा दिया है।

सामाजिक मूल्यों का बदलता रूप –

प्राचीन मूल्यों में आध्यात्मिक शान्ति पर विशेष बल दिया जाता था,किन्तु आज भौतिकतावाद बढ़ रहा है। भारत में जाति प्रथा के प्रति व्याप्त संकुचित धारणा में परिवर्तन आता जा रहा है और अन्तर्जातीय विवाह में लोगों की रूचि बढ़ती जा रही है। इन समस्त परिवर्तित परिस्थितियों में मनुष्य अपने को किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा पाता है। तो दूसरी ओर नवीन मूल्य निर्धारित नहीं हो पा रही है। ऐसी विकट परिस्थिति में व्यक्तियों द्वारा निर्देशन – सहायता की मॉग करना स्वाभाविक है।

धार्मिक तथा नैतिक मूल्यों में परिवर्तन –

सामाजिक, आर्थिक एवं औद्योगिक परिवर्तनों का प्रभाव निश्चित रूप में हमारे नैतिक तथा धार्मिक स्तर पर पड़ा है। धार्मिक रीति रिवाज बदलने से कट्टरपंथी कम ही दृष्टिगत होते हैं। इसके साथ ही देश में व्यभिचार बढ़ता जा रहा है। नैतिक दृष्टि से कोई भी व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व का पालन ईमानदारी से नहीं करता है। ऐसी परिस्थितियों से भावी पीढ़ी को बचाने के लिए हम निर्देशन –सहायता की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं।

उचित समायोजन की आवश्यकता –

यदि व्यक्ति को अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं के अनुसार कार्य मिलता है तो इससे उसको व्यक्तिगत संतोष के साथ–साथ उत्पादन क्षमता में विकास के लिए प्रोत्साहन भी प्राप्त होता है। इस कार्य में निर्देशन अधिक सहायक सिद्ध हो सकता है।

2. राजनीतिक दृष्टिकोण से निर्देशन की आवश्यकता –

राजनीतिक दृष्टिकोण से भी देश में इस समय निर्देशन की बड़ी आवश्यकता

है। राजनीतिक क्षेत्र में निर्देशन की आवश्यकता निम्नांकित बिन्दुओं से स्पष्ट होती है।

देश के अस्तित्व की रक्षा – देश के अस्तित्व की रक्षा की दृष्टि से इस समय देश में निर्देशन की अत्यन्त आवश्यकता है। भारत अब तक पंचशील के सिद्धान्तों का अनुयायी रहा है। किन्तु चीन और उसके पश्चात् पाकिस्तान के आतंकवादी आक्रमणों ने भारत को अपनी सुरक्षा को दृढ़ करने को मजबूर कर दिया। सुरक्षा की मजबूती केवल सेना तथा युद्ध सामग्री हो जुटा लेने से नहीं होती। जरूरत है योग्य सैनिकों तथा अफसरों का चयन करना– ऐसे सैनिकों का चयन करना, जिनका मनोबल ऊँचा हो और जो आवश्यकता पड़ने पर अपना बलिदान भी दे। इसके लिए उपयुक्त चयन–विधि का विकास करना जरूरी है, उचित व्यक्तियों की तलाश करना जरूरी है। इन सबको केवल निर्देशन ही कर सकता है।

प्रजातन्त्र की रक्षा – भारत इस समय विश्व के प्रजातंत्र देशों में सबसे बड़ा देश है। यदि भारत में प्रजातन्त्र खतरे में पड़ता है तो यह समझना चाहिए कि सम्पूर्ण विश्व का प्रजातन्त्र खतरे में पड़ गया है। अतः हमें अपने प्रजातन्त्र की रक्षा आवश्यक है। हमें अपनी बुद्धि तथा विवेक से उचित प्रतिनिधियों का चयन करने की आवश्यकता है, अपने कर्तव्य व अधिकारों के ज्ञान, उचित प्रतिनिधियों का चयन, देश के प्रति हमारे दायित्व आदि की दृष्टि से भी निर्देशन की आवश्यकता बढ़ जाती है।

धर्म–निरपेक्षता – भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है। यहाँ सभी धर्मों को समान रूप से मान्यता प्राप्त है। ऐसे धर्म–निरपेक्ष राष्ट्र में अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति आचरण निश्चित करने में निर्देशन सहायक होता है।

3. शैक्षिक दृष्टि से निर्देशन की आवश्यकता –

'शिक्षा सबके लिए और सब शिक्षा के लिए है।' इस विचार के अनुसार प्रत्येक बालक को शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। शिक्षा किसी विशिष्ट समूह के लिए नहीं है। भारत सरकार ने भी संविधान में यह प्रावधान रखा है कि शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य शिक्षा से तात्पर्य है कि प्रत्येक बालक को उसकी योग्यता एवं बुद्धि के आधार पर शिक्षित किया जाए। यह कार्य निर्देशन द्वारा ही सम्भव है। शैक्षिक दृष्टि से निर्देशन की आवश्यकता निम्न आधारों पर अनुभव की जाती है।

पाठ्यक्रम का चयन – आर्थिक एवं औद्योगिक विविधता के परिणामस्वरूप पाठ्यक्रम में विविधता का होना आवश्यक था। इसी आधार पर मुदालियर आयोग ने अपने प्रतिवेदन में विविध पाठ्यक्रम को अपनाने की संस्तुति की। इस संस्तुति को स्वीकार करते हुए विद्यालयों में कृषि विज्ञान, तकनीकी, वाणिज्य, मानवीय, गृहविज्ञान, ललित कलाओं आदि के पाठ्यक्रम प्रारम्भ किये। इसने छात्रों के समक्ष उपर्युक्त पाठ्यक्रम के चयन की समस्या खड़ी कर दी। इस कार्य में निर्देशन अधिक सहायक हो सकता है।

अपव्यय व अवरोधन – भारतीय शिक्षा जगत की एक बहुत बड़ी समस्या अपव्यय से सम्बन्धित है। यहाँ अनेक छात्र शिक्षा–स्तर को पूर्ण किये बिना ही विद्यालय छोड़

देते हैं, इस प्रकार उस बालक की शिक्षा पर हुआ व्यय व्यर्थ हो जाता है। श्री के.जी. सैयद्दीन ने अपव्यय की समस्या को स्पष्ट करने के लिए कुछ ऑकड़े प्रस्तुत किये हैं। सन् 1952–53 में कक्षा 1 में शिक्षा प्राप्त करने वाले 100 छात्रों मे से सन 1955–56 तक कक्षा 4 में केवल 43 छात्र ही पहुॅच पाये। इस प्रकार 57 प्रतिशत छात्रों पर धन अपव्यय हुआ। इसी प्रकार की समस्या अवरोधन की है। एक कक्षा में अनेक छात्र कई वर्ष तक अनुत्तीर्ण होते रहते हैं। बोर्ड तथा विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में तो अनुत्तीर्ण छात्रों की समस्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। गलत पाठ्यक्रम के चयन गन्दे छात्रों की संगति या पारिवारिक कारण अपव्यय या अवरोधन की समस्या के समाधान में अधिक योगदान कर सकती है।

विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि –

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार द्वारा शिक्षा प्रसार के लिए उठाये गये कदमों के परिणामस्वरूप विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि हुई। कोठारी आयोग ने तो सन 1985 तक कितनी वृद्धि होगी उसका अनुमान लगाकर विवरण दिया है। छात्रों की संख्या में वृद्धि के साथ–साथ कक्षा में पंजीकृत छात्रों की व्यक्तिगत विभिन्नता सम्बन्धी विविधता में भी वृद्धि होगी। यह विविधता शिक्षकों एवं प्रधानाचार्य के लिए एक चुनौती रूप में होगी, क्योंकि उधर राष्ट्र की प्रगति के लिए आवश्यक है कि छात्रों को उनकी योग्यता, बुद्धि क्षमता आदि के आधार पर शिक्षित एवं व्यवसाय के लिए प्रशिक्षित करके एक कुशल एवं उपयोगी उत्पादक नागरिक बनाया जाय। यह कार्य निर्देशन सेवा द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

अनुशासनहीनता –

छात्रों में बढ़ते हुए असन्तोष तथा अनुशासनहीनता राष्ट्रव्यापी समस्या हो गयी है। आये दिन हड़ताल करना, सार्वजनिक सम्पत्ति की तोड़–फोड़ करना एक सामान्य बात है। इस अनुशासनहीनता का प्रमुख कारण यह है कि वर्तमान शिक्षा छात्रों की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने में असफल रही है। इसके साथ ही उनकी समस्याओं का समाधान के लिए विद्यालयों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जहॉ वे उचित परामर्श प्राप्त करके लाभान्वित हो सकें। निर्देशन सहायता बढ़ती हुई अनुशासनहीनता को कम कर सकती है।

सामान्य शिक्षा के क्षेत्र में वृद्धि –

हम ऊपर देख चुके हैं कि समस्त आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक वातावरण बदल गया है। इस परिवर्तित वातावरण के साथ शिक्षा क्षेत्र में भी परिवर्तन आ गये हैं समाज की आवश्यकताऍ दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं । इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु नये–नये व्यवसाय अस्तित्व में आ रहे हैं अतएव नये नये पाठ्य विषयों की संख्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है। पाठ्य विषयों का अध्ययन छात्र के लिए

कुछ विशेष व्यवसायों में प्रवेश पाने में सहायक होता है। इनमें सफलता के हेतु भिन्न भिन्न बौद्धिक स्तर, मानसिक योग्यता, रूचि तथा क्षमता आदि की आवश्यकता पड़ती है। अतः यह आवश्यक है कि माध्यमिक शिक्षा के द्वार पर पहुँचे हुए छात्र को उचित निर्देशन प्रदान किया जाय जिससे वह ऐसे विषय का चयन कर सके जो उसकी योग्यता के अनुकूल हो।

4. मनोवैज्ञानिक दृष्टि से निर्देशन की आवश्यकताएँ –

प्रत्येक मानव का व्यवहार मूल प्रवृत्ति एवं मनोभावों द्वारा प्रभावित है। उसकी मनोशारीरिक आवश्यकताएँ होती है। इन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि एवं मनोभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व को निश्चित करते हैं। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि व्यक्तित्व पर आनुवांशिकता के साथ साथ परिवेश का भी प्रभाव पड़ता है। निर्देशन सहायता द्वारा यह निश्चित होता है कि किसी बालक के व्यक्तित्व के विकास के लिए कैसा परिवेश चाहिए।

वैयक्तिक भिन्नताओं का महत्व –

यह तथ्य सत्य है कि व्यक्ति एक दूसरे से मानसिक, संवेगात्मक तथा गतिविधि आदि आदि दशाओं में भिन्न होते हैं। इसी कारण व्यक्तियों के विकास तथा सीखने में भी भिन्नता होती है। प्रत्येक व्यक्ति के विकास का क्रम विभिन्न होता है तथा उनके सीखने की योग्यता तथा अवसर विभिन्न होते हैं । यह वैयक्तिक विभिन्नता वंशानुक्रम तथा वातावरण के प्रभाव से पनपती है। एक बालक कुछ लक्षणों को लेकर उत्पन्न होता है। तो उसकी व्यक्तिगत योग्यता को निर्धारित करते हैं। यह गुण वंशानुक्रम से प्राप्त होते हैं इसीलिए बालकों में भिन्नता होती है।

वैयक्तिक विभिन्नता एक ऐसा तथ्य है जिसकी अवहेलना हम नहीं कर सकते हैं। शिक्षा बालकों के वैभिन्न के आधार पर ही दी जानी चाहिए। इस कार्य में निर्देशनसेवा अधिक सहायक होती है। यह सेवा छात्रों की इन विभिन्नताओं का पता लगाकर उनकी योग्यताओं, रूचियों एवं क्षमताओं के अनुरूप शैक्षिक, एवं व्यावसायिक अवसरों का परामर्श देती है।

उचित समायोजन –

उचित समायोजन व्यक्ति की कार्य कुशलता, मानसिक, दशा एवं सामाजिक प्रवीणता को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख कारक है। सामाजिक, शैक्षिक या व्यावसायिक कुसमायोजन राष्ट्र के लिए घातक होता है। व्यक्ति संतोषजनक समायोजन उसी दशा में प्राप्त कर पाता है जबकि उसको अपनी रूचि एवं योग्यता के अनुरूप व्यवसाय विद्यालय या सामाजिक समूह प्राप्त हो। निर्देशन सेवा इस कार्य में छात्रों की विभिन्न विशेषताओं का मूल्यांकन करके उनके अनुरूप ही नियोजन दिलवाने में अधिक सहायक हो सकती है।

भावात्मक समस्याएँ –

भावात्मक समस्याएँ व्यक्ति के जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों के कारण जन्म लेती है। ये भावात्मक समस्याएँ व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करके उसकी मानसिक शान्ति में विध्न पैदा करती है। निर्देशन सहायता द्वारा भावात्मक नियन्त्रण में सहायता मिलती है इसके साथ ही निर्देशक उन कठिनाइयों का पता लगा सकता है। जो भावात्मक अस्थिरता को जन्म देती है।

अवकाश–काल का सदुपयोग –

विभिन्न वैज्ञानिक यन्त्रों के फलस्वरूप मनुष्य के पास अवकाश का अधिक समय बचा रहता है । वह अपने कार्यों को यन्त्रों के माध्यम से सम्पन्न कर समय बचा लेता है। इस बचे हुए समय को किस प्रकार उपयोग में लाया जाय, यह समस्या आज भी हमारे सम्मुख खड़ी हुई है। समय बरबाद करना मनुष्य तथा समाज दोनों के अहित में है और समय का सदुपयोग करना समाज तथा व्यक्ति दोनों के लिए हितकर है। अवकाश के समय को विभिन्न उपयोगी कार्यों में व्यय किया जा सकता है।

व्यक्तित्व का विकास –

व्यक्तित्व शब्द की परिभाषा व्यापक है। इसके अन्तर्गत मनोशारीरिक विशेषताएँ एवं अर्जित गुण आदि सभी सम्मिलित किये जाते हैं। प्रत्येक बालक के व्यक्तित्व का समुचित विकास करना शिक्षा का उद्‌देश्य है । यही उद्‌देश्य निर्देशन का भी है ।

1.9 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत आपने निर्देशन के अभिप्राय, परिभाषायें, प्रकृति, निर्देशन का क्षेत्र, उद्‌देश्य एवं आवश्यकता के विषय में व्यापक रूप से जानकारी प्राप्त की। निर्देशन का क्षेत्र व्यापक है इसके विषय में अन्य बातें हम अगले इकाईयों में पढ़ेंगे।

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. सतत सहयोग देने की प्रक्रिया ।
2. परामर्शदाता
3. **जब तक कि समस्याओं का निदान करने की क्षमता उत्पन्न न हो जाये।**
4. **क्योंकि निर्देशन व्यक्ति को अपनी क्षमता का भी ज्ञान कराकर समस्या समाधान की शक्ति उत्पन्न करता है।**
5. **दोनों ही मानव का विकास करते हैं।**
6. **विद्यार्थी स्वयं लिखें।**
7. **माली के कार्य जैसा।**

8. व्यक्ति सम्बन्धी जानकारी हेतु जब यह परीक्षा तथा परामर्श एवं बात–चीत का सहारा लेता है।

9. पूर्णतम विकास का पोषक ।

10. समायोजन, पाठ्यक्रम चयन एवं अधिगम सम्बन्धी समस्याऐं ।

11. व्यवसाय की।

12. उद्बोधन स्थानन, अनुवर्तन, अनुसंधान तथा मापन एवं मूल्यांकन ।

13. व्यक्ति का अधिकतम सामंजस्यपूर्ण विकास।

14. सभी प्रकार की समस्याओं को सुलझाने योग्य।

1.11 अभ्यास कार्य

निर्देशन की परिभाषा देते हुए उसकी प्रकृति क्षेत्र, उद्देश्य एवं आवश्यकताओं की विवेचना कीजिए।

1.12 उपयोगी पुस्तकें

1. सिंह और कन्नौजिया : शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श, आलोक प्रकाशन अमीनाबाद, लखनऊ ।
2. वर्मा एवं उपाध्याय : शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन, रवि प्रकाशन, आगरा।
3. आर. दुबे :शैक्षिक एवं व्यावसायिक के आधार, बसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
4. S.K. Kohhar : Guidance and Counselling in Colleges and Universities.
5. K.P. Pandey : Educational and Vocational Guidance in India, Vishwavidyalaya Prakashan, Varanasi.
6. B.N. Dash : Career Guidance & Counselling, Agrawal Publications, Agra-7.
7. Sarita Kumari & Monica Tomar : Guidance & Counselling, Shree Publishers & Distributors, New Delhi.

इकाई–2 निर्देशन के प्रतिमान

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 प्रतिमान
2.4 निर्देशन के प्राचीन प्रतिमान
2.5 निर्देशन के मध्यकालीन इतिहास
2.6 निर्देशन के आधुनिक प्रतिमान
2.7 सारांश
2.8 अभ्यास के कार्य
2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.10 उपयोगी पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

निर्देशन कार्यक्रम की सफलता उसके उद्देश्यों व उचित संचालन पर निर्भर करती है। उद्देश्य प्राप्ति हेतु निर्देशन के विभिन्न सिद्धान्तों का विशेष महत्व है। इसकी सम्पूर्णता और उद्देश्यपूर्णता को प्रत्येक क्रम में बनायें रखने के लिये प्रतिमान विकसित किये गये है। प्रतिमानों के विकास में सिद्धान्त विशेष महत्व रखते है। सिद्धान्त का विश्लेषण नियम के रूप में किया जाता है। जिसे प्रदत्तों अथवा आंकड़ों के द्वारा प्रतिपादित किया जाता है। यह प्रतिपादन मूलतः किन्ही व्यापारों या घटनाओं के समूहों अथवा तथ्यों के मध्य पाये जाने वाले सम्बन्धों के विवेचन हेतु होता है। दूसरी ओर प्रतिमान किन्ही जटिल संरचनाओं या प्रक्रियाओं की सहज अभिव्यक्ति का माध्यम है। एक प्रकार से ये सिद्धान्त के अमूर्त प्रतिरूप है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेगें कि–

- निर्देशन के प्रतिमानों के प्रकारों को बता सकेंगे।
- निर्देशन के विविध प्रतिमानों की विशेषताओं का विवेचना कर सकेंगे।

2.3 प्रतिमान

प्रतिमान का अर्थ एवं वर्गीकरण

निर्देशन के प्रतिमान का अभिप्राय वह प्रारूप है जिसके अन्तर्गत निर्देशन की प्रक्रिया को संचालित किया जाता है। निर्देशक के विविध प्रतिमानों का स्वरूप समय–समय पर निर्देशन प्रक्रिया में हो रहे परिवर्तनों के कारण ही निकलकर आया है। प्रतिमानों की प्रमुख भूमिका निर्देशन प्रक्रिया को वस्तुनिष्ठ एवं सार्वभौमिक स्वरूप

प्रदान करना है। शर्टजर एण्ड स्टोन ने अपनी पुस्तक 'फण्डामैण्टल ऑफ गाइडेस' में निर्देशन के 10 प्रतिमानों का उल्लेख किया है। ये प्रतिमान विभिन्न कार्यक्रमों में अलग–अलग मनोवैज्ञानिको द्वारा विकसित किये गये। सामान्यतः विकास के क्रम की दृष्टि से निर्देशन के प्रतिमानों को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है।

निर्देशन के प्राचीन प्रतिमान

1. पार्सन का प्रतिमान
2. ब्रीवर का प्रतिमान

निर्देशन के मध्यकालीन प्रतिमान

1. प्राक्टर का प्रतिमान
2. वुण्ड्स का प्रतिमान
3. स्ट्रैंग का प्रतिमान

निर्देशन के आधुनिक प्रतिमान

1. हाऐट का प्रतिमान
2. लिटिल व चैपमैन का प्रतिमान
3. मैथ्युसन का प्रतिमान
4. सोलेन का प्रतिमान

इस प्रकार निर्देशन प्रतिमानों को तीन प्रमुख वर्गो मे विभाजित किया जाता है। इनका विस्तृत विवरण निम्नलिखित है :–

2.4 निर्देशन के प्राचीन प्रतिमान

निर्देशन के विकास काल में जिन विद्वानों ने प्रतिमानों का विकास किया, उनमें पार्सन तथा ब्रिवर का मुख्य स्थान है :–

पार्सन का प्रतिमान– फ्रैंक पार्सन ने सन् 1908 ई0 में बॉस्टन नामक नगर में अपना व्यवसायिक निर्देशन केन्द्र स्थापित किया था। इन्होने ही व्यावसायिक निर्देशन शब्द का प्रतिपादन किया। पार्सन ने व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में, सर्वप्रथम जो पुस्तक लिखी, वह है 'बिजिंग ए वोकेशन'। पार्सन के प्रतिमान को जिन लोगों ने स्वीकार किया उनमें मेयर ब्लूम फील्ड प्रमुख थे। बाद में वे व्यावसायिक केन्द्र के अध्यक्ष भी बने तथा सन् (1911) में अमेरिका के हारवर्ड विश्वविद्यालय में व्यवसायिक निर्देशन का प्रथम पाठ्यक्रम भी आरम्भ किया।

पार्सन द्वारा प्रतिपादित प्रतिमान की विशेषता यह है कि इसमें व्यवसाय की आवश्यकता या मांग के अनुरूप व्यक्ति की अभियोग्यताओं का आकलन किया जाता हैं। पार्सन का मानना था कि यदि व्यक्ति को अपनी रूचियों व योग्यताओं के अनुरूप व्यवसाय प्राप्त हो जाता है तो इससे उस 110 / शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श व्यक्ति को न केवल व्यवसाय संतोष प्राप्त होगा बल्कि वह व्यक्ति समाज में भी सार्थ भूमिका का निर्वाह कर सकेगा। पार्सन ने अपने अनुभवों के आधार पर स्वीकार किया कि व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकता है– अनुभवी व्यक्ति द्वारा व्यवसाय के चयन में सहायता प्राप्त

करना। व्यक्ति की इसी आवश्यकता की पूर्ति के साधन के रूप में पार्सन ने व्यावसायिक निर्देशन का प्रतिपादन किया।

इस विश्लेषणात्मक अध्ययन के द्वारा व्यवसाय विशेष के चयन की व्यक्तिगत इच्छा से पहले व्यक्ति की अभियोग्यताओं को जानने का प्रयास किया। इससे निर्देशन प्रक्रिया के अन्तर्गत व्यक्ति में आत्मविश्लेषण शक्ति या क्षमता के विकास को ज्ञात करने का प्रयत्न किया जाता है। जिससे व्यक्ति अपने द्वारा चयनित व्यवसाय के अनुकूल ही अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं के विकास पर ध्यान केन्द्रित कर सकें। इस प्रक्रिया में उसे (व्यक्ति) विभिन्न व्यवसाय स्थलों एवं उद्योगों में भेजा जाता है, जिससे वह वहां की वास्तविक परिस्थितियों से अवगत हो सके और उसी के अनुरूप सही निर्णय ले सकें।

पार्सन का यह मॉडल बाह्य रूप से अत्यन्त सरल एवं उपयोगी लगता है। यद्यपि वैज्ञानिकों द्वारा पार्सन के मॉडल के आधार पर किये गये अनुसंधानों से अनेक त्रुटियाँ सामने आई हैं। पार्सन प्रतिमान की आलोचना इस आधार पर की गई कि इसमें सिद्धान्त प्रारम्भ में ही व्यावहारिक स्वरूप ग्रहण कर लेता है, जिससे सिद्धान्त की वैध ाता न्यून रह जाती है। वैज्ञानिकों ने पार्सन के प्रतिमान को विधि की दृष्टि से भी दोषपूर्ण माना। इस प्रतिमान की सार्वभमिक उपयोगिता के सम्बन्ध में भी वैज्ञानिकों को संदेह है क्योंकि इस प्रतिमान का प्रतिपादन पार्सन ने केवल एक नगर के कुछ अप्रवासी युवाओं के आधार पर किया था।

ब्रीवर का प्रतिमान—ब्रीवर की पुस्तक 'एजुकेशन एण्ड गाइडेन्स' द्वारा उनके इस प्रतिमान की जानकारी होती है। ब्रीवर ने 1916—17 में हावर्ड विश्वविद्यालय में अध्यापन का कार्य किया। तदुपरान्त कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा के पाठ्यक्रम एवं व्यावसायिक निर्देशन का अध्यापन किया। ब्रीवर ने माध्यमिक विद्यालयों में कार्य करने पर बल दिया और माध्यमिक स्तर के लिए परामर्शदाताओं को तैयार करने के कार्य को प्रमुखता दी। निर्देशन को स्पष्ट करते हुए ब्रीवर ने लिखा है, "निर्देशन को बहुधा गलत ढंग से समझा जाता है। इसे 'आत्म—निर्देशन' के रूप में ही ढंग से जाना जा सकता है। इसे अभियोजन, सुझाव, निर्देशित करने अथवा किसी के उत्तरदायित्व निभाने के रूप में लेना भ्रामक है।"

माध्यमिक विद्यालयों के अपने अनुभवों के आधार पर ब्रीवर ने कहा कि निर्देशन बालाकों को समझने और संगठित करने वाला कार्य है जिससे वे व्यक्तिगत व सहयोगी कार्यो में सुधार ला सकें। इस धारणा के पीछे ब्रीवर का स्पष्ट विचार था कि शिक्षा का उद्देश्य बालक को अर्थपूर्ण जीवन के लिए तैयार करना है जिससे वह ज्ञान व बुद्धिपूर्ण लक्ष्य को ग्रहण कर सकें। इस प्रकार शिक्षा व निर्देश ब्रीवर के अनुसार दो भिन्न वस्तुए न थी वरन् परस्पर सम्बन्धित पूरक प्रक्रियाओं के रूप में उनका अस्तित्व है। ब्रीवर महोदय ने निर्देशन प्रतिमान का प्रतिपादन करते हुए सात मानकों का उल्लेख किया हे, जो इस प्रकार है :—

1. प्रार्थी को किसी समस्या का समाधान, कार्य विशेष के सम्पादन अथवा लक्ष्य की प्राप्ति हेतु ही निर्देशन प्रदान किया जाता है।
2. निर्देशित होने वाले व्यक्ति (प्रार्थी) के द्वारा उत्साह प्रदर्शन और निर्देशन की मांग को स्वीकार करना आवश्यक है।
3. निर्देशन अथवा परामर्शदाता का व्यवहार मित्रवत्, सहानुभूतिपूर्ण एवं बुद्धिपूर्ण होना चाहिए।
4. निर्देशन अनुभवी, ज्ञानी, बुद्धिमान होना भी आवश्यक है।
5. निर्देशन की पद्धतियां नवीन अनुभवों तथा ज्ञान प्राप्ति का अवसर सुलभ कराती है।
6. निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्ति की निर्देशन में सहमति, निर्देशन का स्वेच्छानुसार उपयोग एवं स्वयं निर्णय लेने की स्वतंत्रता होनी आवश्क है।
7. निर्देशन का समग्र लक्ष्य यह होता है कि व्यक्ति कालान्तर में 'आत्म–निर्देशन' की प्रक्रिया के पक्ष में ही जायें।

ब्रीवर के प्रतिमान से दो धारणायें स्पष्ट होती है– पहली, शिक्षा व निर्देशन में सम्बन्ध तथा दूसरी, आत्म–निर्देशन जिसे निर्देशन के पर्याय के रूप में स्वीकार किया गया है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. प्रथम निर्देशन प्रतिमान किसनें स्थापित किया?

....

2. ब्रीवर की किस पुस्तक में उनके प्रतिमान की जानकारी होती है?

....

2.5 निर्देशन के मध्यकालीन प्रतिमान

अभी आपने निर्देशन के प्राचीन प्रतिमान को पढ़ा अब हम निर्देशन के कुछ मध्यकालीन प्रतिमानों के विषय में पढ़ेगें। ब्रीवर के द्वारा प्रतिपादित प्रतिमान के पश्चात् निम्न प्रतिमानों का प्रतिपादन किया गया।

1. **प्राक्टर का प्रतिमान–**इस प्रतिमान का प्रतिपादन विलियम एम0प्राक्टर ने किया। उनके अनुसार निर्देशन मुख्य रूप से वितरण एवं समायोजन में सहायता देना है। वितरण शब्द से यहॉ अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसमें बालक अपने आसपास के वातावरण को समझने की क्षमता विकसित करने हेतु प्रेरित किया जाता है और समायोजन वास्तव में परामर्शदाता द्वारा दी जाने

वाली सहायता है जो कि व्यक्ति को अपने लक्ष्य के अनुरूप अपने तथा वातावरण के सम्बन्ध में प्राप्त ज्ञान को एकीकृत करने में सफल न होने पर दी जाती है उक्त दोनों कार्यो को करते हुये निर्देशन के लक्ष्य होगें।

- Ø प्रार्थी को उपयुक्त लक्ष्यों के निर्धारण में सहयोग प्रदान करना।
- Ø प्रार्थी में भविष्य में अपेक्षित क्रियाओं को सम्पादित करते हुये सन्तोष प्राप्ति की कुशलता विकसित करना।
- Ø विद्यालयी क्रियाओं के साथ सामाजिक क्रियाओं एवं व्यक्तिगत सुख के लिये उपयुक्त उद्देश्यों के निर्धारण की दक्षता विकसित करना।
- Ø प्रार्थी को निम्न क्षेत्रों से सम्बन्धित उपयुक्त सूचना प्राप्ति की कुशलता विकसित करना।

अ) विद्यालयी एवं गैर विद्यालयी क्रियाकलाप में उसकी सफलता एवं संतोष के मार्ग एवं उपाय।

ब) बालक की व्यक्तिगत रुचिये एवं क्षमतायें।

स) विद्यार्थी के चयन का निर्धारण करने वाली सभी वास्तविक क्षमतायें।

द) विद्यालयी जीवन से इतर अन्य व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं रोजगार के अवसर।

प्रतिमान की विशेषता–यह मुख्य रूप से व्यक्ति एवं वातावरण के मध्य संतुलन एवं समायोजन पर ही केन्द्रित है। इसका विषय क्षेत्र सुकुचित है। इसमें निर्देशन को मुख्य रूप केवल समस्या से मुक्ति का साधन माना गया है और इसके साथ ही इस बात पर भी बल दिया जा रहा है कि निर्देशन का एक प्रमुख कार्य व्यक्ति को सुखी जीवन जीने हेतु आवश्यक सुविधा भी प्रदान करना है।

वुण्ड्स का प्रतिमान–

विलियम वुण्ड्स ने निर्देशन को नैदानिक प्रक्रिया के रूप में माना। 1879 में इन्होंने जर्मनी में अपनी मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला की स्थापना की। यह प्रतिमान अपने समय में बहुत प्रसिद्ध हुआ क्योंकि–

- Ø तात्कालिक निर्देशन पद्धतियों की प्रकृति अस्पष्ट थी।
- Ø इसमें व्यक्ति समग्र आन्तरिक विश्लेषण को केन्द्रिय महत्व दिया गया।
- Ø निर्देशन के क्षेत्र में संगठनात्मक व्यवस्था को जन्म देने कार्य इसी प्रतिमान में हुआ।

इस प्रतिमान की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है–

IV. निर्देशात्मकता.

V. सलाहकार

VI. प्रशासनिक

VII. चिकित्सा समूहों में निर्देशन क्रियाओं के विभाजन

VIII. विद्यार्थियों को सर्वागीर्ण लाभ पहुचाने का लक्ष्य।

इस प्रतिमान के प्रमुख सोपान है–

I. विश्लेषण

II. संश्लेषण

III. निदान एवं उपचार

IV. अनुगामी कार्यक्रम

यह प्रतिमान आर्थिक व कुशलता की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है।

जोन्स तथा मेयर का प्रतिमान–

जोन्स एवं मेयर के प्रतिमान की आधारभूत मान्यता है कि निर्देशन निर्णय लेने में सहायता है। अस्तु मेयर के ही शब्दों में–

"निर्देशन की परिस्थिति तभी उत्पन्न होती है जब विद्यार्थी को चुनाव विवेचन तथा समायोजन के लिए सहायता की आवश्यकता होती है। इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध निर्णय लेने की प्रक्रिया से है।

जोन्स तथा मेयर का मानना है कि निर्णय लेने की समस्या तभी उत्पन्न होती है जब–

1. व्यक्ति यह नही जानता कि किन सूचनाओं की आवश्यकता उसे हैं।
2. किन सूचनाओं की उसे आशा रखनी चाहिए।
3. क्या उपलब्ध सूचनाओं का उपयोग करने में वह असमर्थ है।

उपरोक्त परिस्थिति में निर्णय लेने वाले प्रतिमान के कुछ तथ्य महत्वपूर्ण माने जाते है–

स्ट्रैंग का प्रतिमान–

स्ट्रैंग के निर्देशन प्रतिमान की केन्द्रीय धारणा चयन प्रक्रिया पर आधारित है। चयन अर्थात् अनेक व्यवस्थाओं या स्रोतों में से विकल्पों का चयन। इस आधार पर स्ट्रैंग ने यह प्रतिपादित किया कि निर्देशन प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति को जानने, शैक्षिक अवसरों को जानने तथा विद्यार्थी को उपयुक्त विकल्प के चयन में सहायता प्रदान करने से सम्बन्धित है। इस प्रकार प्रतिमान में निहित मान्यताए निम्नलिखित है–

I. विद्यार्थी को समय–समय पर विशिष्ट व्यवसायिक सहायता की आवश्यकता होती है; जिससे वे स्वयं को भली प्रकार से समझने में समर्थ हो सकें।

II. यह विशेष सहायता शैक्षिक प्रकृति की होती है।

III. विद्यार्थियों में सीखने की अन्तः निहित प्रतिमा होती है और वे स्वयं के लिए योजना बनाने में समर्थ होते है।

IV. विद्यार्थियों को सहायता प्रदान करने के कार्य में अनेक विधियों मतों तथा तकनीकों का समावेश करना चाहिए।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि स्ट्रैंग के प्रतिमान की धारणा अधिक व्यापक है तथा इस प्रतिमान में परामर्शदाता को अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है किन्तु आलोचको की यह मान्यता है कि यह प्रतिमान किसी स्थायी दर्शन पर आधारित नही है और नही परामर्शदाता विभिन्न विधियों में निपुण होता है अतः इसकी व्यावहारिकता संदिग्ध है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

3. वुण्डस ने प्रतिमान को कौन से रूप में देखा?

....

4. जोन्स व मेयर ने निर्देशन को क्या माना?

....

5. स्ट्रैंग का सिद्धान्त किस पर आधारित है?

....

6. निर्देशन को विवरण एवं समायोजन की प्रक्रिया किसने माना?

....

2.6 निर्देशन के समकालीन प्रतिमान

पूर्व में आप यह समझ चुके होंगे कि निर्देशन की आवश्यकता एवं स्वरूप बदलते रहे हैं और इसका कारण उसके विविध प्रतिमानों का उद्भव भी माना जा सकता है, परन्तु कालान्तर में वर्तमान समय में निर्देशन सेवाओं के व्यापक प्रचार–प्रसार ने पुनः अनेक शिक्षा शास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों को नए निर्देशन प्रतिमानों की संकल्पना के लिए प्रेरित किया है।

हायट का प्रतिमान–

1962 में प्रतिपादित अपने प्रतिमान में हायर ने निर्देशन को विद्यालयी सेवा या सहयोग के रूप में स्वीकार किया है। परामर्शदाता एक केन्द्रिय तत्व होता है। जिसपर निर्देशन कार्यक्रम के संचालन का समग्र दायित्व रहता है। इसमें परामर्शदाता का सीधा सम्बन्ध अध्यापक से होता है।

हायट के प्रतिमान की स्पष्ट मान्यता है कि परामर्श सेवाओं की सफलता तभी सम्भव है जबकि इसके लक्ष्य, विद्यालय के उद्देश्यों के साथ ही अंगीकृत किये जाये। यही कारण है कि इस प्रतिमान में प्रतिमान में परामर्शदाता की शिक्षा के प्रति प्रतिबद्धता को महत्वपूर्ण माना गया है। परामर्शदाता का प्रमुख कार्य शिक्षकों को प्रोत्साहित करना है। यहाँ पर शिक्षा व निर्देशन को सहगामी प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया गया है तथा शिक्षक एवं परामर्शदाता तथा शिक्षक एवं शैक्षिक प्रशासन के मध्य विरोध को न्यून रखने का प्रयास किया गया है। अस्तु विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य की जिम्मेदारी किन्हीं व्यक्तियों तक सीमित न रहकर सम्पूर्ण व्यवस्था पर आ जाता है।

आलोचक मानते है कि इस प्रतिमान में निर्देशन का महत्व कम होता है तथा विशेषज्ञों की सेवाओं का अवमूल्यन होता हे अतः यह उचित नही है।

लिटिल तथा चैपमैन का प्रतिमान–

इस प्रतिमान में व्यक्तिगत व्यावसायिक, शैक्षिक सामाजिक अनुभवों तथा विद्यार्थी के जीवन की समस्त अवस्थाओं में सहायता करने पर विचार किया गया है अतः यह प्रतिमान अन्य प्रतिमानों की तुलना में अधिक व्यापक है। वास्तव में निर्देशन का विकासात्मक चरित्र इस प्रतिमान की प्रमुख विशेषता है।

इस प्रतिमान की विस्तृत व्याख्या लिटिल एवं चिपमैन की पुस्तक 'डेवलपमेण्टल गाइडेंस इन सेकेण्ड्री स्कूल' में प्राप्त होती है। इस प्रतिमान में आत्मज्ञान के आध ाार पर व्यक्तिगत पूर्णता तथा प्रभावकता अर्जित करने पर विशेष बल दिया गया है। निर्देशन द्वारा विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया को आगे बढ़ाने का प्रयास किया जाता है। अतः लिटिल एवं चिपमैन ने परामर्शदाता, अध्यापक, प्रशासन, विशेषज्ञ तथा अन्य कार्यकर्ता के सम्मिलित प्रयासों को निर्देशन कार्यक्रम का अभिन्न अंग माना है। निर्देशन विकास व शिक्षा के साथ निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।

मैथ्यूसन का प्रतिमान–

अपनी पुस्तक 'गाइडेंस, पालिसी एण्ड प्रैक्टिस' में मैथ्यूसन ने चार ऐसे अंगों का उल्लेख किया है जिसका सम्बन्ध निर्देशन की आवश्यकताओं से है। ये चार अंग है–

I) मूल्यांकन तथा स्वयं को समझने की आवश्यकता

II) स्वयं तथा वातावरण की मॉगा तथा वास्तविकताओं के मध्य समायोजन करने की आवश्यकता

III) वर्तमान तथा भविष्य की स्थितियों के प्रति सचेत रहने की आवश्यकता।

IV) व्यक्तिगत क्षमताओं को विकसित करने की आवश्कता।

मैथ्यूसन ने अपने प्रतिमान में निर्देशन के स्वरूप को विकासात्मक माना है–

- Ø निर्देशन से व्यक्ति को अधिक सूचनाएँ प्राप्त होती है।
- Ø वह स्वयं की योग्यताओं को निर्धारित योजना के अनुसार गत्यात्मक बनाने का प्रयास करता है।
- Ø निर्देशन में सहायता से व्यक्ति, लम्बे समय तक अपने विकास की योजना बना सकता है।

इस प्रतिमान में विद्यालय के समस्त कर्मचारियों के सहयोग तथा उस व्यक्ति की स्वयं की सहभागिता को आवश्यक बताया है। इसमें विद्यार्थियों के स्वयं की क्षमताओं के विकास पर बल दिया गया। इस प्रतिमान के व्यावहारिकता पर विद्वानों में मतभेद है क्योंकि विद्यालय के कर्मचारियों का सहयोग किस सीमा तक चाहिये और कैसे, उनके प्रशिक्षण की क्या व्यवस्था है। यह स्पष्ट नही है।

2.5 निर्देशन के मध्यकालीन प्रतिमान

1. **प्रॉक्टर का प्रतिमान**–विलियम एम0 प्रॉक्टर द्वारा प्रतिपादित प्रतिमान में निर्देशन का वर्णन और समायोजन की प्रक्रिया द्वारा किया गया है। उनके अनुसार निर्देशन के

प्रमुख कार्यो से भी वितरण एवं समायोजन सम्मिलित है। वितरण से अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसमें बालकों को अपने पर्यावरण में स्वंय को पहचानने हेतु प्रेरित किया जाता है तथा समायोजन को प्रॉक्टर ने परामर्शदाता द्वारा दी गई सहायता के रूप में स्वीकार किया है जो कि बालक या प्रार्थी के अपने लक्ष्य के अनुरूप, अपने तथा वातावरण के सम्बन्ध में प्राप्त ज्ञान को एकीकृत करने में असफल होने पर प्रदान की जाती है। उक्त दोनों कार्यो को करते हुए निर्देशन के लक्ष्य होगें।जो लक्ष्य सुझाए गए हैं, वे इस प्रकार हैं:–

1. प्रार्थी या बालकों को उपयुक्त योजनाओं तथा लक्ष्यों के निर्धारण में सहायता प्रदान करना।
2. ऐसी उपयुक्त क्रियाएं जिसमें बालक भविष्य में संलग्न होगें, उनमें उच्च श्रेणी की कार्य कुशलता व संतोष की प्राप्ति हेतु सहायता प्रदान करना।
3. विद्यालय की क्रियाओं के अतिरिक्त अन्य उपयोगी ऐसी क्रियाओं में बालकों को संलग्न होने में सहायता प्रदान करना कि वे व्यक्तिगत सुख और समाज कल्याण के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अग्रसारित हो सकें।
4. बालकों या प्रार्थी को निम्न क्षेत्रों में भी आवश्यक सूचना प्राप्त करने में सहायता प्रदान करना–
   (क) विद्यालयी तथा गैर–विद्यालयी क्रिया–कलाप में उसकी सफलता व संतोष की सम्भावनाएं।
   (ख) बालक की व्यक्तिगत रूचियां व क्षमताएं।
   (ग) जीव्रन की वे क्रियाएं जो बालक के चयन के निर्धारण का आधार बनेंगी।
   (घ) विद्यालय के बाहर अन्य एजेन्सियों से प्राप्त होने वाली प्रशिक्षण सुविधाएं एवं अवसर।

2. वुण्ड्स का प्रतिमान–निर्देशन को नैदानिक प्रक्रिया के रूप में विलियम वुण्ड्स ने माना तथा इसी रूप में अपने निर्देशन प्रतिमान का प्रतिपादन किया है 1879 में इन्होंने अपनी मनावैज्ञानिक प्रयोगशाला जर्मनी में स्थापित की तो वहां उनके एक शिष्य जेम्स एम0 कैटल ने व्यक्तिगत भेदों के मानसिक मापन की अमेरिकी प्रणाली का उपयोग कर, मनोविश्लेषण के क्षेत्र में एक नयी विधि को जन्म दिया। इसके पश्चात् 1905 मे बिने एवं साइमन ने बुद्धि परीक्षणों का निमाग्र किया। निर्देशन नैदानिक उपागम में मुख्य प्रयास–व्यावसायिक रूप से महत्वपूर्ण एवं उपयोगी मानसिक गुणों के मापन के साधनों के विास से सम्बन्ध रहे हैं।

नैदानिक प्रतिमान के विकास को मुख्य बल तत्कालीन निर्देशन पद्धतियों की अस्पष्ट प्रकृति के कारण मिला। चूंकि इसमें व्यक्ति के समग्र आंतरिक विश्लेषण को केन्द्रीय महत्व दिया गया है, इस कारण से भी इस प्रतिमान की साख बढ़ी है। साथ ही निर्देशन के क्षेत्र में संगठनात्मक व्यवस्था को जन्म देने में भी इस उपागम का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। निर्देशात्मक, सलाहकार, प्रशासनिक, चिकित्सा समूहों में निर्देशन क्रियाओं के विभाजन व विद्यार्थियों को सर्वांगीण लाभ पहुंचाने का लक्ष्य, इस प्रतिमान की विशेषताएं हैं। वुण्ड्स के प्रतिमान में, निर्देशन के चरणों के अन्तर्गत मुख्य

स्थान है– विश्लेषण, संश्लेषण, निदान के चरणों तथा अनुवर्ती आदि कार्यक्रमों का। वुण्ड्स का प्रतिमान आर्थिक एवं कुशलता की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है।

जोन्स तथा मेयर का प्रतिमान–जोन्स तथा मेयर का निर्देशन प्रतिमान मुख्यतः 'निर्णय लेने' की प्रक्रिया को केन्द्र में रखकर विकसित किया गया। मेयर के शब्दों में, "निर्देशन की परिस्थिति तभी उत्पन्न होती है जब विद्यार्थी को चुनाव, विवेचन तथा समायोजन के लिये सहायता की आवश्यकता होती है। इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध निर्णय लेने की प्रक्रिया से है।" इस प्रतिमान में निर्णय लेने में, सहायता के रूप में निर्देशन को माना जाता है।

जोन्स तथा मेयर का मानना है कि निर्णय लेने की समस्या तभी उत्पन्न होती है, जब–

(क) व्यक्ति यह नही जानता कि किन सूचनाओं की आवश्यकता उसे है।

(ख) किन सूचनाओं की उसे आशा रखनी चाहिए।

(ग) क्या उपलब्ध सूचनाओं का उपयोग करने में वह असमर्थ है।

उपरोक्त परिस्थितियों में निर्णय लेने वाले प्रतिमान के कुछ तथ्य महत्वपूर्ण माने जाते हैं–

अ– निर्देशन का मात्र अनुमान पर ही व्यापक होना।

ब– व्यक्तियों की रूचियों तथा योग्यताओं के बीच अन्तर होना।

स– व्यक्ति का समस्त समस्याओं के निराकरण में असमर्थ होना।

द– विद्यालय को सहायता देने वाले स्रोत के रूप में लाभदायक स्थिति।

इन धारणाओं को केन्द्र में रखते हुए जोन्स तथा मेयर ने अपने प्रतिमान की रूपरेखा प्रस्तुत की। इस प्रतिमान की विशेषता यह है कि इसमें व्यक्ति की सहभागिता निरन्तरण निर्णय में रहती है। इससे निर्देशन की बाह्यशीलता में वृद्धि होती है। इसे सरल में स्वीकार करने की प्रेरणा भी व्यक्ति को प्राप्त होती है।

स्ट्रैंग का प्रतिमान–स्ट्रैंग के निर्देशन प्रतिमान की केन्द्रीय धारणा 'चयन' प्रक्रिया पर आधारित है। स्ट्रैंग द्वारा प्रतिपादित निर्देशन प्रतिमान में, निर्देशन को एक चयन व्यवस्था के रूप में दिखाया गया है। चयन से इनका आशय, अनेक व्यवस्थाओं अथवा स्रोतो में से विकल्पों के चयन से है। इस आशय के आधार पर स्ट्रैंग ने स्वीकार किया कि निर्देशन प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति को जानने, शैक्षिक अवसरों को जानने तथा विद्यार्थी को उपयुक्त विकल्प के चयन में सहायता प्रदान करने से सम्बन्धित है। इस प्रकार के प्रतिमान में निहित मान्यताएं निम्नलिखित हैं–

(क) विद्यार्थियों को समय–समय पर विशिश्ट व्यावसायिक सहायता की आवश्कता होती है, जिससे वे स्वयं को भली प्रकार से समझने में समर्थ हो सकें।

(ख) यह विशेष सहायता शैक्षिक प्रकृति की होती है।

(ग) विद्यार्थियों में सीखने की अन्तःनिहित प्रतिभा होती है और वे स्वंय के

लिए योजना बनाने में समर्थ होते हैं।

(घ) विद्यार्थियों को सहायता प्रदान करने के कार्य में अनेक विधियों, मतों तथा तकनीकों का समावेश करना चाहिए।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ठ है कि स्ट्रैंग के प्रतिमान की धारणा अधिक व्यापक है तथा इस प्रतिमान में उपबोधक (परार्शदाता) को अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होती है। इस प्रतिमान में एक परिवर्तित स्वरूप के अन्तर्गत व्यक्ति को समझने हेतु विशेष बल दिया जाता है, जिससे निर्देशन कार्यक्रम गतिशील हो न कि उसमें अवरोध उत्पन्न हो। आलोचकों का मानना है कि स्ट्रैंग का यह प्रतिमान निर्देशन के किसी स्थायी दर्शन पर आधारित नही है और न ही कोई परामर्शदाता विभिन्न विधियों का प्रयोग करने में निपुण हो सकता है। इस कारण निर्देशन का यह प्रतिमान कम व्यावहारिक है।

2.6 निर्देशन के आधुनिक प्रतिमान

1. हॉयट का प्रतिमान– हॉयट ने अपने इस प्रतिमान का प्रतिपादन 1962 में किया था। इस प्रतिमान की आधारभूत मान्यताएं निम्नलिखित हैं :–

1. इस प्रतिमान में निर्देशन कार्यक्रम को विद्यालयी सेवा या सहयोग के यप में स्वीकार किया गया है।
2. इसमें परामर्शदाता वह केन्द्रीय तत्व है जिस पर निर्देशन कार्यक्रम के संचालन का समग्र दायित्व रहता है।

इस प्रतिमान में यह माना गया है कि परामर्श सेवाओं की सफलता तभी सम्भव है जबकि इसके लक्ष्य, विद्यालय के उद्देश्यों के साथ ही अंगीकृत किए जाएं। यही कारण है इसमें परामर्शदाता की शिक्षा के प्रति प्रतिबद्धता को महत्वपूर्ण माना गया है। इस प्रतिमान मे विशेष बल इस तथ्य पर दिया गया है कि परामर्शदाता अपने को शिक्षाविद् माने तथा शिक्षकों को प्रोत्साहित करना, इसका प्रमुख कार्य है।

इसमें शिक्षा व निर्देशन को सहगाती प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया गया तथा शिक्षक व परामर्शदाता के मध्य विरोध की स्थिति को न्यून रखने का प्रयास किया गया। इस प्रकार इस प्रतिमान से शिक्षण एवं शैक्षिक प्रशासन के मध्य भी समायोजन स्थापित करने मे सहायता प्राप्त होती है तथा विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्यि का उत्तरदायित्व कुछ व्यक्तियों तक सीमित न रहकर, सम्पूर्ण व्यवस्था पर आ जाता है।

2. लिटिल तथा चैपमैन का प्रतिमान– निर्देशन का विकासात्मक चरित्र इस प्रतिमान की विशेषता है। इसकी धारणा अन्य प्रतिमानों की अपेक्षा अधिक विस्तृत है क्योंकि इस प्रतिमान में व्यक्तिगत, व्यावसायिक, शैक्षिक, सामाजिक अनुभवों तथा विद्यार्थी के जीवन की समस्त अवस्थाओं में सहायता करने के विचार पर अधिक बल दिया गया है।

लिटिल तथा चैपमैन ने अपनी पुस्त्क 'डेवलेपमेन्टल गाइडेन्स इन सैकेन्ड्री स्कूल' में इस प्रतिमान की विस्तृत व्याख्या की। यद्यपि निर्देशन को विकास के उपागम के रूप में सर्वप्रथम प्रस्तुत करने का श्रेय हरमन जे0 पीटरसन को है तथा इसके विकास में योगदान है, लिटिल तथा चैपमैन का। विकासात्मक निर्देशन प्रतिमान में आत्मज्ञान के आधार पर व्यक्तिगत पूर्णता तथा प्रभावकता अर्जित करने पर विशेष बल दिया गया है। निर्देशन द्वारा विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया को आगे बढ़ाने का प्रयास किया जाता

है। इस कारण लिटिल तथा चैपमैन ने परामर्शदाता, अध्यापक, प्रशासक, विशेषज्ञ तथा अन्य कार्यकर्ता के सम्मिलित प्रयासों को निर्देशन कार्यक्रम का अभिन्न अंग माना है। निर्देशन, विकास व शिक्षा के साथ निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।

3. मैथ्यूसन का प्रतिमान– मैथ्यूसन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'गाइडेन्स पॉलसी एण्ड प्रैक्टिस' में चार ऐसे क्षेत्रों को बताया, जिनका सम्बन्ध निर्देशन की आवश्यकताओं से हैं, वे चार क्षेत्र हैं :–

(क) मूल्यांकन तथा स्वंय को समझने की आवश्यकता।

(ख) स्वंय तथा वातावरण की मांगों तथा वास्तविकताओं के मध्य समायोजन करने की आवश्यकता।

(ग) वर्तमान तथा भविष्य की स्थितियों के प्रति सचेत रहने की आवश्यकता।

(घ) व्यक्तिगत क्षमताओं को विकसित करने की आवश्यकता।

मैथ्यूसन ने अपने प्रतिमान में निर्देशन के स्वरूप को विकासात्मक माना। उनके अनुसार :–

1. निर्देशन से व्यक्ति को अधिक सूचनायें प्राप्त होती है।
2. वह स्वंय की योग्यताओं को निर्धारित के अनुसार गत्यात्मक बनाने का प्रयास करता है।
3. निर्देशन की सहायता से व्यक्ति, लम्बे समय तक अपने विकास की योजना बना सकता है।

मैथ्यूसन ने निर्देशन के अन्तर्गत् विद्यालय के समस्त कर्मचारियों के सहयोग तथा उस व्यक्ति की स्वंय की सहभागिता को आवश्यक बताया है।

3. शोलेन का प्रतिमान–एडवर्ड ए0 शोलेन ने 1962 में इस प्रतिमान का प्रतिपादन किया। इस प्रतिमान में निर्देशन को 'सामाजिक पुनर्निमार्ण' के रूप में स्वीकृत किया गया। शोलेन ने पांचवें दशक के अन्त में पाया कि निर्देशन के क्षेत्र में विशेषज्ञों का बहुत प्रभाव है। इसके अतिरिक्त निर्देशन को जटिल बनाने के प्रयासों में होड़ लगी थी। अतः ऐसे में शोलेन द्वारा प्रतिपादित प्रतिमान एक आंदोलन के रूप में सामने आया, जिसमें निर्देशन को विभिन्न जटिलताओं से मुक्त कर, सरल व समाज के अनुकूल बनाने पर विशेष बल दिया गया। इस प्रतिमान की मुख्य भूमिका सामाजिक रूप से स्वीकृत मांगों के अनुरूप व्यक्तिगत विकास में सहयोग से सम्बन्धित थी। इसमें विद्यार्थियों द्वारा शांतिपूर्णा जीवन, संयम व मूल्यपरक जीवन अपनाने पर बल दिया गया।

इस प्रतिमान की मुख्य विशेषता शिक्षा और समाज के बीच रचनात्मक सम्बन्ध बनाने से थी। समाजिक विचार के कारण ही शोलेन के प्रतिमान की आदर्श प्रतिमान माना गया।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

7. हायट ने निर्देशन को क्या माना?

....

8. किसके प्रतिमान की धारणा अधिक विस्तृत है?

....

9. मैथ्यूसन की पुस्तक का नाम बताइये?

....

2.7 सारांश

निर्देशन के प्रतिमानों की भूमिका अहम है। ये सम्पूर्ण प्रक्रिया को व्यवस्थित एवं उद्देश्यपूर्ण बना देते है। प्रतिमानों का विकास क्रमवार हुआ और धीरे–धीरे इनके स्वरूप में परिवर्तन एवं नवीनता आती गयी। इस इकाई में आपने विविध प्रतिमानों के विकास को विस्तार से पढ़ा यह आपको रूचिकर एवं ज्ञानप्रद लगी होगी।

2.8 अभ्यास कार्य

निर्देशन के प्राचीन प्रतिमानों एवं नवीन प्रतिमानों की विशेषताओं को इंगित करते हुये अंतर कीजिये?

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर–

1. पार्सन ने।
2. ब्रीवर की एजुकेशन एण्ड गाइडेण्स।
3. नैदानिक प्रक्रिया।
4. निर्णय लेने की प्रक्रिया।
5. चयन की अवस्था।
6. प्रॉक्टर ने।
7. विद्यालय सेवा व सहयोग के रूप में।
8. लिटिल व चैपमैन का प्रतिमान।
9. गाइडेन्स पॉलिसी एण्ड प्रैक्टिस।

2.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. डॉ0 सिंह, कनौजिया : शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श, आलोक प्रकाशन, अमीनाबाद, लखनऊ।

इकाई–3 निर्देशन का ऐतिहासिक विकास

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 भारत में निर्देशन सेवाओं का उदय

3.4 भारत में निर्देशन सेवाओं से सम्बन्धित संस्थायें

3.5 विदेशों में निर्देशन सेवाओं का स्वरूप

3.6 इग्लैण्ड में निर्देशन का विकास

3.7 आस्ट्रेलिया में निर्देशन सेवायें

3.8 फ्रांस में निर्देशन सेवायें

3.9 कनाडा में निर्देशन सेवायें

3.10 संयुक्त राज्य अमेरिका में निर्देशन सेवायें

3.11 रूस में निर्देशन सेवायें

3.12 सारांश

3.13 अभ्यास कार्य

3.14 बोध प्रश्नों का उत्तर

3.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

निर्देशन सदैव से ही मानव समाज में विद्यमान रहा। एक अच्छा अध्यापक हर प्रकार से विद्यार्थी को समझते हुए उसे उसकी सभी क्षमताओं के साथ संसार की हर समस्या के समाधान के योग्य बनाता है। जीवविज्ञानी मानते है कि प्रत्येक प्राणी को जीवित रहने के लिए अपनी परिस्थिति से संघर्ष करना पड़ता है। मानव अपने विकसित मस्तिष्क के कारण प्रकृति का विलक्षण प्राणी बना और उसके साथ ही मानव जीवन ने विकास की राह पकड़ी और जीवन जटिलताओं से भर गया। मानव जीवन में इन जटिलताओ से संघर्ष करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक है, पर जहॉ पर संघर्ष योग्य परिस्थितियॉ नहीं होती वही पर उसे दूसरे के सहयोग एवं परामर्श की आवश्यकता होती है। निर्देशन की प्रवृत्ति एवं प्रक्रिया आदि काल से ही अव्यवस्थित स्वरूप में चली आ रही है परन्तु अब इसने एक व्यवस्थित सेवा का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। इस इकाई में हम निर्देशन सेवाओं के क्रमबद्ध विकास को जानेगें।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो पायेगें कि–

Ø निर्देशन सेवाओं के क्रमबद्ध विकास को जान पायेगें।

∅ निर्देशन सेवाओं के प्राचीन स्वरूप का वर्णन कर सकेगें।

∅ भारत में निर्देशन सेवाओं के विकास हेतु किये गये प्रयासों की विवेचना कर सकेगें।

∅ निर्देशन एवं परामर्श में नवीन प्रवृत्तियों का वर्णन कर सकेगें।

3.3 प्राचीन भारत में निर्देशन सेवाएँ

वैदिक युग में जैसा कि आप जानते है कि शिक्षा गुरूकुल में दी जाती थी। अल्प संख्या में विद्यार्थी--शिक्षक के समीप रहते थे और शिक्षक अपने गुणों एवं व्यवहार के द्वारा ही विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करता था। यह प्रक्रिया अत्यन्त ही प्रभावी थी। यह बात अवश्य थी कि निर्देशन सेवा आकस्मिक एवं अवैचारिक था। यदि हम गीता के उपदेशों में श्री कृष्ण की भूमिका की विवेचना करें तो स्पष्ट होगा कि श्रीकृष्ण ने न केवल शिक्षक की भूमिका न ही उस परिस्थिति में परामर्शदाता की भूमिका निभाई और अर्जुन को सही तरीके से अपने समक्ष उपस्थित समस्या को सही तरह से समाधान खोजने की दूरदृष्टि दी उन्हें उनकी क्षमता एवं कर्तव्य का ज्ञान कराया। यह निर्देशन ही था यह सेवा आकस्मिक एवं परिस्थिति के अनुसार दे दी जाती थी।

बौद्धकाल में भी बौद्ध भिक्षु सम्पूर्ण शिक्षण काल तक विद्यार्थियों को वास्तविक जीवन में प्रवेश के योग्य बनाने हेतु आकस्मिक निर्देशन देते थे। इसका कोई स्पष्ट स्वरूप तो नही था परन्तु यह परामर्श प्रक्रिया अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षण के साथ ही चलती रहती थी। उस समय विद्यार्थियो की संख्या भी सीमित थी तो विद्यार्थी विशेष की समस्याओं को समझना और समय पर सहयोग देना आसान था। परन्तु आज परिस्थितियों में परिवर्तन हो चुका है और विद्यार्थियों की संख्या में असीमित बढ़ोत्तरी हुयी। शिक्षा की व्यवस्था क्लिष्ट हुयी तो पाठ्यक्रम में वृहद आकार ले लिया और इन परिवर्तनों ने समस्याओं को भी जन्म दिया। शनैः–शनैः निर्देशन की अप्रत्यक्ष पद्धति ने एक व्यवस्थित एवं व्यावसायिक रूप ले लिया और इस प्रक्रिया को संचालित करने वाला परामर्शदाता से भी यह अपेक्षा की गयी कि वह प्रशिक्षित हो।

पिछले कुछ दशकों में अनेक विश्वविद्यालयों में निर्देशन केन्द्र खोले जाने की व्यवस्था आयी।

सर्वप्रथम सन् 1938 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के एक अनुभाग की स्थापना हुयी जिसमें परीक्षण तथा व्यावसायिक निर्देशन सम्बन्धी शोधकार्यो का संचालन हुआ। इसके पश्चात् निर्देशन सम्बन्धी आन्दोलन ने एक रूप ले लिया और सन् 1941 ई0 में एक व्यावसायिक निर्देशन संस्थान की स्थापना मुम्बई में हुयी। सन् 1947 ई0 में पारसी पंचायत में व्यावसायिक निर्देशन का आरम्भ किया गया। सन् 1945 ई0 में पटना विश्वविद्यालय में एक मनोविज्ञान तथा शोध विभाग खुला। उत्तर प्रदेश सरकार ने सन् 1947 ई0 में देश के प्रथम राजकीय मनोविज्ञानशाला की स्थापना प्रयाग में करायी। मुम्बई ने सन् 1950 में एक राजकीय मनोविज्ञानशाला की स्थापना की गयी।

निर्देशन आन्दोलन को बल तब मिला जब दिल्ली में 1947 में दिल्ली मंत्रालय द्वारा केन्द्रीय शैक्षिक तथा व्यावसायिक संस्था की स्थापना के रूप में आरम्भ हुयी। शीघ्र ही सन् 1956 में श्रम मंत्रालय ने भी इसी प्रकार की सेवा आरम्भ कर दी।

सन् 1956 ई0 में अखिल भारतीय शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन संघ का गठन हुआ। जो राष्ट्रीय निर्देशन का प्रथम संगठन था। इसका सम्पर्क अन्तर्राष्ट्रीय निर्देशन संघ से है। यह संघ वर्ष में एक बार अपनी बैठक करता है। इसी अवसर पर एक पत्रिका का प्रकाशन भी होता है। अनेक राज्य सरकारों ने अब रोटरी क्लब, वाई0 एम0 सी0 ए0, व्यक्तिगत महाविद्यालय तथा मिशनरीज आदि ने निर्देशन सम्बन्धी संस्थाओं की स्थापना करके जनता की सेवा आरम्भ कर दी है। केन्द्रीय सरकार की पंचवर्षीय योजना में भी निर्देशन के सम्बन्ध में एक रूपरेखा तैयार की गयी है। जिसके उद्देश्य हैं–

1. सभी राज्यों में राजकीय शैक्षिक व व्यावसायिक संस्थानों की स्थापना करना।
2. देश में 120 बहु उद्देशीय विद्यालय में निर्देशन की प्रारम्भिक अवस्था प्रारम्भ करना जिससे आगे इन कार्यक्रमों को बढ़ावा मिले।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. भारत में सबसे पहला निर्देशन संस्था कहॉ खुली?

....

2. बौद्ध शिक्षा में निर्देशन की प्रक्रिया का क्या स्वरूप था?

....

3.4 भारत में निर्देशन से सम्बन्धित संस्थाएँ

माध्यमिक शिक्षा आयोग की संस्तुतियों के आधार पर 1954 ई0 में केन्द्रीय शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन संस्थान की स्थापना दिल्ली में की गयी। यह तब से एन0सी0आर0टी0 के संरक्षण में कार्य कर रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य है–

1. राष्ट्रीय स्तर पर निर्देशन सम्बन्धी प्रयासों को नेतृत्व प्रदान करना व राज्यों में स्थापित संस्थानों को अधिक सक्रिय बनाना है।
2. निर्देशन सेवाओं के प्रति जनता को जागरूक करना, राष्ट्रीय स्तर पर योजनाओं का निर्माण करना व अन्य कार्यरत संस्थाओं को सहयोग प्रदान करना है।

देश के राज्यों जैसे–उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, असम, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, बिहार, आन्द्र प्रदेश, केरल, राजस्थान, मैसूर (कर्नाटक), गुजरात तथा पंजाब में

इस समय राज्य व्यावसायिक निर्देशन संस्थान कार्यरत हैं। ये सभी राज्य शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रस्थापित हैं। माध्यमिक शिक्षा में ही अधिकतम छात्रों को व्यावसायिक सेवायें प्राप्त हो इसके लिए क्षेत्रीय व उप संस्थायें भी खोली गयी है। राज्य संस्थान मुख्यरूप से निम्न कार्यो को करते है–

Ø राज्य के माध्यमिक विद्यालयों में व्यावसायिक सेवाओं को व्यवस्थित करना।

Ø नियोजन तथा सहयोग करना।

Ø व्यावसायिक परामर्शदाताओं का प्रशिक्षण।

Ø प्रकाशन का कार्य

Ø विकास तथा शोध

Ø विद्यालयों में निर्देशन सेवा संचालित करना।

राष्ट्रीय या केन्द्रीय स्तर पर निर्देशन सेवाएँ–देश में राष्ट्रीय स्तर पर निर्देशन–सेवाओं का संचालन विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से किया जा रहा है। कुछ संस्थाओं का परिचय निम्न प्रकार हैं–

1. केन्द्रीय शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो–माध्यमिक शिक्षा आयोग (1953) की सिफारिशों के परिणाम स्वरूप निर्देशन कार्यक्रमों पर बल दिया गया। सन् 1954 में केन्द्रीय शिक्षा तथा व्यावसायिक ब्यूरो की स्थापना की गई है। शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन सेवाओं के विकास एवं विस्तार के क्षेत्र में यह केन्द्रीय ब्यूरो सबसे प्राचीन है। इस ब्यूरो के उद्देश्य निम्न प्रकार हैं–

1. भारत में निर्देशन आंदोलन के विकास को प्रोत्साहन देना।
2. विद्यार्थियों को निर्देशन की प्रकृति एवं दर्शन से अवगत कराना तथा निर्देशन के संबंध में पर्याप्त जागृति उत्पन्न करके निर्देशन का विकास करना।
3. भारत में निर्देशन आंदोलनों की व्यवस्थित एवं सुदृढ़ करना।
4. निर्देशन कार्यक्रमों को नेतृत्व प्रदान करना।

निर्देशन आंदोलन को प्रोत्साहित एवं विकसित करने की दृष्टि से केन्द्रीय ब्यूरो ने निम्नलिखित कार्य किए–

1. निर्देशन संबंधी नियमावली तैयार की गई।
2. निर्देशन प्रक्रिया का आधार मनोविज्ञान को बनाया।
3. शिक्षा–संस्थाओं को निर्देशन संबंधी आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराई।
4. व्यावसायिक निर्देशन तथा रोजगार केन्द्रों में घनिष्ठ संबंध स्थापित किया गया।

प्रारम्भ में इस केन्द्रीय ब्यूरो को सी0आई0ई0 के साथ संलग्न किया गया, लेकिन बाद में एन0सी0ई0आर0टी0 में मिला दिया गया। एक लम्बे समय तक केन्द्रीय ब्यूरो यहाँ स्वतंत्र विभाग के रूप में कार्य करता रहा। बाद में एन0सी0ई0आर0टी0 के विभिन्न भागों का पुनर्गठन होने पर इसे मनोविज्ञान विभाग में मिला दिया गया। वर्तमान

समय में यह विभाग शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के लिए व्यक्तियों को प्रशिक्षित करता है तथा संबंधित महत्वपूर्ण प्रकाशन करता है तथा शोध कार्यो पर भी बल देता है।

2. अखिल भारतीय शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन संघ—राष्ट्रीय स्तर पर निर्देशन—कार्यक्रमों एवं विचारधाराओं का प्रसार करने तथा विभिन्न निर्देशन कार्यक्रमों को समन्वित करने में इस संघ का महत्वपूर्ण स्थान है। यह संघ निर्देशन कार्यक्रमों के प्रचार—प्रसार के साथ निर्देशन साहित्य के प्रकाशन एवं वितरण का कार्य भी करता है।

3. पुनर्वास एवं नियोजन निदेशालय—पुनर्वास एवं नियोजन निदेशालय की स्थापना भारत विभाजन के बाद पूर्वी एवं पश्चिमी पाकिस्तान से आए शरणार्थियों को पुनः बसाने के लिए की गई थी। वर्तमान समय में यह निदेशालय केन्द्रीय श्रम, पुनर्वास एवं नियोजन मंत्रालय के अधीन है तथा देश के समस्त रोजगार कार्यालयों की देखरेख करता है। इसके कार्यालय से निर्देशन संबंधी विभिन्न प्रकार का साहित्य प्रकाशित होता है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के समय इस निदेशालय में 'युवा—रोजगार सेवा' भी प्रारम्भ की थी। यह निदेशालय निर्देशन के क्षेत्र में अनुसंधान कार्यो को भी प्रोत्साहित करता है तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों की भी व्यवस्था करता है।

4. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद—राष्ट्रीय स्तर पर मानव संसाधन मंत्रालय की एक शाखा एन0सी0ई0आर0टी0 है जो माध्यमिक शिक्षा स्तर पर निर्देशन सेवाओं की व्यवस्था करती है। इसका 'मनोविज्ञान एवं शिक्षा' विभाग निर्देशन के क्षेत्र मे सहायता प्रदान करता है तथा निर्देशन आंदोलन को दृढ़ बनाने में काफी प्रयत्नशील है। यह संस्था निर्देशन के लिए विशेषज्ञ तैयार करने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा सेवारत निर्देशन कर्मचारियों के लिए विस्तार कार्यो की व्यवस्था करती है।

राष्ट्रीय स्तर की उपर्युक्त प्रमुख संस्थाओं के अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार के विभिन्न मंत्रालय, प्रकाशन विभाग तथा संस्थाएँ भी निर्देशन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य कर रही है।

राज्य स्तर पर निर्देशन सेवाएँ

1. राज्य शैक्षिक एवं व्यावसायिक ब्यूरो—मुदालियर शिक्षा आयोग की सिफारिशों के परिणाम स्वरूप प्रत्येक राज्य में एक राज्य शैक्षिक एवं व्यावसायिक ब्यूरो की स्थापना की गई। तृतीय पंचवर्षीय योजना में निर्देशन को केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना के रूप में स्वीकार किया गया और विभिन्न राज्गों में 13 ब्यूरो की स्थापना की गई। सन् 1981 तक देश के 19 राज्यों और केन्द्र—शासित प्रदेशों में शैक्षिक एवं व्यावसायिक ब्यूरो हैं—मनोविज्ञान का ब्यूरो, इलाहाबाद, व्यावसायिक निर्देशन और चयन संस्थान मुम्बई, महाराष्ट्र, व्यावसायिक निर्देशन संस्थान, अहमदाबाद, गुजरात, मध्य प्रदेश में शैक्षिक मनोविज्ञान और निर्देशन महाविद्यालय, जबलपुर, द्वारा ही राज्य स्तरीय निर्देशन ब्यूरो का कार्य किया जाता है। राजस्थान में इसकी स्थापना सन् 1985 में की गई। इसका कार्यालय बीकानेर में है। यह विद्यालयों में निर्देशन सेवाओं क्री व्यवस्था करता है तथा निर्देशन के क्षेत्र में प्रशिक्षण साहित्य प्रकाशन एवं अनुसंधान कार्यो को प्रोत्साहित करता है।

राज्यों के शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

1. विद्यार्थियों को उनकी रूचि एवं योग्यता के अनुरूप पाठ्यक्रम और व्यवसाय चयन में सहायता करना।
2. विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास एवं जीवन के सभी क्षेत्रों में समायोजन में सहायता करना।
3. विद्यार्थियों एवं विद्यालय कर्मचारियों में निर्देशन की प्रकृति एवं दर्शन के संबंध में जागृति उत्पन्न करना तथा निर्देशन में उन्नति को प्रोत्साहन देना।
4. निर्देशन को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाना तथा निर्देशन प्रक्रिया में प्राचार्यो, शिक्षकों, माता–पिता व अभिभावकों को सम्मिलित करना।
5. शिक्षा–अधिकारियों एवं सामान्य जनता को निर्देशन सेवाओं की आवश्यकता से अवगत कराना।
6. निर्देशन ब्यूरो द्वारा निर्देशन का संप्रत्यय, दर्शन एवं सिद्धांतों को समझने की योग्यता का विकास करना।
7. सभी निर्देशन ब्यूरो द्वारा इस तथ्य का प्रचार करना कि निर्देशन विद्यालय कैरियर की समाप्ति, व्यवसाय चयन इत्यादि में विद्यार्थियों की सहायता करने से अधिक है।

2. शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान–सन् 1978 में इसकी स्थापना उदयपुर, राजस्थान में हुई। इस संस्थान में भिन्न–भिन्न विषयों एवं संबंधित आठ विभाग हैं जो निम्न प्रकार के हैं–विज्ञान व गणित विभाग, मानविकी एवं समाज विज्ञान विभाग, मनोविज्ञान विभाग, भाषा अध्ययन विभाग, अनौपचारिक शिक्षा विभाग, पत्राचार विभाग, तकनीकी विभाग, शैक्षिक प्रशासन, परिवीक्षण एवं आयोजना विभाग। यह संस्थान निर्देशन के प्रशिक्षण के लिए ग्रीष्मकालीन शिविरों की व्यवस्था करता है तथा संबंधित साहित्य का प्रकाशन करवाता है।

3. अन्य राज्य स्तरीय संस्थाएँ–उपर्युक्त के अतिरिक्त भी राज्य में कुछ ऐसी संस्थाएँ हैं जो निर्देशन सेवाओं का संचालन करती हैं। ये संस्थाएँ निम्न हैं–

1. नियोजन कार्यालय, 2. शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालय, 3. विश्वविद्यालयों के निर्देशन ब्यूरो, 4. राज्यों के मनोविज्ञान ब्यूरो इत्यादि।

राज्य स्तरीय निर्देशन संस्थाओं के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

1. निर्देशन सेवाओं की योजनाएँ बनाना, उन्हें क्रियान्वित करना, उनमें परस्पर सहयोग स्थापित करना तथा निरीक्षण करने में सहायता देना।
2. व्यवसायिक सूचनाओं को एकत्रित करना तथा विद्यार्थियों तक पहुँचाना।
3. परामर्श प्रदान करना।
4. विद्यालयों में सामूहिक निर्देशन की व्यवस्था करना।

5. परीक्षणों, प्रश्नावलियों, जॉच सूचियों इत्यादि का निर्माण करवाना।
6. निर्देशन कर्मचारियों व शिक्षकों के लिए भी प्रशिक्षण कार्यक्रमों की व्यवस्था करना।
7. निर्देशन में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने में सहायता प्रदान करना।
8. विद्यार्थियों को निर्देशन के महत्व से अवगत करना।

व्यक्तिगत निर्देशन संस्थाएँ—कुछ राज्यों में व्यक्तिगत संस्थाएँ भी निर्देशन सेवाओं का संचालन करती हैं। इन संस्थाओं की स्थापना धर्मार्थ ट्रस्ट या सामाजिक संगठनों द्वारा की जाती है। कुछ संस्थाएँ विद्यार्थियों व प्रौढ़ों को निःशुल्क सहायता प्रदान करते हैं। जैसे–पारसी पंचायत, वाई0एम0सी0ए0 आदि उल्लेखनीय हैं।

विभिन्न राज्यों में व्यावसायिक निर्देशन संस्थानों की सूची

राज्य	संस्था का नाम	केन्द्र	स्थापना–वर्ष
आन्ध्र	राज्य निर्देशन संस्थान	हैदराबाद	1927
असम	शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन संस्थान	शिलांग	1957
	शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन इकाई	शिल्चर	1958
बिहार	शैक्षिक व्यावसायिक संस्थान	पटना	1956
गुजरात	व्यवसायिक निर्देशन संस्थान	अहमदाबाद	1956
	मनोवै0 शैक्षिक तथा उपचारात्मक सेवा	अहमदाबाद	1960
	विद्यार्थी परामर्श केन्द्र, बडोदा, वि0वि0	बड़ौदा	1956
	माध्यमिक विद्यालय निर्देशन संस्थान	बड़ौदा	1956
	विद्यार्थी मनोविज्ञान केन्द्र वी0एम0 संस्थान	अहमदाबाद	1957
केरला	शैक्षिक अनुसंधान एवं सेवा संस्थान	त्रिरूअनन्तपुरम	1960
	शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन संस्थान, केरला विश्वविद्यालय	त्रिरूअनन्तपुरम	1963
	मध्य प्रदेश शैक्षिक एवं व्यावसायिक संस्थान	जबलपुर	1956
महाराष्ट्र	व्यवसायिक निर्दशन संस्थान	मुम्बई	1950
	व्यावसायिक निर्देशन विभाग	मुम्बई	1954
	गुजरात, अनुसंधान समाज		
	व्यावसायिक निर्देशन संस्थान तथा बाल केन्द्र, सेण्ट जेवियर शिक्षा संस्थान	मुम्बई	1960
	पारसी पंचायत शैख्कि एवं व्यावसायिक संस्थान	मुम्बई	1963
कर्नाटक	शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन संस्थान	बंगलौर	1959
	व्यावसायिक निर्देशन केन्द्र, वाई0एम0सी0ए0	बंगलौर	1955
उड़ीसा	व्या0 एवं शैक्षिक राज्य संस्थान	कटक	1955

पंजाब	व्या0 एवं शैक्षिक राज्य संस्थान	चण्डीगढ़	1962
	यू0सी0एन0आई0 निर्देशन केन्द्र	जालन्धर	1957
राजस्थान	व्यावसायिक एवं राज्य शैक्षिक संस्थान	बीकानेर	1958
	उत्तर प्रदेश मनोविज्ञानशाला	इलाहाबाद	1947
	व्या0 निर्देशन केन्द्र, आर0वी0एस0 महाविद्यालय, आगरा	आगरा	1955
	व्या0 एवं शैक्षिक निर्देशन केन्द्र, मुस्लिम वि0वि0 शिक्षा अनुसंधान संस्थान	अलीगढ़	1960
	इविंग क्रिश्चियन कालेज	इलाहाबाद	1950
पश्चिम बंगाल	शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक शोध संस्थान	कलकत्ता	1953
	शैक्षिक एवं व्यावसायिक परामर्श संस्थान, व्यावसायिक निर्देशन समाज	कलकत्ता	1956

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

3. भारत में निर्देशन सेवाओं के परिचित कराने का श्रेय किसको जाता है?

....

4. इलाहाबाद में मनोविज्ञान निर्देशन ब्यूरों की स्थापना किसने की?

....

5. केन्द्रीय शैक्षिक एवं व्यावसायिक ब्यूरों की स्थापना कब हुयी?

....

6. अखिल भारतीय शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन संघ क्या कार्य करता है?

....

7. राज्य शैक्षिक एवं व्यावसायिक ब्यूरों किस आयोग की सिफारिशों पर स्थापित हुये?

....

3.6 इग्लैण्ड में निर्देशन का विकास

इग्लैण्ड में शैक्षिक निर्देशन, माध्यमिक विद्यालयों में प्रवेश के लिए चयन तथा व्यावसायिक निर्देशन के बीच अत्यन्त निकट का सम्बन्ध रहता है। निर्देशन तथा चयन

का पारस्परिक सम्बन्ध होता है। निर्देशन का ही संकुचित रूप चयन माना जाता है। ग्यारह वर्ष की आयु के बालक को यथा सम्भव तीन भिन्न शैक्षिक परिस्थितियों में रखा जाता है। पॉच वर्ष से पन्द्रह की अवस्था तक के बच्चों के लिए शिक्षा अनिवार्य है, फिर भी सात प्रतिशत छात्र ऐसे विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करते हैं जहॉ उन्हें शुल्क देना पड़ता है। 11 वर्ष की अवस्था के विद्यार्थी ग्रामर स्कूल, टेक्निकल स्कूल तथा सामान्य माध्यमिक विद्यालयों में स्थानान्तरित कर दिये जाते हैं। ग्रामर स्कूलों में उच्च स्तर की शैक्षिक योग्यता प्रदान की जाती है जिससे उत्तम पेशे के लिए विद्यार्थी तैयार हो सके। आधुनिक माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षा का स्तर कुछ कम होता है, किन्तु उनका झुकाव व्यावहारिक ज्ञान की ओर अधिक होता है।

तीनों प्रकार के माध्यमिक विद्यालयों में विभिन्न प्रकार के अनुभव प्रदान किये जाते है जैसे कि कुछ माध्यमिक विद्यालय उन लोगों के लिए शैक्षिक पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं जो विद्यालय में निर्धारित अवधि के उपरान्त भी शिक्षा प्राप्त करने के लिए रूक जाते हैं ग्रामर स्कूल सामान्य तथा व्यावसायिक एवं लिपिकीय कार्यो के लिए तथा आधुनिक माध्यमिक स्कूल व्यावहारिक कार्यो के लिए शिक्षा देते हैं। विद्यालयों में चुनाव के समय छात्रों की योग्यता तथा उपलब्धि पर अधिक बल दिया जाता है। ग्रामर स्कूलों में चुनाव के लिये सामान्य वाचिक बुद्धि पर बल दिया जाता है। यह चुनाव 11+पर लागू होता हैं। प्राथमिक से माध्यमिक स्तर पर जाते समय शैक्षिक निर्देशन सभी छात्रों को उपलब्ध किया जाता है। व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयास सभी प्रकार के माध्यमिक विद्यालयों में किये जाते है। ग्रामर स्कूलों में ऐच्छिक विषयों की बहुलता होती है। आधुनिक माध्यमिक विद्यालय भी ऐच्छिक विषयों की संख्या बढ़ा रहे हैं और मन्द बुद्धि बालकों के लिए औपचारिक शिक्षा भी उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है।

व्यावसायिक निर्देशन माध्यमिक कक्षाओं से आरम्भ होता है। इसका संचालन छात्र–शिक्षक, माता–पिता तथा युवा–सेवा नियोजन अधिकारी के सहयोग से होता है। विद्यार्थियों की विद्यालयकृति देखी जाती है, अभिवृत्ति परीक्षण दिये जाते हैं तथा उपलब्धा व्यवसायों पर विचार–विमर्श तथा वाद–विवाद में छात्रों को हाथ बढ़ाने का अवसर दिया जाता है और अन्त में प्रत्येक विद्यार्थी का साक्षात्कार उसके माता–पिता की उपस्थिति में युवा सेवानियोजन अधिकारी द्वारा लिया जाता है।

युवा सेवा–नियोजन अधिकारी अपने कार्यालय में सूचित व्यवसायों की पृष्ठभूमि में छात्र की व्यवसाय सम्बन्धी संस्तुतियों का अध्ययन करता हैं अधिकारी का कार्य छात्र की सेवा में नियुक्ति करके ही नहीं समाप्त हो जाता वरन् 18 वर्ष की अवस्था तक पुनः अनुगमन सेवा का कार्य चलता रहता है।

युवा सेवा नियोजन सेवा–यह सेवा विद्यालय छोड़कर कार्य पर जाने वाले 18 वर्षीय युवकों की देखभाल करती है। प्रस्तुत सेवा के अन्तर्गत छात्रों को व्यवसायिक निर्देशन उपलब्ध होता है, उन्हे किसी सेवा में नियुक्त कराया जाता है तथा उनकी सेवा के आरम्भिक काल में काम करने वालों से भी सम्पर्क बनाये रखा जाता है। श्रम मंत्रालय तथा स्थानीय शिक्षा अधिकारियों द्वारा स्थानीय सलाहकार युवा–सेवा नियोजन, समितियों,

जिनमें शिक्षकों के प्रतिनिधि, नियोक्ता और ट्रेड यूनियनों के सदस्य रहते हैं, का गठन किया जाता है। कहीं–कहीं तो स्वयं स्थानीय शिक्षा अधिकारी अथवा श्रम मंत्रालय ही यह कार्य करता है। केन्द्रीय कार्यकारिणी के अन्तर्गत कुछ निरीक्षक होते हैं, जिनमें मनोविज्ञान वेत्ता भी सम्मिलित रहते हैं। प्रत्येक युवक सेवा–नियोजन, अधिकारी को प्रति वर्ष 600–1000 विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों से सम्पर्क बनाना पड़ता है। विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों को व्यवसायों के विषय में सूचना देना उन्हें उचित राय देना विद्यालयों का कार्य होता है। विद्यार्थियों के ऊपर कोई ऐसा प्रतिबन्ध नहीं है कि वे सेवा नियोजन कार्यालय की सलाह का अक्षरशः पालन ही करें। युवा सेवा–नियोजन अधिकारी बालक को उसके माँ–बाप के साथ साक्षात्कार के लिए बुलाता है और सप्त सूत्रीय कार्यक्रम के आधार पर अपनी संस्तुति प्रदान करता है। वाइ0ई0ओ0 की संस्तुतियों का विद्यार्थी पर कोई बन्धन नहीं होता। वह चाहे तो युवा नियुक्ति अधिकारी के माध्यम से अपने लिए व्यवसाय ढूँढे अथवा स्वतन्त्र रूप से अपना काम चलाये।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

8. इग्लैण्ड में निर्देशन कार्यक्रम कब प्रारम्भ होता है?

....

3.7 आस्ट्रेलिया में निर्देशन का विकास

व्यावसायिक निर्देशन के साथ आस्ट्रेलिया में कुछ सिद्धान्तों को भी विकसित किया गया है जो वहाँ के सामान्य कार्यक्रम के आधार हैं–

1. समस्या आ जाने पर छात्र के आवश्यक पक्षों पर विचार–विमर्श करना–इसका मुख्य लक्ष्य किशोरावस्था के विद्यार्थियों में आत्मनिर्णय की शक्ति उभारना है। अतः छात्र अपनी शारीरिक योग्यताओं के अनुरूप अपने व्यवसायों का चुनाव कर लेते हैं, अपनी कार्य क्षमता के अनुकूल अवकाशकालीन क्रियाओं का भी चुनाव कर लेते हैं, कुसमंजन के अवरोधार्थ छात्र उपचारात्मक साधनों का चुनाव करते हैं।

2. कक्षा अध्यापक का व्यावसायिक निर्देशक के प्रति दायित्व–शिक्षक पर ही यह दायित्व है कि वह निर्देशन को शिक्षा जगत में पूर्णतया पहुँचा दें।

3. निर्देशन को शिक्षा व्यवस्था का अन्तिम अंग मानना–यद्यपि कुछ कार्य तो जिला विद्यालय परामर्शदाता एवं निर्देशक अधिकारी विद्यालय के प्रधानाचार्य के आमन्त्रण पर करते है। विद्यालय के प्रधानाचार्य भी विद्यार्थियों की योग्यता सम्बन्धी परीक्षणों की क्रिया को पूरा किये रखते हैं।

4. जनपदीय निर्देशन की योजनाओं का विश्लेषण—परामर्शदाता अपने जनपदों का आरम्भिक सर्वेक्षण यह पता लगाने के लिये करते हैं कि तात्कालिक एवं दूरगामी उद्देश्यों की पूर्ति किस सीमा तक हो रही है।

5. नेतृत्व—यह निर्देशन के पूरे क्षेत्र में परिलक्षित रहता है और कर्त्ताओं में निर्देशन के प्रति कार्य उत्पन्न करने में सहायक होता है। व्यक्तिगत योगदान तथा प्रतिभा को महत्व दिया जाता है ताकि अन्य लोगों में भी उत्साह की वृद्धि हो।

निर्देशन के क्षेत्र—इसका संचालन शिक्षा शास्त्र विभाग द्वारा होता है, जिसके अन्तर्गत सामाजिक, सांवेगिक, व्यावसायिक तथा वैवाहिक निर्देशन भी आते हैं।

इस क्षेत्र में दार्शनिकों, मनोवैज्ञानिकों तथा समाजशास्त्रियों आदि सबका योगदान है। निर्देशन की परिधि में व्यक्तित्व की गत्यात्मकता, समूह की गत्यात्मकता, अधिगम, व्यक्तिगत विभिन्नता तथा मनोमिति, व्यावसायिक निर्देशन तथा व्यावसायिक सूचना आदि आते हैं। अतिरिक्त निर्देशन सेवा का विस्तार शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, आचार–विसंगति, सांवेगिक दृष्टि, बहरापन, मानसिक रूप से पिछड़ापन, मानसिक दौर्बल्य तथा विकलांगों की समस्या भी निर्देशन के अभिन्न अंग माने जाते हैं।

संगठन तथा विशिष्ट सेवाएँ—कुछ क्षेत्राधिकारी होते हैं जो शिक्षण का भी कार्य करते हैं। निर्देशन के अन्य कार्यकर्ता उपजीविकीय कर्मचारी मण्डल के ही लोग होते हैं। निर्देशन तथा समायोजन का प्रमुख कार्यक्रमों के संचालन के लिए शिक्षा महानिदेशक के अनतर्गत होता है। इस विभाग के भी तीन भाग होते हैं—निर्देशन सम्बन्धी, समायोजन सम्बन्धी तथा लिपिकीय। इन सबका पर्यवेक्षण प्रधान निर्देशन अधिकारी तथा सुअवसर की कक्षाओं के पर्यवेक्षक एवं वरिष्ठ लिपिक करते हैं।

निर्देशन अनुभाग के अन्तर्गत अन्य अनुभाग भी आते है। मुख्य निर्देशन अधि ाकारी के यहाँ शिक्षा सम्बन्धी ऐसे मामले भी लाये जाते हैं जो परामर्शदाता के कार्य क्षेत्र के बाहर के होते हैं।

शैक्षिक चिकित्सालय— ये माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के परीक्षण तथा नियुक्ति का भी कार्य करते हैं। शैक्षिक ।चिकित्सालय के अतिरिक्त शिशु निर्देशन औषधालय भी हैं जो विद्यालय चिकित्सा सेवा में निर्देशन के अन्तर्गत कार्य करते हैं। इसके विपरीत शैक्षिक औषधालयों का सम्बन्ध मनोवैज्ञानिक समस्याओं से होता है जिनका अभिप्राय अधिगम है। शिशु निर्देशन औषधालयों का ध्यान आचरण सम्बन्धी विसंगतियों पर होता है जिन्हें मानसिक चिकित्सा की आवश्यकता होती है। विशेष शिक्षा के निमित्त छात्रों के जो वर्ग बनाये जाते हैं उनके समायोजन का दायित्व सुअवसर कक्षाओं के निरीक्षक एवं उनके कर्मचारी मण्डल तथा उसके स्टाफ पर होता है।

जनपदीय विद्यालय परामर्शदाता—जनपदीय परामर्शदाता स्त्री हो या पुरूष, वह किसी माध्यमिक विद्यालय के अध्यापक मण्डल का सदस्य होता है जो निर्धारित घण्टों में सामूहिक निर्देशन करता है और अध्ययन का कार्य नहीं करता। कभी–कभी इसके कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत अन्य माध्यमिक विद्यालय भी आ जाते हैं। वैसे तो वे सभी

प्राथमिक पाठशालाएँ रहती ही हैं जहाँ के विद्यार्थी उसके माध्यमिक विद्यालय में पढ़ने आते हैं।

परामर्शदाता एक सफल शिक्षिका होती है जिसके पास मनोविज्ञान में दो वर्षो की विश्वविद्यालय की उपाधि होती है। परामर्शदाता के रूप में चुन लिये जाने के उपरान्त वह एक वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त करती है।

इतिहास—निर्देशन के कार्यक्रम का आरम्भ अधिकारी रूप में डा0एच0एस0 विन्धम के प्रशासन काल में सन् 1935 ई0 में हुआ। तीन विद्यालय—परामर्शदाताओं से कार्यक्रम चला था और आज सौ से भी अधिक परामर्शदाताओं की नियुक्ति हो चुकी है। क्षेत्रीय कार्यालयों में परामर्शदाता जनपदीय निर्देशन अधिकारी के पर्यवेक्षण में कार्य करते है।

बोध प्रश्न—

टिप्पणी—क— नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख— इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

9. आस्ट्रेलिया में निर्देशन को शिक्षा व्यवस्था में क्या स्थान दिया गया है?

....

10. आस्ट्रेलिया में निर्देशन कार्यक्रम का प्रारम्भ कब और किसने किया?

....

3.8 फ्रांस में निर्देशन का विकास

आधिकारिक रूप में व्यावसायिक निर्देशन को मान्यता 1922 में ही मिल चुकी थी, किन्तु इस सम्बन्ध में सुव्यवस्थित घोषणा 1938 ई0 में की गयी। इसके अनुसार चौदह वर्ष के सभी विद्यार्थियों का परीक्षण व्यावसायिक निर्देशन हेतु अनिवार्य होने लगा। तकनीकि क्रान्ति के विकास के साथ ही मध्यम तथा उच्च कोटि के कार्यकर्त्ताओं की भी माँग बढ़ गयी।

सन् 1938 की घोषणा ने जो कुछ आरम्भ किया था उसे 1955 ई0 में अधिक व्यापक बना दिया गया। इसी प्रकार विद्यालय निरीक्षकों के निवेदन पर उन विद्यार्थियों को भी परामर्श दे सकते थे जिन्होनें प्राथमिक पाठशाला छोड़कर आगे की कक्षा में प्रवेश लिया है और जो अपनी शिक्षा चला रहे हैं।

सन् 1959 ई0 में शिक्षा सुधार कानून पारित हुआ जिसके अन्तर्गत व्यापक परिवर्तन किये गये। यह भी व्यवस्था की गयी कि प्राथमिक पाठशालाएँ छोड़ने वाले विद्यार्थियों के लिए दो वर्षीय निरीक्षण—चक्र का आरम्भ 1960 ई0 में किया जाय। इस चक्र की समाप्ति पर छात्रों को उपयुक्त विषय चुनने में सहायता दी जा सकेगी। 1963 ई0 में नयी पाठ्य—पुस्तकें निकली जिनमें 15 वर्ष की आयु तक के विद्यार्थियों की सहायता की व्यवस्था थी।

शिक्षा सुधार कानून (1959) के प्रभाव में निर्देशन कार्यक्रम अधिक व्यापक हो गया, जैसे–

(अ) निर्देशन एक सतत प्रक्रिया है, इस धारणा को बल मिला।

(ब) राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था में निर्देशन सभी के सहयोग का नियम बन गया, जिसमें विशेषज्ञों का भी अनुदान था।

(स) शिक्षा के प्रजातन्त्रीकरण में निर्देशन की भूमिका महत्त्वपूर्ण मानी जाने लगी।

(द) शिक्षण का स्तर उठाने के लिए जितने भी मनोवैज्ञानिक शैक्षिक अनुसंधान किये जा रहे हैं उनमें व्यावसायिक सेवाओं की भी सहायता ली जाने लगी।

संघटन–शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन सम्बन्धी सेवाओं का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप में जनरल डाइरेक्टरेट ऑफ एकेडमिक आर्गनाइजेशन तथा राष्ट्रीय शिक्षा मंत्रालय में कार्यक्रमों से रहता है। सामान्य नीतियों का प्रतिपादन मन्त्रिमण्डलीय स्तर पर ही होता हैं जिसमें शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन के महानिरीक्षणालय की सम्मति भी ली जाती है। प्रत्येक एकेडमी में दीक्षक के अधिकारान्तर्गत एक क्षेत्रीय निरीक्षक होता है जो उस केन्द्र पर निर्देशन सेवा द्वारा किये गये सभी कार्यो का समन्वयन करता है। एकेडेमियों के निरीक्षक के अधिकार में प्रत्येक प्रशासनिक प्रखण्ड में एक अथवा अनेक शैक्षिक एवं व्यावसायिक जन–केन्द्रों की स्थापना होती है। इन केन्द्रों पर चिकित्सकों की भी व्यवस्था रहती है, जो कि राज्य कर्मचारी होते हैं। इनसे अतिरिक्त चौदह व्यक्तिगत केन्द्र भी हैं जहाँ निर्देशन उपलब्ध रहता है।

प्रशिक्षण–जन–केन्द्रों पर परामर्शदाताओं की भर्ती उन्हीं में से की जाती है जिनके पास शैक्षिक एवं व्यावसायिक परामर्शदाता का राजकीय डिप्लोमा होता है। यह प्रमाण–पत्र एक वर्ष का शिक्षण काल समाप्त करने पर प्रदान किया जाता है। सन् 1958 ई0 से व्यावसायिक निर्देशन के राष्ट्रीय संस्थान ने इस प्रशिक्षण का दायित्व लिया है। साथ ही तीन अन्य संस्थान मारसिले, गोरडेक्स तथा लिले इस कार्य में संलग्न हैं। परामर्शदाताओं को राजकीय डिप्लोमा के निमित्त प्रशिक्षण काल में मुख्यतया शिशु तथा किशोर के मनोविज्ञान एवं उनके वातावरण के सम्बन्ध में शिक्षा दी जाती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

11. फ्रांस में व्यावसायिक निर्देशन को मान्यता कब मिली?

....

12. फ्रांस में शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन सम्बन्धी सेवाओं का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप में कहाँ से होता है?

3.9 कनाडा में निर्देशन का विकास

कनाडा में शिक्षा का प्रशासन दस प्रान्तीय राजकीय शिक्षा विभागों द्वारा संचालित होता है, किन्तु इनके प्रारूप में समानता कम तथा विषमता अधिक देखने को मिलती हैं। कहीं–कहीं तो कैथेलिक तथा प्रोटेस्टेण्टों की पृथक संस्थाएँ चलती है जो प्रायः सर्वथा भिन्न होती हैं। व्यक्तिगत संस्थाओं का भी प्रचलन है जो अपने कार्यक्रम दर्शन तथा संघटन में स्वतन्त्र है किन्तु राष्ट्रीय स्तर पर विचारों के आदान–प्रदान का अवसर भी सुलभ होता रहता है।

परिणामस्वरूप व्यावसायिक निर्देशन की मान्यता तथा उनके संगठन में पर्याप्त विषमता पायी जाती है। ब्रिटिश कोलम्बिया में निर्देशन तथा परामर्श को माध्यमिक शिक्षा का एक अंश स्वीकारा है जिसके लिए विशेष पत्रिकाएं प्रकाशित होती रहती है और प्रान्तीय स्तर पर एक संचालक इसकी देखभाल करता है। इसके प्रतिकूल कुछ प्रान्तों में अभी इस कार्यक्रम का आरम्भ ही हो रहा है। अनेक प्रान्तों में निर्देशन का स्तर भी पृथक पाया जाता है। ब्रिटिश कोलम्बिया में सातवीं कक्षा से लेकर 12वीं कक्षा तक निर्देशन का पाठ्यक्रम चलता है। अलबर्टा में निर्देशन 7, 8, 10 तथा 11 व 12 कक्षा में वैकल्पिक विषय है किन्तु कक्षा 9 में अनिवार्य है। संस्केचवान प्रान्त में अतिरिक्त विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। अतः हम देखते है कि प्रत्येक प्रान्त निर्देशन को मान्यता प्रदान करने और विकसित करने तथा उनके लिए पाठ्यक्रम तैयार करने में स्वतन्त्र होता हैं।

कनाडा में निर्देशन तथा परामर्श पृथक कार्य समझे जाते हैं जो व्यक्ति निर्देशन में लगा है उससे परामर्श का काम नहीं लिया जाता है। ऐसी धारणा है कि निर्देशन की आवश्यकता तो उसके बालक के लिए होती है जो सर्वथा सामान्य है, किन्तु विशेष ध्यान योग्य बालकों के लिए परामर्श की व्यवस्था होती है। बहुत से तो ऐसे शिक्षक ऐसे कार्य में लगा दियो गये हैं जिनको निर्देशन का साधारण ज्ञान है। इसीलिए व्यक्तिगत अध्ययन एवं साक्षात्कार आदि का प्रयोग वे नहीं कर पाते है। निर्देशन के लिए न तो कोई समय निर्धारित है और न तो निर्देशन तथा परामर्श औपचारिक रूप में प्रदान ही किये जाते हैं।

विषयवस्तु—कहीं–कहीं निर्देशन को विद्यालयों के अन्य विषयों के साथ जोड़ दिया गया है और उनका नियम के साथ अध्ययन एवं अध्यापन होता है। सूचना सेवा व्यवसाय, मनोविज्ञान स्वास्थ्य तथा व्यक्तिगत विकास आदि विषयों को पाठ्यक्रम में रखकर उनकी नियमित शिक्षा दी जाती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

13. किस देश में निर्देशन व परामर्श अलग प्रक्रिया मानी जाती है?

....

14. किस देश में 7वीं से 12वीं कक्षा तक निर्देशन का पाठ्यक्रम चलता है?

....

3.10 संयुक्त राज्य अमेरिका में निर्देशन

प्राथमिक पाठशालाएँ–इसके अन्तर्गत कक्षा एक से छः तक के विद्यार्थी आते हैं। पिछली शताब्दी से इस स्तर को भी व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने पर सक्रियता दिखाई जा रही है। जिन सामाजिक–आर्थिक घटकों के प्रभाव में माध्यमिक स्तर पर निर्देशन का विकास हुआ, उन्हीं के कारण प्राथमिक स्तर की कक्षाएँ भी इस सेवा के अन्तर्गत आयीं। इस प्रकार निर्देशन का स्वरूप प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालयों में मात्र विधि तथा समस्याओं की दृष्टि से भिन्न पाता जाता है, मूलभूत दर्शन में नहीं। इसका लक्ष्य विद्यार्थियों को इस प्रकार की सेवाएँ प्रदान करना था जिनसे विद्यार्थी अधिकतम लाभ उठा सकें ताकि वे शैक्षिक सामाजिक, एवं आर्थिक दृष्टि से समर्थ पुरूष बन सकें। प्राथमिक स्तर पर जो शिक्षा प्रदान की जाती है वह सम्पूर्ण निर्देशन कार्यक्रम का एक अभिन्न अंग हैं, जिसका लक्ष्य शिक्षा का वैयक्तीकरण है। प्राथमिक स्तर पर निर्देशन का स्वरूप उच्च स्तर की निर्देशन व्यवस्था से भिन्न हैं क्योंकि इसका उद्देश्य समस्याओं को आरम्भ में ही पहचान कर उनका अवरोध करना हैं। जिन पक्षों पर विशेष ध्यान दिया जाता है, वे निम्न हैं–1.उपयुक्त तथा व्यावहारिक शिक्षा कार्यक्रम का आयोजन 2. समुचित सामाजिक कौशल का विकास 3. उचित रूप में व्यक्तिगत समायोजन की शिक्षा 4. व्यवसाय जगत का विशेष ज्ञान देना तथा व्यवसाय चयन की प्रक्रिया से अवगत होना 5. उत्तम स्वास्थ्य का संरक्षण।

प्राथमिक पाठशालाओं में निर्देशन प्रदान करने में जिन विधियों का प्रयोग करते है। उनमें विकासात्मक विधि प्रथम है। इसका सिद्धांन्त है कि वृद्धि की अवधि में बालक कुछ ऐसी अवस्थाओं द्वारा प्रौढ़ता को प्राप्त करता है, जिन्हें वह स्वयं नही पहचान पाता। अतः उसे ऐसी सहायता प्रदान कर देनी चाहिए कि वह इन परिवर्तन सम्बन्धी समस्याओं का सामना कर सकें। दूसरी विधि प्रशासनिक है जिस में बालक को ऐसे समूह के अन्तर्गत रख देते है जो एकरूप हो। इस समूह में व्यक्तिगत भेदों को पहिचानना तथा उनके अनुरूप सहायता प्रदान करना आसान हो जाता है। इनके लिए निदानात्मक सेवाएँ बहुत महत्वपूर्ण होती है। बालक का अधिगम यदि मन्द है तो इसे मनोवैज्ञानिक दोष माना जाता है और शिक्षक का कार्य उपचारात्मक होता है। तीसरी विधि सेवा सम्बन्धी है जो सम्प्रति बहुत व्यापक हो गयी है, इसका प्रयोग स्वतंत्र निर्देशन सेवा के स्थान पर हो रहा है।

उपर्युक्त जिन किन्हीं भी विधियों का प्रयोग किया जाये, कक्षाध्यापक की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। प्रत्येक शिक्षक के पास छात्रों की संख्या कम होने के कारण प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षक–छात्र सम्पर्क अच्छा होता है। इसलिए अध्यापक सामान्यतया निर्देशक की सहायता करते है। अतः शिक्षकों के दायित्व में निम्न बाते जोड़ दी जाती है–

1. निर्देशन के कार्यकर्ताओं को सहयोग प्रदान करना।
2. छात्रों के विषय में सम्बन्धित सूचना अन्य शिक्षकों तथा निर्देशन विशेषज्ञों को प्रदान करना।

3. कक्षा में उपयुक्त वातावरण का निर्माण करना।
4. शैक्षिक तथा व्यावसायिक सूचना छात्रों को प्रदान करना।
5. छात्रों को सहायता प्रदान करने के लिए विशेषज्ञों के पास भेजना।
6. अभिभावकों से बालकों की उन्नति तथा विकास के विषय में परामर्श करना।

संयुक्त राज्य अमेरिका की लगभग प्रत्येक पाठशाला में एक परामर्शदाता की व्यवस्था है जिसके सामान्य दायित्व निम्न हैं–

1. बालक का अध्ययन–छात्रों के सम्बन्ध में सूचनाओं का संकलन, विश्लेषण तथा अभिलेख।
2. शिक्षकों, प्रशासकों तथा विशेषज्ञों से परामर्श–सामान्य विकास सम्बन्धी समस्याओं आदि के सम्बन्ध में विचार–विमर्श।
3. छात्रों के परामर्श–छात्रों से व्यक्तिगत रूप में अन्य समूह में मिलना।
4. निर्देशन सम्बन्धी शोधों का संचालन।
5. प्राथमिक पाठशालाओं में उपलब्ध निर्देशन सम्बन्धी सेवाओं का समन्वयन।

किन्तु परामर्शकों के दायित्व एक पाठशाला से दूसरे पाठशाला में भिन्न होते है क्योंकि अल्पआयु तथा अपरिपक्व छात्रों के सम्बन्ध में सूचनाएँ लेकर उनके माता–पिता से मिलना पड़ना है और प्रत्येक पाठशाला के निर्देशन का उद्देश्य तथा दर्शन भी भिन्न हो सकता है।

माध्यमिक विद्यालय–संयुक्त राज्य अमेरिका में माध्यमिक स्तर पर निर्देशन तथा परामर्श का विकास पिछली तीन–चार दशाब्दियों में तीव्रता से हुआ है। अमेरिका में स्थानीय नियंत्रण की परम्परा है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक विद्यालय अपनी कार्य पद्धति उद्देश्य तथा दर्शन के आधार पर निर्देशन की व्यवस्था करता है। इसके लिए एक परिषद का गठन होता है जो कार्यक्रम की देखभाल करता है। सम्प्रति अमेरिका मे 40,000 से ऊपर परिषदों की संख्या है। कार्यक्रमों का निर्माण करते समय यह देखना पड़ता है कि उनमें आवश्यकताओं की पूर्ति कहॉ तक हो पाती है। औद्योगिक क्षेत्रों तथा समाज के उच्च वर्गो के क्षेत्रों की निर्देशन व्यवस्था में अन्तर पाया जाता है।

निर्देशन क्रियाएॅ– माध्यमिक स्तर पर दो प्रकार की मुख्य क्रियाएॅ उल्लेखनीय हैं–

1. सेवाएँ

1. व्यक्तिगत अन्वेषण सेवा
2. सूचना सेवा
3. परामर्श सेवा
4. नियोजन सेवा

5. मूल्यांकन सेवा अथवा अनुगामी सेवा अथवा अनुसंधान सेवा।

2. परामर्शदाता का विद्यार्थी, संकाय सदस्य, पशासक तथा विशेषज्ञों से सम्बन्ध–

(अ) विद्यार्थियों से सम्पर्क–यह सर्वप्रमुख कार्य है। एक निपुण परामर्शक यह जानता है कि छात्रों में उनके सांवेगिक, भावनात्मक तथा अवधारणात्मक स्तर पर कैसे सम्पर्क स्थापित किया जाय। विद्यार्थी भी पूर्ण आस्था और विश्वास के साथ परामर्शक से अपनी समस्याओं (चिन्ता, चुनाव समस्या आदि) के सम्बन्ध में परामर्श करता है

(ब) संकाय से सम्पर्क–परामर्शक संकाय के सदस्यों से निकट का सम्पर्क रखता है और शिक्षक, जिसकी भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण होती है, से सहयोग प्राप्त करता रहता है। दोनों विद्यार्थी की परिवर्तनशीलता आवश्यकताओं का अध् ययन करते रहते है।

(स) प्रशासक तथा विद्यालय के अन्य अधिकारियों से सम्पर्क–अमेरिका के विद्यालयों में प्रशासक को अधिकार है कि वह अपने कार्यक्षेत्र में निर्देशन सम्बन्धी कार्यक्रम का नियोजन, संगठन, उसमें कार्यकर्ताओं की नियुक्ति, निर्देशन तथा निर्देशन का मूल्यांकन करें। उपयुक्त क्षेत्रों का अन्तिम दायित्व उसी का होता है। प्रभावशाली निर्देशन–कार्यकर्ता प्रशासक को निर्देशन की अवस्था, स्तर आवश्यकता तथा संभावित, निर्णयों से अवगत कराते रहते है। बड़े विद्यालयों में परामर्शक विशेषज्ञों से भी सहायता लेते है जिनके अन्तर्गत विद्यालय के मनोवैज्ञानिक सामाजिक कार्यकर्ता, वहॉ की नर्स अथवा चिकित्सक आदि आते है। परामर्शकों के साथ ये विशेषज्ञ छात्र कर्मचारी तथा निर्देशन कार्यकर्ता के नाम से भी जाने जाते है।

निर्देशन का कार्यक्रम मूलतः समुदाय की आवश्यकताओं पर निर्भर करता है अतः कुछ परामर्शक एवं निर्देशन के कार्यकर्ता समाज से सम्पर्क बनाए रखते है और विद्यार्थियों की आवश्यकताओं से माता–पिता तथा अभिभावकों को अवगत कराते रहते है। परामर्शक अभिभावकों को गोष्ठियों तथा सम्मेलनों में बुलाते है, प्रकाशनों के माध्यम बनाते है और विद्यालयों के प्रवेश, विद्यार्थियों को कम अंक पाने की समस्या, उनकी आर्थिक स्थिति तथा पाठ्यक्रम की योजना सम्बन्धी समस्याओं पर चर्चा करते है। सामुदायिक साधनों को भी सूचित करते रहते है।

महाविद्यालयों में निर्देशन–

वर्तमान समय में लगभग सभी विद्यालयों में निर्देशन सेवाओं का संगठन एक अधिष्ठाता के अन्तर्गत है जिसे छात्र–अधिष्ठाता, पुरुष–अधिष्ठाता महिला–अधिष्ठाता कहते है। इन सेवाओं के अन्तर्गत निम्न आते हैं–

1. महाविद्यालयों में प्रवेश के पूर्व परीक्षण तथा परामर्श–इससे जो मध्यम

अथवा निम्न योग्यता के छात्र होते है वे महाविद्यालयों में जाकर अन्यत्र अध्ययन करने चले जाते है। बहुधा अभिवृत्ति परीक्षणों का ही प्रयोग किया जाता है।

2. जिनका प्रवेश हो जाता है उन्हें महाविद्यालयों मे शिक्षा के नये साधनों तथा सुअवसरों तथा उच्च शिक्षा के महत्व से परिचित कराया जाता है। अमेरिका की जनता महाविद्यालयों को ही व्यावसायिक प्रशिक्षण का प्रमुख स्थान मानती है।

3. ऐसा भी पाया गया है कि अभिवृत्ति--परीक्षणों से जिनमें उच्च सम्भावनाओं का आभास मिलता था, वे अधिगम, अध्ययन तथा वाचन में उच्च सफलता नही प्राप्त कर सकें। अतः महाविद्यालयों में व्याख्यान एवं परीक्षा की तैयारी आदि के लिए उपचारात्मक विधियों का प्रयोग किया जाता है।

4. महाविद्यालयों में निवास की व्यवस्था है। ताकि सुरक्षा, स्वच्छता तथा अध्ययन सम्बन्धी आदतों के विकास की व्यवस्था हो सकें।

5. व्यापक रुप में सह--पाठ्यक्रमीय क्रियाओं का आयोजन होता है। वाद–विवाद गोष्ठियों या मनोरंजन के अनेक उपयों की व्यवस्था होती है।

6. अनुशासन की पूर्ण व्यवस्था की जाती है क्योंकि छात्रों में उच्च नैतिकता तथा सदभावना के विकास का दायित्व महाविद्यालयों का होता है। आरम्भ में तो अनुशासन का स्वरुप दमनात्मक था, किन्तु पिछली पॉच–छः दशाब्दियों से अनुशासन को परामर्श से जोड़ दिया गया है। अनुशासन विहीन छात्रों को दण्डित न करके उन्हें परामर्श द्वारा पुनः स्थापित करने का प्रयास किया जाता है।

7. अमेरिकन महाविद्यालयों में विदेशी छात्रों की संख्या बहुत होती है। अतः किसी न किसी को उनकी आवश्यकताओं तथा अध्ययन व्यवस्था देखने के साथ–साथ उन्हें अमेरिकन जीवन पद्धति से परिचित होने, मित्रों को तलाशने तथा अपना वैयक्तिकरण में सहायता प्रदान करनी होती है।

8. महाविद्यालय तथा छात्र संघों की ओर से मनोरंजन की व्यापक व्यवस्था की जाती है।

9. जिन विद्यार्थियों में शिक्षा प्राप्त करने की क्षमता है उन्हें शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रयास इन महाविद्यालयों में किया जाता है।

10. स्नातकीय कक्षा के विद्यार्थियों को उपयुक्त उपजीविका में लगाने का प्रयास भी अमेरिका में विशाल स्तर पर होता है। पाठ्यक्रमों में आंशिक नियोजन की व्यवस्था के समय इन छात्रों के पूर्णकालिक नियोजन की भी व्यवस्था की जाती है क्योंकि मानव शक्ति के पूर्ण सदुपयोग का दायित्व अमेरिका अपना सामाजिक दायित्व समझता है।

छात्र–कर्मचारी कार्य– निर्देशन के क्षेत्र में यह एक नवीन प्रत्यय है जिसकें अन्तर्गत वे क्रियायें आती है जिनका सम्बन्ध छात्र कल्याण से होता है। व्यवसायिक निर्देशन सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था से सम्बन्धित रहता है। राजकीय विद्यालय अधिकारियों ने निम्न क्रियाओं को इनके अन्तर्गत रखा है–

1. उपस्थिति सेवाऍं
2. निर्देशन सेवाऍं
3. विद्यालय स्वास्थ्य सेवाऍं
4. विद्यालय मनोविज्ञान सेवाऍं
5. विद्यालय सामाजिक कार्य–सेवाऍं

लौ ने निम्न सेवाओं की सूची बनाई है–

1. छात्र लेखा सेवाऍं।
2. स्वास्थ्य सेवाऍं
3. उपचारात्मक शिक्षा सेवाऍं।
4. भाषण तथा श्रवण की शुद्धता सेवाऍं
5. गृह विद्यालय समाज सेवा।
6. परामर्श सेवा।
7. माता–पिता शिक्षा सेवा।
8. मूल्यांकन सेवा।
9. अनुसंधान सेवा।

अनुसंधान सेवा के दो उद्देश्य होते हैं–

1. मूल्यांकन अथवा स्थिति सेवा।
2. विकासात्मक वृद्धि सेवा।

अनुसंधान के अन्तर्गत जो क्रियाऍं आती है उनमें दो प्रमुख हैं।

1. बहिरंग योजना की विशेषताओं का अध्ययन।
2. उपभोक्ता के आचरण में परिवर्तन सम्बन्धी अध्ययन।

छात्र कर्मचारी सेवा– छात्र कर्मचारी सेवा के निम्न पहलुओं पर भी चर्चा की आवश्यकता होती है, यथा–

1. सम्पूर्ण प्यूपिल पर्सनल कार्यक्रम में अनुसंधान की दिशाऍं।
2. निर्देशन कार्य में कुछ शोध की दिशाऍं जैसे छात्रों को परामर्श, छात्रों का मूल्यांकन तथा समूह–कार्य।

3. मूल्यांकन की समस्याएँ।
4. प्यूपिल पर्सनल की चुनी हुई दिशाएँ।

अमेरिका में परामर्शदाता प्रशिक्षण—अमेरिका में परामर्शदाता विद्यालयों के अतिरिक्त सेवा नियोजन कार्यालयों उद्योगों एवं व्यापारों समाज कल्याण तथा पुर्नव्यवस्थापन साधनों आदि में पाये जाते हैं, किन्तु माध्यमिक विद्यालयों में 12 वर्ष से 18 वर्ष तक की अवस्था के छात्रों को प्रशिक्षित करने के लिए जिन परामर्शदाताओं की नियुक्ति होती हैं उन्हीं के प्रशिक्षण की चर्चा की जा रही है।

परामर्शकों के प्रशिक्षण के लिए निर्धारित विषय निम्नवत है

1. मनोवैज्ञानिक आधार—बालमनोविज्ञान, व्यक्तित्व तथा गत्यात्मकता।
2. सामाजिक तथा आचारीय विज्ञान जिसके अन्तर्गत समाजशास्त्र, मानवशास्त्र अर्थशास्त्र तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध आते हैं।
3. शिक्षा के आधार—शिक्षा दर्शन, पाठ्यक्रम, संगठन एवं प्रशासन।
4. उपजीविकीय अध्ययन—जैसे परामर्श के सिद्धान्त तथा प्रयोग उनका मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन शोध, विधियॉं शैक्षिक एवं व्यावसायिक सूचनाएँ तथा सम्बन्धित तकनीक।
5. कार्यशालाओं में पर्यवेक्षण, परामर्श तथा परामर्शक के कार्य।

परामर्श में निम्न बातें विचारणीय हैं—

1. व्यक्ति की ओर विशेष ध्यान।
2. परामर्श सुलभ बनाने के प्रयास।
3. विद्यार्थियों की भावनाओं तथा दृष्टिकोण के प्रति संवेदनशीलता।
4. परामर्श से विद्यार्थियों का अधिक से अधिक सहयोग।
5. क्षमता के अन्तर्गत सभी विकल्पों का छात्रों को ज्ञान कराना।
6. प्रौढ़ता तथा स्वतंत्र निर्देशन के प्रति छात्रों को आकृष्ट करना।
7. छात्रों में प्राप्त गोपनीय सूचनाओं के संरक्षण के प्रति आदर भाव।

कुछ राष्ट्रीय योजनाएँ—

1. अमेरिकी कर्मचारी एवं निर्देशन संघ ए0पी0जी0ए0 के तत्वाधान में एक समिति का गठन हुआ है जो उच्च स्तरीय परामर्श सेवाओं के मानक का निर्धारण करती है तथा उसके लिए व्यापक एवं विस्तृत आदरों की स्थापना करती है
2. विद्यालय परामर्शक के कार्यो, कार्य—परिस्थितियों तथा भूमिकाओं को व्यापक करने के लिए सन् 1962 ई0 में अमेरिका विद्यालय परामर्शदाता संघ ने एक अभियान चलाया था जिसके फलस्वरुप एक आख्या प्रकाशित हुयी। जिसमें परामर्शदाताओं के दायित्वों योग्यताओं आदि का विवरण है।

3. परामर्श शिक्षण तथा पर्यवेक्षक संघ ने 1960 में पंचवर्षीय योजना बनाई जिसमें परामर्शकों को स्नातकीय स्तर पर प्रशिक्षित करने के प्रमुख आधारों का वर्णन हैं। इसका भी प्रतिवेदन प्रकाशित हो चुका है।

परामर्शदाताओं के सात सर्वमान्य कार्य हैं।

1. कम से कम आधा समय व्यक्तिगत निर्देशन पर देना।
2. व्यक्ति अध्ययन के माध्यम से शिक्षकों से सहयोग तथा सम्बन्धी सम्बन्ध रखना।
3. विद्यालय की सम्पूर्ण परीक्षण योजना को नेतृत्व प्रदान करना।
4. व्यक्तिगत तथा सामूहिक सम्भाषणों से अभिभावकों को परिचित कराना।
5. विद्यालय में स्वस्थ शैक्षिक वातावरण के विकास के लिए विद्यालय के अध्यापकों के साथ काम करना।
6. समाज के अन्य साधनों से सम्पर्क बनाए रखना।
7. विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को देखते हुए अनुगामी तथा सेवाओं का संयोजन करना।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

15. संयुक्त राज्य अमेरिका में किस स्तर के विद्यार्थियों को भी व्यावसायिक निर्देशन दिया जा रहा है?

....

16. किस देश में माध्यमिक शिक्षा में निर्देशन का प्रचार–प्रसार बहुत ही तीव्र गति से हुआ?

....

3.11 रुस में निर्देशन का विकास–

विद्यार्थियों को व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने अथवा उसे व्यक्तिगत सहायता देने का दायित्व रुस में किसी एक व्यक्ति का नहीं है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वहाँ के विद्यार्थी निरूद्देश्य दिशाहीन होकर इधर–उधर भटकते रहते हैं। रुस के विद्यालयों में इतना काम लिया जाता है कि उनमें निहित शक्ति का स्वयं विकास हो जाता है।

निर्देशन को सहायता प्रदान करने वाले संगठन–अभिभावक संघ–शिक्षा मंत्रालय के आदेशानुसार प्रत्येक विद्यालय में अभिभावक संगठन होता है। इस संगठन

के अन्तर्गत पॉच उपसमितियॉ काम करती है। इनका कार्य सभी बालकों के लिए प्रशिक्षण के लिए व्यवस्था करना, उन्हें पढ़ाना तथा उनके पालन–पोषण का प्रबन्ध करना, शिक्षा सम्बन्धी प्रचार करना, सांस्कृतिक विकास में सामूहिक रूप से योगदान करना तथा स्वच्छता अभियान को गतिशील बनाना होता है। जिस उप–समिति के पास पढ़ाने एवं पालन पोषण का कार्य होता है वहीं उप–समिति विद्यालय के माध्यम से बालक की अधिकतम सफलता का प्रयास करती है। जिस विद्यार्थी को आचरण एवं अधिगम की समस्या होती है उसे भी इसी उप–समिति के पास भेज दिया जाता है।

1. **युवा–संगठन**–इसके अन्तर्गत तीन संगठन होते हैं जो विद्यार्थियों के लिए पाठ्येतर क्रियाओं की व्यवस्था करते हैं।

(अ) आक्टोबृस्ट इकाइयॉ–ये इकाईयॉ 7 से 9 वर्ष के बच्चों की देखभाल करती है।

(ब) दि प्वायनियर्स–10 से 15 वर्ष तक के बालक इसके कार्य क्षेत्र में आते हैं।

(स) दि काम्सोमल– 15 से 27 वर्ष की आयु वाले युवक इसके अन्तर्गत आते हैं।

निर्देशन के अनेक प्रकारों की ओर रूस में ध्यान दिया जाता है जैसे नैतिक निर्देशन, सामाजिक निर्देशन, शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन।

शैक्षिक निर्देशन–रूसी सरकार सात वर्ष की अवस्था वाले प्रत्येक बालक एवं बालिका से यह आशा करती है कि वह अपना शैक्षिक भविष्य सुदृढ़ दिशा में ले जाय। सात वर्ष की अवस्था में जब बालक सर्वप्रथम पाठशाला में प्रवेश लेता है तो उसे रूस सरकार की आरे से शुभ कामना के सन्देश मिलते हैं। बालक तथा बालिकाएँ श्वेत वस्त्र धारण करके तथा हाथ में फूल लेकर प्रथम दिन समारोह एवं उल्लास के साथ प्रवेश लेती हैं। इसके पूर्व बालक एवं बालिका की अध्ययन–तत्परता अनौपचारिक परीक्षणों से ज्ञात कर ली जाती है। जिनमें तत्परता का अभाव रहता है, उनकी ओर रूस के शिक्षाविद अत्यधिक ध्यान देते हैं और जिन विद्यार्थियों की उपलब्धि प्रथम सत्र में कम होती है उन्हें पुनः उसी कक्षा में रोक दिया जाता है।

प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के लिए विद्यार्थियों का वर्गीकरण परीक्षाओं तथा गृहकार्यो के आधार पर किया जाता हैं। उच्च शिक्षा में विशेष उपलब्धि वाले छात्र को वृत्ति भी दी जाती है। विद्यार्थियों को कम अंक देने के बजाय उन्हें अनुत्तीर्ण कर देना अधिक पसन्द किया जाता है ताकि अनुत्तीर्ण छात्र अपने अध्ययन की पुनरावृत्ति कर सकें। कला, संगीत तथा नृत्य के क्षेत्र में जो छात्र विशेष प्रतिभा का परिचय देते हैं उन्हे विशेष प्रकार की संस्थाओं में भेजा जाता है। उच्च शिक्षा के लिए विद्यार्थी की संख्या का निर्धारण देश के योजना–निर्माताओं द्वारा इस आधार पर किया जाता है कि ऐसे कितने विद्यार्थियों की आवश्यकता देश को है। विद्यार्थी अपनी रूचि किसी विशिष्ट शिक्षा के लिए व्यक्त कर सकता है किन्तु साधारण छटनी के उपरान्त ही विद्यार्थी को उसकी रूचि के अनुसार विद्यालय दिया जाता है।

व्यावसायिक निर्देशन—रूस की शिक्षा व्यवस्था में सामाजिक कार्य को अत्यन्त महत्व दिया गया है, अतः श्रम का विषय वहाँ शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर पढ़ाया जाता है। शिशु–स्तर पर इसके अन्तर्गत पौधों तथा गृहस्थी की देखभाल करना सिखाया जाता है। सात वर्ष की अवस्था में शिल्प, बागवानी तथा कुछ कारखाने के काम सिखाये जाते हैं। कुछ विद्यालयों में विद्यार्थियों को सप्ताह में कुछ दिन के लिए फार्मो पर कृषि कार्य करने के लिए भी भेजा जाता हैं। आठवीं ग्रेड तक पहुँचते–पहुँचते प्रत्येक विद्यार्थी को किसी न किसी कार्य का अनुभव हो जाता है। कृषि फार्मो, औद्योगिक प्रतिष्ठानों तथा व्यावसायिक कारखानों में ले जाये जाते हैं और उन्हें यह सिखाया जाता है कि वहाँ कार्य करने की मुख्य पद्धति कौन–सी है। 15 या 16 वर्ष का युवक, जिसने आठ वर्षीय पाठ्यक्रमों के योग्य समझा जाने लगता है।

1. सामान्य पॉलीटेक्निक विद्यालय, जहाँ तीन वर्षो का उत्पादक पाठ्यक्रम पूरा करना पड़ता है।
2. अर्द्ध व्यावसायिक विद्यालय, जहाँ दो या तीन वर्षो का प्रशिक्षण चलता है।
3. व्यावसायिक–प्राविधिक विद्यालय, जिसमें एक वर्ष से तीन वर्षो तक का कार्यक्रम चलता है। इन विद्यालयों में कुशल कारीगरों का प्रशिक्षण होता है।
4. उद्योग, कृषि तथा व्यवसाय सम्बन्धी विद्यालय।

विद्यालय के संकाय के सदस्यों, विद्यार्थियों के प्रतिनिधियों तथा उद्योगपतियो के प्रतिनिधियों की एक समिति गठित होती है जो विद्यार्थी का साक्षात्कार करती है और उसकी शैक्षिक उपलब्धि, सामाजिक समायोजन की क्षमता, व्यक्तिगत आवश्यकता आदि के आधार पर यह निर्णय देती है कि विद्यार्थी को उसकी व्यक्त की हुई रूचि के अनुसार कार्य दिया जाय। किन्तु समिति का निर्णय स्वीकारने या अस्वीकारने में विद्यार्थी स्वतन्त्र होता है। यद्यपि विद्यालयों में कोई सुनियोजित निर्देशन का विभाग नहीं हैं, फिर भी शिक्षा मंत्रालय की ओर से ऐसा दबाव आता है कि विद्यार्थी अपना व्यावसायिक जीवन निर्धारित कर ले।

3.12 सारांश

वर्तमान में निर्देशन सेवाओं ने विश्वभर में शिक्षा व्यवस्था में अनिवार्य रूप से अपना स्थान बनाते हुए एक नवाचार का रूप ले लिया है। विश्व के सभी देश अब निर्देशन को मानव–जीवन के आवश्यकता के रूप में देखते है और इसके विकास पर पूरा ध्यान दे रहे है। भारत भी इससे अछूता नही है परन्तु अन्य देशों के मुकाबले में भारत में निर्देशन सेवाओं का विस्तार अभी मानक के अनुरूप नही हो पाया है।

3.13 अभ्यास कार्य

विश्व के विभिन्न देशों के निर्देशन सेवाओं का वर्णन करते हुए उनकी तुलना में भारत की निर्देशन सेवाओं की विवेचना कीजिए।

3.14 बोध प्रश्नों के उत्तर–

1. 1938 ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग।
2. अप्रत्यक्ष एवं आकस्मिक।
3. श्री सोहनलाल व केजी सैयदेन।
4. आचार्य नरेन्द्र देव ने।
5. 1954 में।
6. निर्देशन कार्यक्रमों एवं विचार धाराओं का प्रसार करने।
7. मुदालियर आयोग।
8. माध्यमिक कक्षाओं से।
9. अन्तिम अंग।
10. 1953 में डॉ० एच०एस० विन्घमं।
11. 1922 में पर सुव्यवस्थित घोषणा 1938 में हुयी।
12. जनरल डाइरेक्टर ऑफ एकेडमिक आर्गनाइजेशन व राष्ट्रीय शिक्षा मंत्रालय।
13. कनाडा में।
14. ब्रिटिश कोलम्बिया।
15. कक्षा एक से छह तक।
16. संयुक्त राज्य अमेरिका।

3.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Perin, H, Mehta & Hoshing, P. Mehta, 1960 : The History of the Guidance Movement in India,.
2. Burt, C., 1929 : A Study of Vocational Guidance,.
3. Pal., S.K., 1968. : Guidance in Many Lands,
4. Keller & Morris, S. Vitales, 1937 : Vocational Guidance Throughout the Worlds,.
5. डॉ० रमाकान्त दुबे, :शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के आधार, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
6. Burt. C., 1955 : The Historical Development of the Child Guidance Movement in Education,.

इकाई–4 निर्देशन के सिद्धान्त एवं तकनीकी

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 निर्देशन की मान्यतायें

4.4 निर्देशन के सिद्धान्त

4.5 निर्देशन के मूलभूत सिद्धान्त

4.6 निर्देशन की प्रविधियाँ

4.7 निर्देशन में सूचना संकलन की प्रमापीकृत विविधाँ

4.8 निर्देशन में रूचि प्रशिक्षण

4.9 निर्देशन में व्यक्तित्व एवं निष्पति परीक्षण

4.10 निर्देशन में अभियोग्यता परीक्षण

4.11 सारांश

4.12 प्रश्नो के उत्तर

4.13 अभ्यास कार्य

4.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना–

हम पूर्व में जान चुके हैं कि निर्देशन एक जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है और इसके अन्तर्गत व्यक्ति को अपनी क्षमताओं को समझने विकास करने समायोजन करने और समस्याओं के समाधान में सहायता दी जाती है। निर्देशन की सम्पूर्ण प्रक्रिया कुछ सिद्धान्तों पर कार्य करती है और इसके लिये कुछ तकनीकों का भी प्रयोग किया जाता है इस इकाई में आप निर्देशन के सिद्धान्त एवं तकनीकों के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

4.2 उद्देश्य–

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- निर्देशन के सिद्धान्तों की विवेचना कर सकेंगे।
- निर्देशन हेतु प्रयुक्त की जाने वाली विविध तकनीकों का वर्णन कर सकेंगे।

4.3 निर्देशन की मान्यतायें

आज के भौतिकवादी जीवन में हताशा, निराशा एवं कुसमायोजन की समस्याओं ने भयावह रूप ले लिया है। इन सभी समस्याओं ने जीवन के प्रत्येक चरण में निर्देशन की आवश्यकता को जन्म दिया। निर्देशन प्रक्रिया कुछ परम्परागत मान्यताओं पर निहित होता है। ये मान्यतायें हैं–

1. **व्यक्ति भिन्नताओं का होना**—व्यक्ति अपनी जन्मजात योग्यता, क्षमता, अभिवृतियों एवं रूचियों के साथ अन्य व्यक्तियों से अलग होता है। यह भिन्नता उसकी समस्याओं की भिन्नता को जन्म देती है। यह उसके व्यवहार एवं व्यक्तित्व के स्वरूप को निर्मित करती है इसलिये उसके भिन्नता की उपेक्षा नहीं की जा सकती है और निर्देशन प्रक्रिया में इसको ध्यान में रखा जाता है।

2. **अवसरों की विभिन्नता**—व्यक्ति अपने वंशानुक्रम एवं वातावरण की भिन्नता को लेकर उत्पन्न होता है। यह विविधता उसके शैक्षिक, सामाजिक तथा व्यावसायिक अवसरों की अनेकरूपता में प्रायः देखी जा सकती है, वास्तव में इन अवसरों की भिन्नता सम्पूर्ण जीवन में विविधता ला देती है और यह निर्देशन प्रक्रिया की प्रमुख मान्यता भी है।

3. **वैयक्तिक विकास को सम्भावित माना जा सकता है**—हमारे वैयक्तिक विकास की प्रक्रिया तथा भावी उपलब्धियों के सम्बन्ध में योग्यता परीक्षणों, अभिक्षमता परखों, रूचियों एवं व्यक्ति के व्यक्तित्व मापनी तथा पूर्व की उपलब्धियों के आधार पर भविष्य कथन सम्भव है।

4. **सामन्जस्य व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकता**—मानव जीवन की सफलता उसकी सामन्जस्य योग्यता पर निर्भर करती है और मनुष्य अधिक समय परिस्थितियों के साथ संघर्ष करके उसमें सामन्जस्य करने का प्रयास करता है। सामन्जस्य व्यक्ति की मूल आवश्यकता है।

5. **वैयक्तिक व सामाजिक विकास हेतु सामन्जस्य एवं परिस्थितियों की विविधता के साथ तालमेल आवश्यक है**—वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास अन्तःसम्बन्धित होते हैं वैयक्तिक उन्नति व्यक्ति की योग्यताओं, अभिक्षमताओं एवं रूचियों तथा बाहय अवसरों में तालमेल एवं समुचित सामन्जस्य पर निर्भर करता है। सामन्जस्य की प्रक्रिया को सहज निष्कंटक तथा सरल बनाने में औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप में उपलब्ध निर्देशन में सहायक होते है।

निर्देशन की सम्पूर्ण प्रक्रिया उपरोक्त सभी मान्यताओं पर निर्भर है। मानव जीवन की सफलता उसके सामन्जस्य क्षमता पर निर्भर करती है और इसके लिये वह निरन्तर प्रयासरत रहता है। आज के युग में विविध प्रकार के मनोवैज्ञानिक तनाव एवं विसंगतियों जिस हद तक हमारी सामाजिक व्यवस्था पर कुठाराघात करती है तब निर्देशन की आवश्यकता स्वयं उपस्थित हो जाती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. वैयक्तिक विभिन्नता के मुख्य कारण क्या है?

....

2. सामाजिक विकास का किससे सीधा सम्बन्ध है ?

....

3. निर्देशन की वर्तमान समय में सबसे अधिक आवश्यकता क्यों पड़ रही है ?

....

4.4 निर्देशन के सिद्धान्त

आप पूर्व में निर्देशन प्रक्रिया की मान्यताओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। निर्देशन में व्यक्ति के विकास और समाजहित दोनों पर ही ध्यान दिया जाता है। वास्तव में निर्देशन की प्रक्रिया उन सभी कार्यो एवं प्रयासों का संगठन है जिसमें व्यक्ति को सामन्जस्य समाहित विशिष्ट तकनीकों के प्रयोग द्वारा परिस्थितियों को संभालने, एक व्यक्ति को उसके अधिकतम विकास तक पहुँचाने जिसमें उसका शारीरिक, व्यक्तित्व, सामाजिक, व्यवसायिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास हो, सम्मिलित है। निर्देशन कुछ निश्चित सिद्धान्तों पर कार्य करता है। इसके प्रमुख सिद्धान्तों को लेस्टर डी0 क्रो एवं एलिस क्रो ने अपनी रचना ''एन इण्ट्रोडक्शन टु गाइडेन्स'' में वर्णित किया है। इनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

- व्यक्ति का सम्पूर्ण प्रदर्शित व्यक्तित्व एवं व्यवहार एक महत्वपूर्ण घटक होता है। निर्देशन सेवाओं में इन तत्वों के महत्व को दिया जाना चाहिये।
- मानव की सभी विभिन्नताओं को स्तरानुसार एवं आवश्यकतानुसार महत्व देना चाहिए।
- व्यक्ति को प्रेरक, उपयोगी तथा प्राप्त होने योग्य उद्देश्यों के निरूपण में मदद करना।
- वर्तमान उपस्थित समस्याओं के उचित समाधान हेतु प्रशिक्षित एवं अनुभवी निर्देशनदाता द्वारा यह दायित्व निभाना जाना चाहिए।
- निर्देशन को बाल्यावस्था से प्रौढ़ावस्था तक अनवरत रूप से चलने वाली प्रक्रिया के रूप में प्रस्थापित करना।
- निर्देशन की प्रक्रिया को सर्वसुलभ बनाया जाना चाहिये जिससे कि वह आवश्यकता को न बताने वाले व्यक्ति को भी मिल सके।

- विविध पाठ्यक्रमों के लिये गठित अध्ययन सामग्रियों तथा शिक्षण पद्धतियों में निर्देशन का दृष्टिकोण झलकना चाहिये।
- शिक्षकों एवं अभिभावकों को निर्देशनपरक उत्तरदायित्व सौपा जाना चाहिये।
- निर्देशन को आयु स्तर पर निर्देशन की विशिष्ट समस्याओं को उन्हीं व्यक्तियों को सुपुर्द करना चाहिये जो इसके लिये प्रशिक्षित हो।
- निर्देशन के विविध पक्षों को प्रशासन बुद्धिमतापूर्वक एवं व्यक्ति के सम्यक अवबोध के आधार पर करने की दृष्टि से व्यक्तिगत मूल्यांकन एवं अनुसंधान कार्यक्रमों को संचालित करना चाहिये।
- वैयक्तिक एवं सामुदायिक आवश्यकताओं के अनुकूल निर्देशन का कार्यक्रम लचीला होना चाहिये।
- निर्देशन कार्यक्रम का दायित्व सुयोग्य एवं सुप्रशिक्षित नेतृत्व पर केन्द्रित होना चाहिंये।
- निर्देशन के कार्यक्रमों का सतत् मूल्यांकन करना चाहिये। और इस कार्यक्रम में लगे लोगों का इसके प्रति अभिवृत्तियें का भी मापन होना चाहिये क्योंकि इनका लगाव ही इस कार्यक्रम की सफलता का राज होता है।
- निर्देशन कार्यक्रमों का सम्यक संचालन हेतु अत्यन्त कुशल एवं दूरदर्शिता नेतृत्व अपेक्षित है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4. निर्देशन की प्रक्रिया में प्रशिक्षित कार्मिकों की आवश्यकता क्यों होती है।

....

5. निर्देशन कार्यक्रमों का सतत् संचालन क्यों होना चाहिये?

....

4.5 निर्देशन के मूलभूत सिद्धान्त

निर्देशन के अधिकांश सिद्धान्तों के विषय में ऊपर पढ़ चुके है। यह स्पष्ट हो गया कि यह निर्देशन कार्मिकों, प्रशासकों, शिक्षकों, विशेषज्ञों एवं निर्देशन का लाभ उठाने वाले सेवार्थियों का आपसी सहयोग उनकी निष्ठा तथा प्रेरणा पर निर्भर करता है। निर्देशन के मूलभूत सिद्धान्त हैं जिनपर यह कार्य करता है।

- निर्देशन जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है जो कि जीवन के प्रत्येक चरण में उपयोगी होती है।
- निर्देशन व्यक्ति विशेष पर बल देता है। यह प्रक्रिया व्यक्ति को स्वतन्त्रता देते

हुये उसे अपनी समस्याओं को सुलझाने हेतु उसकी आवश्यकताओं के अनुसार ही सहयोग देता है।

- निर्देशन स्व निर्देशन पर बल देता है। यह प्रक्रिया सेवार्थी को स्वयं अपनी दक्षता विकसित करने योग्य बनाती है।
- निर्देशन सहयोग पर आधारित प्रक्रिया है अर्थात् यह सेवा प्रदाता एवं सेवार्थी के आपसी तालमेल पर निर्भर करता है।
- निर्देशन एक पूर्व नियोजित एवं व्यवस्थित प्रक्रिया है। यह अपने विविध चरणों से आगे बढ़ती हुयी संचालित की जाती है।
- निर्देशन में सेवार्थी से सम्बन्धित आवश्यक जानकारी को पूरी तरह से व्यवस्थित एवं गोपनीय रखी जाती है।
- यह कम से कम संसाधनों के अनुप्रयोग द्वारा अधिक से अधिक निर्देशन सेवाओं को उपलब्ध कराने के सिद्धान्त पर निर्भर करनी है।
- निर्देशन के लिये जो भी संसाधन उपलब्ध हैं, के गहन रूप में उपयोग का सिद्धान्त अपनाया जाता है।
- निर्देशन के कार्यक्रमों का सेवार्थी की आवश्यकताओं के अनुकूल संगठन कर आवश्यकताओं की संतुष्टि पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है।
- निर्देशन प्रक्रिया सेवाओं के विकेन्द्रीकरण पर बल देती है।
- निर्देशन सेवाओं में समन्वय लाने का कार्य किया जाता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

निर्देशन में किससे सम्बन्धित जानकारियों को गोपनीय रखा जाता है।

....

निर्देशन सेवाओं में किसके मध्य तालमेल पर बल दिया जाता है?

....

निर्देशन में किसका समन्वय किया जाता है?

....

निर्देशन की प्रविधियाँ

निर्देशन प्रक्रिया में सबसे अधिक आवश्यक होता है सेवार्थी की व्यक्तिगत विशेषताओं, योग्यताओ या इच्छाओं को जानना। इनको जाने बिना परामर्श द्वारा दिया जाने वाला सहयोग अप्रभावी हो जाता है। विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि जानने की आवश्यकता को बताते हुये रीविस एवं जुड ने इस प्रकार व्यक्त किया कि–''छात्रों'' की पृष्ठभूमि तथा उनके अनुभवों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किये बिना उनके विकास में पथ प्रदर्शन करने का

प्रयत्न असम्भव के लिये प्रयत्न करने के समान है।"

जोन्स ने कहा है कि–"चुनाव करने में जो सहायता दी जाये उसका आधार व्यक्ति से सम्बन्धित पूर्ण ज्ञान, उनकी प्रमुख आवश्यकताये तथा उनके निर्णय को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों का ज्ञान होना चाहिये।" निर्देशन हेतु निम्न सूचनायें प्राप्त की जाती है–सामान्य सूचनाये, पारिवारिक व सामाजिक वातावरण, स्वास्थ्य, विद्यालयी इतिहास और कक्षा कार्य का आलेख साफल्य, मानसिक योग्यता, अभियोग्यता, रूचियों, व्यक्तित्व, समायोजन स्तर एवं भविष्य की योजना। सूचनायें प्राप्त करने की दो विधियाँ हैं।–

अ) प्रमापीकृत परीक्षाये

ब) अप्रमापीकृत परीक्षायें

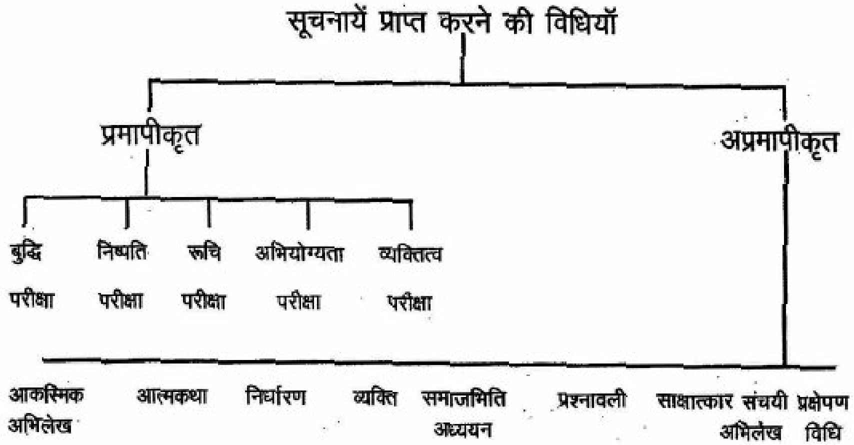

सूचनायें प्राप्त करने की अप्रमापीकृत विधियाँ–

- **वृतान्त अभिलेख**–यह अवलोकन विधि की एक शाखा है। यह व्यक्तित्व अध्ययन में भी सहायक है। अध्यापक द्वारा छात्रों के प्रतिदिन के कार्यो का निरीक्षण किया जाये और उसको लिख ले। रेटस ल्यूइस के अनुसार–किसी छात्र के जीवन की महत्वपूर्ण घटना का प्रतिवेदन ही वृतान्त अभिलेख है। यह वास्तविक स्थिति में बच्चे के चरित्र तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी अभिलेख होता है। इसमें सहयोग प्राप्त करना, प्रारूप तैयार करने, मुख्य अभिलेख प्राप्त करना का संक्षिप्तीकरण आदि चरण होते हैं।

- **आत्मकथा**–यह एक आत्मनिष्ठ विधि है। यह दो प्रकार की होती है–निर्देशित व व्यक्तिगत इतिहास। निर्देशित आत्मकथा में व्यक्ति अपने सम्बन्ध में लिखने के लिये स्वतन्त्र नहीं होता है। यह एक प्रश्नावली के रूप में होती है। व्यक्तिगत इतिहास में किसी प्रकार के निर्देश नहीं होते है। छात्र अपने सम्बन्ध में सब कुछ लिखता है। इस प्रकार का विवरण या गाथा क्रमबद्ध या व्यवस्थित नहीं होता है।

- **क्रम निर्धारण मान**–इस विधि से व्यक्तित्व तथा निष्पति का मापन होता है। यह एक आत्मनिष्ठ विधि है जिसमें वैद्यता तथा विश्वसनीयता कम पायी जाती

है। रूथ स्ट्रैंग के अनुसार निर्देशित परीक्षण ही क्रम निर्धारण मान है। इसके प्रकार है– 1. रेखांकित मापदण्ड 2. संख्यात्मक मापदण्ड 3. संचयी अंकविधि 4. पदक्रम मापदण्ड रेखांकित मापदण्ड का व्यापक रूप में होता है इसमें एक रेखा बनी रहती है इसको कई भागों में विभक्त किया जाता है। निर्णायक को इनमें से ही किसी एक पर चिन्ह लगाना होता है। संख्यात्मक मापदण्ड में अंकों को निश्चित उद्दीपकों के साथ सम्बन्धित कर देते हैं। इस मापदण्ड में छात्रों को गुणों के आधार पर अंक मिलते हैं। संचयी अंक विधि में व्यक्ति के गुणो का मूल्यांकन करके अंक प्रदान कर दिये जाते है। पदक्रम मापदण्ड में नियमानुसार उच्च से निम्न स्तर की ओर क्रम से स्थान दिये रहते हैं।

- **व्यक्ति–वृत अध्ययन–व्यक्ति**–वृत अध्ययन विधि का प्रयोग भी व्यक्ति से सम्बन्धित सूचनाये एकत्रित करने के लिये किया जाता है। इस विधि का सर्वप्रथम उपयोग 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में सुव्यवस्थित रूप से हुआ। इसमें व्यक्ति से सम्बन्धित सभी सूचनायें एकत्रित तथा व्यवस्थित की जाती है। छात्रों की कठिनाइयों के कारण ज्ञात **करने के** लिये उन सूचनाओं का अध्ययन किया जाता है।

- **समाज भिति** मानव एक **सामाजिक प्राणी** है। उसको समाज के अन्य व्यक्तियों के **साथ** रहना पड़ता है। एण्ड्रू एवं विली के अनुसार "समाजभिति एक रेखाचित्र है जिसमें कुछ चिन्ह और अंक किसी सामाजिक समूह के सदस्यों द्वारा सामाजिक स्वीकृति या त्याग का ढ़ंग प्रदर्शित करने के लिये प्रयुक्त होते हैं। इसके द्वारा एक समूह के सदस्यों की पारस्परिक भिन्नता का पता लगाया जा सकता है। इसमें प्रमुख रूप से दो विधियॉ काम में लायी जाती है–1. प्रश्नावली 2. निरीक्षण। समाजभिति का अध्ययन व्यक्तियों के पारस्परिक सामाजिक सम्बन्धों को प्रकट करता है।

- **प्रश्नावली**–यह एक आत्मनिष्ठ विधि है। गुड एवं हैट ने प्रश्नावली की परिभाषा इस प्रकार दी है–सामान्यतः प्रश्नावली शब्द प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने की योजना की ओर संकेत करता है। व्यक्ति को स्वयं प्रश्नावली फार्म भरना होता है।" इसके दो रूप होते है– अ) प्रमापीकृत प्रश्नावली–यह इन्वेन्ट्री कहलाती है इसको व्यक्तित्व के जॉच के लिये प्रयोग में लाया जाता है। प्रश्नावली–इस प्रश्नावली द्वारा व्यक्ति की साधारण सूचनायें प्राप्त की जाती हैं। प्रश्नावली के दो प्रकार होते हैं–

1) **बन्द प्रश्नावली**–इसमें व्यक्ति हॉ या नहीं में उत्तर देता है स्वयं कुछ नहीं लिखता।

2) **खुली प्रश्नावली**–इस प्रकार की प्रश्नावली में प्रश्नों के आगे उत्तर लिखने के लिये रिक्त स्थान रहता है। इस विधि से प्रश्नावली बनाने व प्राप्त उत्तरों की व्याख्या करने में समय लगता है।

साक्षात्कार

साक्षात्कार एक उद्देश्यपूर्ण संवाद है। विंघम और मूर के अनुसार यह एक गंभीर संवाद है जो साक्षात्कारजन्य संतोष की अपेक्षा एक निश्चित उद्देश्य की ओर उन्मुख होता है। साक्षात्कार आयोजित करने के उद्देश्य–परिचयात्मक, तथ्याश्रित, मूल्यांकनपरक, ज्ञानवर्धक तथा चिकित्सकीय प्रकृति वाली सूचनाएँ एकत्र करना। इसकी दूसरी विशेषता है–साक्षात्कारकर्ता तथा जिससे साक्षात्कारदाता के मध्य परस्पर संबंध स्थापित होना है। इस अवसर का उपयोग साक्षातकर्ता से मित्रवत् अनौपचारिक बातचीत के लिए किया जाना चाहिए। उसे आत्मविश्वासपूर्ण मुक्त तथा वातावरण में बातचीत करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

विभिन्न प्रकार के साक्षात्कार

जिन–जिन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर साक्षात्कार किया जाता है उनके अनुसार ही साक्षात्कार भिन्न–भिन्न प्रकार के होते हैं। यदि किसी पद के लिए किसी प्रत्याशी का चयन करना है तो यह नियोजन या रोजगार संबंधी साक्षात्कार होगा। यदि साक्षात्कार का उद्देश्य तथ्य संग्रह या उनकी संपुष्टि करना है तो इसे तथ्यान्वेषी साक्षात्कार कहा जाएगा। इस प्रकार साक्षात्कारों का वर्गीकरण उनके उद्देश्यानुसार होता है। दूसरे प्रकार के विभाजन का आधार साक्षात्कार करने वाले और साक्षात्कार देने वाले व्यक्तियों के मध्य संबंधों के स्वरूप के आधार पर ही साक्षात्कारों को वर्गीकृत किया जा सकता है। यदि साक्षात्कार में उपबोधक की मुख्य भूमिका है तो इसे उपबोधक केंद्रित साक्षात्कार कहा जाएगा। यदि यह उपबोधक–प्रार्थी को प्रमुखता देता है तो इसे उपबोधन–प्रार्थी केंद्रित साक्षात्कार कहा जाता है। कभी–कभी साक्षात्कार करने के तरीके से भी साक्षात्कार के प्रकार का निर्धारण होता है।

साक्षात्कार के प्रमुख निम्नलिखित हैं

1. **स्थानन/रोजगार साक्षात्कार** इस प्रकार के साक्षात्कार का उद्देश्य पद के लिए प्रत्याशी की पात्रता का आकलन करना है। इसमें साक्षात्कारकर्ता अधिक बोलता है यानी प्रश्न पूछता जाता है और उसकी तुलना में साक्षात्कार देने वाला कम बोलता है यानी प्रश्न पूछता जाता है और उसकी तुलना में साक्षात्कार देने वाला कम बोलता है यानी वह केवल पूछे गये प्रश्नों के उत्तर ही देता है।

2. **तथ्यान्वेषी साक्षात्कार** : अन्य स्रोतों से संकलित आंकड़ों/सूचनाओं तथा तथ्यों की संपुष्टि करना तथ्यान्वेषण साक्षात्कार का उद्देश्य होता है।

3. **निदानात्मक साक्षात्कार** : इस प्रकार के साक्षात्कार का उद्देश्य समस्या के निदान खोजकर उसका उपचार करना है। इसमें साक्षात्कारकर्ता द्वारा साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति की समस्या का निदान करके उसके लक्षणों को ज्ञात करने का प्रयत्न किया जाता है। यानी साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति की समस्या का हल करने के लिए आवश्यक सूचनाओं का संकलन किया जाता है।

4. **उपबोधन प्रधान साक्षात्कार** : उपबोधन प्रधान साक्षात्कार का उद्देश्य देने

वाले व्यक्ति की अंतर्दृष्टि का विकास करना होता है। इस प्रकार के साक्षात्कार प्रारंभ सूचना के संकलन कार्य से होता है। फिर निर्देशन प्रक्रिया के साथ–साथ अग्रसर होता हुआ वह समस्या के मनोवैज्ञानिक उपचार के रूप में समाप्त हो जाता है।

5. **व्यक्तिगत तथा सामूहिक साक्षात्कार :** जब एक समूह में बहुत से लोगों का साक्षात्कार जिया जाए, तो इसे सामूहिक साक्षात्कार कहते हैं। किंतु मूलरूप में सभी प्रकार के सामूहिक साक्षात्कार व्यक्तिगत साक्षात्कार ही हुआ करते हैं, क्योंकि सामूहिक साक्षात्कार भी तो व्यक्ति के रूप में साक्षात्कार देने वाले व्यक्तियों का ही साक्षात्कार है। सामूहिक साक्षात्कार का उद्देश्य समूह की सामान्य समस्याओं का संकलन करना और उनकी जानकारी प्राप्त करना है। व्यक्तिनिष्ठ साक्षात्कार में विशेष से संबंधित समस्याओं की ओर ही झुकाव रहता है।

काल रोजर्स का व्यक्तिनिष्ठ साक्षात्कार के विषय में भिन्न मत हैं। उनका मत है कि व्यक्तिनिष्ठ साक्षात्कार का केंद्र बिंदु व्यक्ति को प्रभावित करने वाली समस्या नहीं है बल्कि उसका केंद्र बिंदु तो स्वयं व्यक्ति ही है। व्यक्तिनिष्ठ साक्षात्कार का उद्देश्य व्यक्ति विशेष की किसी एक समस्या का निराकरण करना नहीं होता अपितु साक्षात्कार देने वाले को इस प्रकार सहायता प्रदान करना है कि वह खुद ही इतना सक्षम हो जाए कि वह वर्तमान की और भविष्य में आने वाली सभी समस्याओं का कुशलतापूर्वक और समायोजित ढंग से सामना कर सके।

6. **सत्तावादी तथा गैर–सत्तावादी साक्षात्कार (Authoritarian v/s Non authoritarian)**

सत्तावादी साक्षात्कार में सेवार्थी तथा उसकी समस्याएँ पीछे छूट जाती हैं और साक्षात्कारकर्ता अपनी उन्नत स्थिति का लाभ उठाकर साक्षात्कार प्रक्रिया में हावी हो जाता है। गैर–सत्तावादी साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता की अधिनायक जैसी भूमिका का वर्जन होता है। भले ही साक्षात्कार देने वाला व्यक्ति साक्षात्कारकर्ता को सत्ता संपन्न समझे फिर भी इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता एक अधिनायक की भाँति व्यवहार नहीं करता । वह सेवार्थी की भावनाओं का आदर करता है, उनकी वर्जना नहीं करता। वह साक्षात्कार लेते समय कई प्रकार की तकनीकों का उपयोग करता है, जैसे प्रत्याशी/उम्मीदवार को सुझाव देना, उत्साहित करना, उपबोधन देना, आश्वासन प्रदान करना, व्याख्या करना तथा सूचना प्रदान करना।

7. **निदेशित व अनिदेशित साक्षात्कार :** निदेशित साक्षात्कार के अंतर्गत साक्षात्कारकर्ता सेवार्थी को निर्देशन देता है। कभी वह सुझाव देकर, प्रोत्साहित कर अथवा डरा–धमकाकर अपने उपबोधन से मार्ग प्रशस्त करता है। किंतु अनिदेशित, साक्षात्कार में यह मान लिया जाता है कि साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति में स्वयं विकास और अभिवृद्धि करने की क्षमता विद्यमान है। अनिदेशित साक्षात्कारों में सेवार्थी को अपनी भावनाओं और संवेगों को प्रकट करने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। साक्षात्कार लेने वाला सेवार्थी के भूतकाल में न तो झाँककर देखने का प्रयत्न करता है और न ही उसे कोई सुझाव देता है। वह प्रार्थी को पुनर्शिक्षित करने या परिवर्तित करने का प्रयत्न भी नहीं करता।

8. **संरचित व असंरचित साक्षात्कार :** संरचित साक्षात्कार में निश्चयात्मक प्रश्नों की एक श्रंखला पूर्वनिश्चित होती है। साक्षात्कारकर्ता प्रश्न करते समय स्वयं को केवल उन्हीं बिंदुओं तक सीमित रखता है जिनकी साक्षात्कार के समय चर्चा करना चाहता है। संरचित साक्षात्कार मे निश्चित प्रश्न ही पूछे जाते हैं जबकि असंरचित साक्षात्कार में ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं होता। उसमें साक्षात्कार लेने वाला अपने विचार व्यक्त करने में पूर्ण स्वतंत्र होता है। चर्चा का विषय पूर्व निर्धारित नहीं होता। असंरचित साक्षात्कार में कभी–कभी ऐसी सूचनाएँ भी प्राप्त होती हैं जो देखने में महत्वहीन या तुच्छ लगें किंतु जब उनकी व्याख्या की जाती है तो वे अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होती हैं।

साक्षात्कार के माध्यम से किए जाने वाले उपबोधन के सामान्य नियम

किसी भी साक्षात्कार की सफलता में निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान दिया जाए:

1. साक्षात्कार की परिस्थिति ऐसी हो जहाँ अधिक अनुभवी और प्रशिक्षित व्यक्ति दूसरे की बात भली प्रकार सुनने को तत्पर रहे।
2. उपबोध्य को साक्षात्कार और उपबोधन की आवश्यकता महसूस होनी चाहिए।
3. उपबोधन प्रारंभ करने के पूर्व सेवार्थी के संबंध में अपेक्षित सभी तथ्यों की पूरी जानकारी उपबोधक के सामने रहे।
4. उपबोधक और उपबोध्य में सौहार्द पूर्ण संबंध स्थापित हो जाना चाहिए। यह एक प्रकार से उपबोधक विश्वास तथा समादरपूर्ण संबंध है जो कि विश्वास और सुरक्षा की भावना पर आधारित है।
5. साक्षात्कार का प्रारंभ पारस्परिक मधुर और स्नेहपूर्ण अभिवादनों से होना चाहिए। इसमें ऐसी प्रतीत नहीं होनी चाहिए कि सेवार्थी उपबोधक के अधीन है या कि एक व्यक्ति दूसरे पर हावी है।
6. चर्चा को मूल मुद्दे तक ही सीमित रखना चाहिए।
7. जब उपबोध्य अपनी बात कहना चाहे तो उसे अपनी बात कहने की अनुमति मिलनी चाहिए। उपबोध्य का विरोध करके अथवा उसको नीचा दिखाने से उपबोधक को कुछ भी हाथ लगने वाला नहीं है।
8. साक्षात्कार का लक्ष्य उपबोध्य में समस्या को समझने की अंतर्दृष्टि पैदा करना तथा उससे संबंधित परिणामों तक पहुँचना होना चाहिए।
9. निर्णय लेने में उपबोध्य को अग्रिम भूमिका निभाने का अवसर देना चाहिए।
10. साक्षात्कार की समाप्ति रचनात्मक सुझावों से होनी चाहिए।

साक्षात्कार से लाभ

साक्षात्कार व्यक्ति के अध्ययन हेतु काम आने वाली एक अमानकीकृत तकनीक है। छात्रों को उपबोधन प्रदान करने में साक्षात्कार का प्रायः उपयोग होता है। यह वह तकनीक है जिसके अभाव में उपबोधन का कार्य संभव नहीं है। यह एक मूल्यवान

तकनीक है जिससे सूचनाओं की प्राप्ति, समूह को सूचनाएँ प्रदान करना तथा नए कर्मचारी का चयन करना संभव होता है एवं व्यक्ति को समायोजन करने तथा समस्या के समाधान में सहायता प्रदान की जाती है।

निर्देशन और उपबोधन की तकनीक के रूप में साक्षात्कार के निम्नलिखित लाभ हैं :

1. निर्देशन की अन्य तकनीकों से जो कार्य संभव नहीं है उन्हें सम्पन्न करने हेतु निर्देशन–कार्य में व्यापक रूप से प्रयुक्त होने वाली यह उत्तम तकनीक है। उदाहरणार्थ, व्यक्ति के निजी जीवन से संबधित अधिकतर आँकड़ों/सूचनाओं का अपेक्षाकृत अल्प समय और कम श्रम से संकलन करने में यह प्रविधि कारगर सिद्ध होती है।

2. यह बहुत लचीली तकनीक है। विभिन्न पृष्ठभूमि के सभी प्रकार के व्यक्तियों की सभी परिस्थितियों में यह तकनीक बहुत उपयोगी है।

3. यह बहुतेरे उद्देश्यों की पूरक है। आप अपना उद्देश्य निर्धारित कर तद्नुसार साक्षात्कार कर सकते हैं। तथ्यान्वेषी साक्षात्कार का आयोजन करना चाहें तो आप छात्र के माता–पिता, मित्र, संबंधी, अध्यापक अथवा जो भी व्यक्ति उसके अधिक सम्पर्क में आया हो, उससे साक्षात्कार करें।

4. इसका बहुत अधिक उपचारात्मक मूल्य भी है। साक्षात्कारकर्ता और साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति के मध्य में साक्षात्कार आमने–सामने का संबंध स्थापित करता है। प्रत्यक्ष संबंध स्थापित होने से सेवार्थी की समस्या के प्रति अंतर्दृष्टि का विकास होता है। साक्षात्कारकर्ता को सेवार्थी के संबंध में जो जानकारी प्राप्त होती है उसका बहुत उपचारात्मक महत्व है।

5. समस्या के निदान में साक्षात्कार सहायक है। प्रार्थी द्वारा अनुभूत समस्या के कारणों का उद्घाटन करने में यह बहुत सहायक है। इसलिए कुछ मनोवैज्ञानिक साक्षात्कार को निदान और उपचार के बहुत उपयोगी तकनीक मानते हैं।

6. आमने सामने के सम्पर्क से सेवार्थी के व्यक्तित्व के संबंध में बहुत से महत्वपूर्ण सूत्र हाथ लग जाते हैं। मुख–मुद्रा, भावभंगिमा तथा बैठने का ढंग आदि मनोभावों की प्रतीति कराने में सहायक हैं तथा भावना और अभिवृत्ति को अप्रत्यक्ष रूप से उद्घाटित कर देते हैं।

7. साक्षात्कार सेवार्थी के लिए भी उपादेय है। इससे उसे अपनी समस्या तथा स्वयं के बारे में विचार करने में सहायता मिलजी है। साक्षात्कार ही वह सर्वाधिक उपयोगी परिस्थिति होती है, जब सेवार्थी अपने बारे में, अपनी योग्यताओं, कौशलों, अभिरूचियों तथा अपने कार्यजगत के बारे में समुचित समझ प्राप्त करता है।

8. साक्षात्कार के माध्यम से उपबोधक तथा सेवार्थी दोनों में ही अपने–अपने विचार तथा अभिवृत्तियों को पारस्परिक संवाद द्वारा प्रकट करने की इच्छा जाग्रत होती है।

एक तकनीक के रूप में साक्षात्कार की सीमाएँ

1. साक्षात्कार एक व्यक्तिनिष्ठ तकनीक है। सेवार्थी के बारे में सूचनाओं का संकलन करने में इसके अंदर वस्तुनिष्ठता की कमी है। साक्षात्कार के माध्यम से संकलित सूचनाओं की व्याख्या में साक्षात्कारकर्ता का व्यवहार पक्षपात और पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हो सकता है।
2. व्यक्तिगत पक्षपात हो तो साक्षात्कार कम विश्वसनीय और अवैध होगा।
3. साक्षात्कार के परिणामों की व्याख्या करना बहुत कठिन है।
4. साक्षात्कार की उपयोगिता सीमित है। साक्षात्कार की सफलता साक्षात्कारकर्ता के व्यक्तित्व के गुणों पर निर्भर करती है। वह किस प्रकार से साक्षात्कार ले रहा है। यदि साक्षात्कारकर्ता एकपक्षीय बातचीत के द्वारा एकाधिकार बनाए हुए है और सेवार्थी जो कुछ कह रहा है, उसे सुना–अनसुना कर रहा है तो ऐसी स्थिति में साक्षात्कार का मूल्य समाप्त हो जाता है।

4.7 निर्देशन में सूचना संकलन की प्रमापीकृत विधियाँ

निर्देशन कार्यक्रमों में प्रमापीकृत परीक्षाओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। क्योंकि–

*प्रमापीकृत परीक्षायें निष्पक्ष एवं वस्तुनिष्ठ विधि है।

*इसमें सूचनायें एकत्रित करने में समय लगता है।

*परीक्षाओं द्वारा व्यक्तित्व सम्बन्धी समस्याओं का अप्रत्यक्ष रूप से पता लगाना सम्भव है। प्रमापीकृत परीक्षाओं की उपयोगिता अधिक है परन्तु इनकी कुछ परिसीमायें हैं। जो कि वैधता, विश्वसनीयता, उपयोगिता तथा प्रतिदर्शी के क्षेत्रों में पायी जाती हैं। इनका विभाजन किया जाता है :–

1.बुद्धि परीक्षायें 2. साफल्य परीक्षण 3. अभियोग्यता परीक्षायें

4. रूचि परीक्षायें 5. व्यक्तित्व परीक्षायें

बुद्धि परीक्षण–सर्वप्रथम 1875 में व्यक्तिगत भेद पर ध्यान केन्द्रित किया गया और फिर अनेक प्रयोग व्यक्तिगत विभेद पर किये गये। इनमें कैटिल एवं गाल्टन के नाम प्रमुख हैं। और बुद्धिमापन का कार्य मुख्य रूप में बिने ने प्रारम्भ किया। 1905 में प्रथम बुद्धि परीक्षण निकाला गया और 1908 एवं 1911 में इस परीक्षण का संशोधन किया गया और फिर बिने ने सहयोगियों से साथ मिलकर "स्टेनफोर्ड–बिने टेस्ट" निकाला। उनके अनुसार–

$$\text{बुद्धि लब्धि (I.Q.)} = \frac{\text{मानसिक आयु (M.A.)}}{\text{वास्तविक आयु (C.A.)}} \times 100$$

बुद्धि परीक्षण के इस टेस्ट को कई देशों में अनुवाद किया गया यह मुख्यतः दो प्रकार में विकसित हुये।

शाब्दिक बुद्धि परीक्षण–भारत में 1922 में सर्वप्रथम बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया

गया जब डॉ0 सी0एच0 राइस ने सर्वप्रथम "हिन्दुस्तानी 'बिने' परफारमेन्स पाइन्ट स्केल" का निर्माण किया। वी0वी0 कामथ ने सन् 1935 को फिर दूसरा प्रयास किया। बाद में पं0 लल्ला शंकर झा ने सन् 1933 में "सिम्पल मेन्टल टेस्ट" को बनाया। 1936 में डॉ0 एस0 जलोटा ने सामूहिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया। सन् 1937 में श्री एल0 के0 शाह ने सामूहिक मानसिक योग्यता परीक्षण का निर्माण किया। सन् 1950–60 के मध्य केन्द्रीय शिक्षा संस्थान (CIF) दिल्ली तथा मनो–वैज्ञानिक शाला इलाहाबाद ने विभिन्न आयु वर्ग के बालकों के लिये सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण अलग–अलग तैयार किये। शाब्दिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण शब्दों के माध्यम से किया जाता जिसमें किसी भाषा लिपि का प्रयोग होता है।

अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण–वे बुद्धि परीक्षण जिनमें परीक्षण के निर्माण में किसी भाषा लिपि को माध्यम नहीं बनाया जाता अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण कहलाते हैं। भारत में सर्वप्रथम अहमदाबाद के प्रो0 पटेल ने गुडएनफ को बनाया। बड़ोदरा की प्रमिला पाठक ने "ड्रा ए मैन टेस्ट" का भारतीय परिस्थितियों के लिए अनुकूलन किया। सन् 1938 में मेन्जिल्य ने एक मौलिक अशाब्दिक परीक्षण बनाया। 1942 में विकरी तथा ड्रेयर ने भी एक परीक्षण बनाया। 1967 में एस0 चटर्जी व एम0 मुकर्जी ने एक परीक्षण बनाया।

निष्पादन परीक्षण–इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी परीक्षण बने जो कि निष्पादन पर आधारित थे इनमें प्रमुख गोडार्ड फार्म बोर्ड, गुडएनफ का ड्राइंग ए मैन टैस्ट, कोहलर ब्लॉक डिजाइन टेस्ट इत्यादि हैं। इन सभी परीक्षणों को भारतीय आवश्यकताओं के अनुसार रूपान्तरित कर लिया गया।

ये मुख्यतः सुविधा व सरलता के आधार पर निम्न प्रकार के होते हैं।

1. **व्यक्तिगत परीक्षण**--यह परीक्षण एक समय में एक ही व्यक्ति पर प्रशासित किये जा सकते हैं। बिने के परीक्षण व्यक्तिगत परीक्षण थे। इनमें मुख्यतः बिने स्टेनफोर्ड, वैश्लर वैल्यू, बर्ट के तर्कशक्ति मिनेसोटा पूर्व विद्यालय परीक्षण।
2. **समूहिक परीक्षण**-- इन परीक्षणों को एक ही समय पर पूरे समूह पर प्रशासित किये जा सकता हैं ये परीक्षायें अत्यन्त उपयोगी हैं। जैसे कि आर्मी अल्फा परीक्षण, आर्मी वीटा परीक्षण, आर्मी जनरल, क्लासीफिकेशन, क्हूलमैन एण्डरसन बुद्धि परीक्षण।
3. **शक्ति परीक्षण** – इस परीक्षण के द्वारा व्यक्ति की किसी एक विशेष क्षेत्र से सम्बन्धित शक्ति की परीक्षा ली जाती है। इसमें समय निर्धारित नहीं होता।
4. **गति परीक्षण** – इनमें शक्ति परीक्षण के विपरीत प्रश्न जटिलता में समान होते हैं और समय निर्धारित होता है।
5. **शाब्दिक परीक्षण** -- इनको हल करने हेतु शब्दों का प्रयोग किया जाता है।
6. **क्रियात्मक परीक्षण** – इस प्रकार की परीक्षाओं में समस्या का समाधान शब्दों द्वारा प्रकट नहीं करना पड़ता है बल्कि उसे कुछ कार्य द्वारा हल करना पड़ता है जैसे–चित्र विधान चित्रपूर्ति, त्रुटि निकालना, वर्ग निर्माण इत्यादि।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

9. बुद्धि परीक्षण का सर्वप्रथम निर्माण किसन किया ?

....

10. व्यक्तिगत व सामूहिक परीक्षण में क्या अन्तर है ?

....

11. गति एवं शक्ति परीक्षण में मूलभूत अन्तर क्या है ?

....

4.8 रूचि परीक्षण

रूचि को हम शाब्दिक रूप में सम्बन्ध की भावना कह सकते हैं। बिंघम ने रूचि को परिभाषित करते हुए लिखा कि–''रूचि किसी अनुभव में लिप्त हो जाने व चालू रखने की प्रवृत्ति है।'' रूचि वास्तव में कोई पृथक इकाई न होकर मानव व्यवहार का एक अहम पहलू है। रूमेल रेमर्ज व गेज ने लिखा कि–रूचियाँ सुखद व दुखद भावनाओं तथा पसन्द न पसन्द व्यवहार के आकर्षण व विकर्षण की प्रतिच्छाया के रूप में दर्शित होती है।''

वास्तव में यह माना गया कि रूचियों का जन्म मनोशारीरिक कारणों से होता है और उसके विकास पर वातावरण एवं वंशानुक्रम दोनों का प्रभाव पड़ता है। सुपर ने स्पष्ट किया कि रूचियाँ जन्मजात न होकर मुख्य रूप में अर्जित होती है। रूचियाँ मुख्यतः निम्न प्रकार की होती है।

* **प्रदर्शन रूचि** – वे रूचियाँ जिन्हें व्यक्ति अपने शब्दों से व्यक्त न करके व्यवहार से व्यक्त करता है।
* **अभिव्यक्ति रूचि** –जिन रूचियों को व्यक्ति शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है।
* **प्रपत्रित रूचि**–जिन रूचियों का ज्ञान प्रमापीकृत रूचि प्रपत्रों तथा परीक्षणों के माध्यम से होता है उन्हें प्रपत्रित रूचि कहते हैं।
* **परीक्षित रूचि**–जिन रूचियों का नाम विभिन्न निष्पति परीक्षणों से हो व व्यक्ति का किसी विषय में ज्ञान व ज्ञान की उपलब्धि समान हों वे परीक्षित रूचि होती है।

रूचि मापन – उपयुक्त व्यवसाय निर्धारित करने तथा उपयुक्त निर्देशन देने के लिये रूचि मापन आवश्यक है। रूचि परीक्षण का सर्वप्रथम निर्माण 1919 में ''कार्नीगे इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी'' में प्रारम्भ हुआ। इसके पश्चात् मूर ने 1921 में इन्जीनियर्स की रूचियों का पता लगाने हेतु रूचि तालिका बनायी। 1924–25 में क्रेग

ने विभिन्न प्रकार की रूचियों के मापन हेतु रूचि तालिका बनायी। कुछ प्रमुख रूचि परीक्षण हैं–

1. **स्ट्रांग की व्यावसायिक रूचि परीक्षण**–स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के ई0 के0 स्ट्रांग ने व्यावसायिक रूचि परिसूची का निर्माण व प्रमापीकरण किया। इसमें अनेक प्रकार के 420 पद हैं। ये पद विभिन्न व्यवसायों, मनोरंजन क्रियाओं, विद्यालय विषय एवं व्यक्तिगत विशेषताओं से सम्बन्धित हैं। इस परिसूची के पाँच प्रतिरूप हैं – प्रथम पुरूषों को, द्वितीय स्त्रियों को, तृतीय पुरूषों को, चतुर्थ स्त्रियों के लिये (जो अध्ययनरत हों) अन्तिम व पंचम पुरूषों के लिये है।

2. **हेपनर की व्यावसायिक रूचि पर लब्धि**–हेपनर ने व्यावसायिक रूचि लब्धि के हेतु एक महान कार्य किया। हेपनर ने चार प्रमुख कार्यक्षेत्रों की चेकलिस्ट बनायी। इसमें प्रोफेशन (24), वाणिज्य आकुपेशन (24), दक्ष व्यापार (20) तथा स्त्रियों से सम्बन्धित व्यवसाय 24 सम्मिलित हैं।

3. **क्लीटन की व्यावसायिक रूचि तालिका**–क्लीटन ने स्त्री व पुरूषों के लिये अलग–अलग रूचि तालिका बनायी है पुरूषों के प्रतिरूप में 630 पद हैं जिनकी जाँच की जाती है। स्त्रियों के लिये भी 630 पद हैं।

4. **कूडर अधिमान लेखा** –कूडर द्वारा निर्मित इस लेखा के कई प्रतिरूप हैं जिसमें 168 पद हैं। प्रत्येक पद में तीन क्रियायें करनी पड़ती हैं। इन क्रियाओं को फिर मान के अनुरूप चयनित किया जाता है। इस पूरे लेखे में कुल मिलाकर 10 रूचि मापदण्ड हैं। अन्य रूचि तालिकायें हैं।

- Ø मानसून अक्यूपेशनल इन्टरेस्ट ब्लेंक
- Ø ओब्रेलन वोकेशनल इन्टरेस्ट इन्क्वायरी
- Ø ली – थोरोप इन्वेन्टरी
- Ø थर्स्टन इन्टरेस्ट सीड्यूल

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

12. 'रूचि' को परिभाषित कीजिए।

....

13. रूचि परीक्षण सर्वप्रथम कहाँ प्रारम्भ हुआ ?

....

14. स्ट्रॉग की व्यावसायिक रूचि परीक्षण का वर्णन कीजिए ?

....

4.9 निष्पति एवं व्यक्तित्व परीक्षण

निष्पति–निष्पति विद्यालय में विषय सम्बन्धी अर्जित ज्ञान की परीक्षा है। वास्तव में निष्पति या दक्षता परीक्षा किसी व्यक्ति द्वारा सीखे गये कार्य या दक्षता के स्तर को जानने हेतु संचालित की जाती है। निष्पति परीक्षण को साफल्य परीक्षण भी कहते हैं। निष्पति परीक्षा के प्रकार–

- Ø वे परीक्षायें जो किसी व्यवसायगत दक्षता को मापने हेतु बनायी जाती हैं व्यवसाय परीक्षा कहलाती है'
- Ø वे परीक्षायें जो विद्यालय के पाठ्यक्रम में किसी एक विषय के अर्जित ज्ञान को नापने हेतु बनायी जाती है। विद्यालय निष्पति परीक्षण कहलाते हैं।

व्यक्तित्व परीक्षण

व्यक्तित्व वास्तव में वह समग्रता है जिसमें व्यक्ति के सम्पूर्ण वाह्य एवं आन्तरिक गुण व अवगुणों का समावेशित दिग्दर्शन होता है। व्यक्तित्व में वे सभी मानसिक प्रक्रियायें सम्मिलित हैं जो क्रियाशील व्यक्ति के व्यक्तित्व पर प्रभाव डालती है। निर्देशन एवं परामर्श में व्यक्तित्व के अध्ययन में बड़ा महत्व है। व्यक्तित्व शब्द की उत्पत्ति लेटिन शब्द "परसोना" से हुयी है। इसका अभिप्राय मुखौटा होता था। व्यावहारिकवादी केम्प के अनुसार–"व्याक्तित्व आदतों की उन अवस्थाओ का समन्वय है जो वातावरण के साथ व्यक्ति के विशिष्ट समायोजन का प्रतिनिधित्व करती है।" वारेन और कारमीकल के अनुसार–"मनुष्य की विकासावस्था के किसी भी स्तर पर मनुष्य की समस्त अवस्था ही व्यक्तित्व है।" इसी प्रकार से मोर्टन प्रिन्स ने व्यक्तित्व सम्बन्धी अपनी विचारधारा प्रकट करतें हुये कहा कि–"व्यक्तित्व सभी जैविक जन्मजात प्रवृत्तियों, इच्छाओं, भूख एवं मूल प्रवृत्तियों का योग है तथा इसमें अनुभव से प्राप्त अर्जित प्रवृत्तियाँ भी निहित हैं।" वुडवर्थ ने इसे वह व्यवहार कहा जो किसी को प्रिय लगता है किसी को अप्रिय। परन्तु व्यक्तित्व की सभी परिभाषाओं में आलपोर्ट की परिभाषा सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है जिसमें वे कहते हैं–"व्यक्तित्व मनोदैहिक व्यवस्थाओं का वह गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण के साथ उसके अपूर्व अभियोजन का निर्धारण करता है।"

व्यक्तित्व का विकास में वंशानुक्रम एवं वातावरण दोनों ही निर्धारक कहलाते हैं।

व्यक्तित्व मापन– व्यक्तित्व मापन का इतिहास पुराना है जिसमें चेहरा देखकर व्यक्तित्व की पहचान की जाती थी कुछ समय बाद लिखावट देखकर व्यक्तित्व के पहचान करने की विधि का भी निर्माण हुआ जो ग्राफोलोजी कहलाती है। व्यक्तित्व का मापन की विधियों की सूची नीचे दी जा रही है।

व्यक्तित्व मापन के साधन

व्यक्तित्व सूची
- शील गुण माप सूची
- रूचि माप सूची
- मूल्य माप सूची
- अभिवृत्ति माप सूची
- व्यक्तित्व वर्गीकरण
- समायोजन मूल्यांकन सूची
- पी० एफ० स्टडी

प्रक्षेपण विधियाँ
- रोर्शाक परीक्षण
- टी० ए० टी०
- शब्द साहचर्य परीक्षण
- मनोनाटक
- सी० ए० टी०
- मनोविश्लेषण विधि
- अनुसूची

अन्य विधियाँ
- साक्षात्कार
- प्रश्नावली
- आत्मकथा
- समाजमिति
- अवलोकन
- हस्तलेखन
- निर्णय मापदण्ड
- व्यक्ति इतिहास

(1) रोशार्क परीक्षण—इस परीक्षण का निर्माण स्विटजरलैण्ड निवासी हरमन रोर्शाक ने किया। इसमें 10 कार्ड है जो विभिन्न आकार व रंग के स्याही के धब्बों से परिपूर्ण हैं। 10 कार्ड में से 5 कार्ड काले, 2 पर काले व लाल तथा 3 पर रंग–बिरंगे धब्बे हैं। यह 1921 में प्रकाशित हुआ। इसका प्रयोग व्यक्तिगत होता है और इसके द्वारा व्यक्ति के गुणों व सामान्य प्रवृत्तियों का पता लगाया जा सकता है।

(2) टी० ए० टी० परीक्षण — यह प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण भी कहलाता है। इसका निर्माण मुरे ने 1938 में किया। इसके अन्तर्गत चित्र श्रंखला में 20 चित्रों के कार्ड हैं जिसे प्रस्तुत करने पर परीक्षार्थी के विभिन्न मानसिक अवस्थाओं, भावों, प्रवृत्तियों एवं अनुभूतियों को मालूम हो जाता है। परीक्षार्थी द्वारा चित्र वर्णन का विश्लेषण किया जाता है और उसके व्यवहार, अभिवृत्ति कल्पना शक्ति, विचारों व गुणों का पता लगाया जाता है।

(3) शब्द साहचर्य विधि—इस विधि का प्रयोग गाल्टन ने अपनी मनोविज्ञान प्रयोगशाला में 1879 में किया। गाल्टन के साथ बुण्ट ने दिया। इसमें 75 शब्दों की एक सूची बनायी गयी है। साहचर्य शब्दों के स्मरण से कुछ मानसिक चित्र व प्रतिमायें मस्तिष्क में अंकित हो जाती है। इसे साहचर्य काल कहा गया इसके माप हेतु क्रोनोमीटर का प्रयोग किया गया फिर उसका विश्लेषण किया और निष्कर्ष प्रतिपादित किये गये। गाल्टन के पश्चात युग ने 100 शब्दों की एक सूची तैयार की। युग ने इस परीक्षण से संवेगात्मक ग्रन्थियों को पता लगाने का प्रयास किया।

(4) वाक्यपूर्ति परीक्षण—इस परीक्षण विधि का सर्वप्रथम प्रयोग पाइन तथा टेण्डलर ने 1930 में किया। इसमें 20 वाक्य थे। इसके उपरान्त हीलर, कैमरोन, लार्ज, थार्नडाइक व एसेनफोर्ड ने इस विधि में संशोधन किया। इस विधि में विश्वसनीयता 0.83 पायी गयी है।

(5) खेल तथा ड्रामा विधि—यह व्यक्तित्व मापन की सर्वोत्तम विधि है क्योंकि परीक्षार्थी इसमें अपनी भावनाओं का स्वतंत्र प्रदर्शन करता है। इस विधि के निर्माता प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जे० एल० मोरेनो थे। इसमें रोगग्रस्त व्यक्ति को प्रमुख भूमिका दी जाती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

15. "व्यक्तित्व" क्या है ?

....

16. व्यक्तित्व मापन की कौन–कौन सी विधियाँ हैं ?

....

4.10 अभियोग्यता परीक्षण–

आप पूर्व में व्यक्तित्व मापन के विषय में पढ़ चुके हैं निर्देशन के क्षेत्र में अभियोग्यता का ज्ञान परामर्शदाता को परामर्श देने में सहायक होता है। वारेन ने अभियोग्यता को पारिभाषित करते हुए लिखा है कि अभियोग्यता वह दशा या गुणों का रूप है जो व्यक्ति की उस योग्यता की ओर संकेत करती है जो प्रशिक्षण के बाद ज्ञान, दक्षता या प्रतिक्रियाओं को सीखता है। ट्रैक्सलर ने लिखा – अभियोग्यता व्यक्ति की दशा, गुण या गुणों का संग्रह है जो सम्भावित विस्तार की ओर संकेत करती है जो कि व्यक्ति कुछ ज्ञान, दक्षता या ज्ञान और दक्षता का मिश्रण प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त करेगा। वास्तव में अभियोग्यता वर्तमान दशा है जो व्यक्ति की भविष्य क्षमताओं की ओर संकेत करती है।

सुपर ने विशिष्टता, एकात्मक रचना, सीखने में सुविधा स्थिरता अभियोग्यता की चार विशेषतायें बतायी हैं।

अभियोग्यता परीक्षायें– विद्वानों ने निम्न प्रकार की अभियोग्यता परीक्षाओं का निर्माण किया है जो कि अधिकांशतः विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित है इनमें से कुछ के विषय में हम जानेंगें।

– **कलर्कियल एपटीट्यूट टेस्ट** कल्कि व्यवसाय हेतु अभियोग्यता परीक्षा– लिपिक अभियोग्यता परीक्षा में कार्यालयों के विविध कार्यों को सुचारू रूप से करने हेतु विभिन्न गुणों को मापा जाता है। इसमें मुख्यतः गति एवं शुद्धता को मापा जाता है।

– **मिनिसोटा वोकेशनल टेस्ट फॉर क्लर्कियल वर्क्स** – इस परीक्षण को व्यक्तिगत व सामूहिक दोनों परीक्षणों के लिये उपयोग किया जाता है। इसके प्रयोग से टाइपिंग, पत्रों को छाँटना फाइलों का कार्य तथा बुक कीपिंग आदि अभियोग्यता का मापन होता है।

– **नेशनल इन्सटीट्यूट ऑफ इन्डस्ट्रियल साइकोलॉजी क्लर्कियल टेस्ट** – यह ब्रिटिश नेशनल इन्सटीट्यूट ऑफ इन्डस्ट्रियल साइकोलॉजी द्वारा निर्मित है इसे सात भागों में बाँटा गया है।

(2) यान्त्रिक अभियोग्यता – विभिन्न यांत्रिक अवयवों का मिश्रण ही यान्त्रिक अभियोग्यता है। इसमें स्थान, हस्त निपुणता, शक्ति, गति, धैर्य आदि यान्त्रिक योग्यतायें आती हैं। जैसे कि –

– **मिनिसोटा मेकेनिकल एपटीट्यूड टेस्ट** – इस परीक्षा का निर्माण सर्वप्रथम जूनियर हाईस्कूल के छात्रों के लिये हुआ इसमें 33 यान्त्रिक वस्तुयें तीन सन्दूकों में रखी रहती है।

– **स्टेनक्विस्ट टेस्ट फॉर मेकेनिकल एपटीट्यूड** – इस परीक्षण का निर्माण स्टैनक्विस्ट नामक व्यक्ति ने किया। इस परीक्षा में भी निश्चित समय मे निश्चित यान्त्रिक विधियों द्वारा कुछ हिस्सों को जोड़ने के लिये कहा जाता है।

– **ओरूरकी मेकेनिकल एपटीट्यूड टेस्टस**–यह परीक्षा इस सिद्धान्त पर आधारित है कि जो व्यक्ति यान्त्रिक अभियोग्यता रखते हैं वे उन व्यक्तियों की अपेक्षा मशीन सम्बन्धी ज्ञान शीघ्र सीख लेते हैं।

(3) संगीत अभियोग्यता–संगीत अभियोग्यता का ज्ञान यान्त्रिक रूप, चित्रांकन का रूप, व व्याख्यात्मक रूप से प्रकट होने पर होता है।

– **सीशोर म्यूजिकल टेस्ट** – इस परीक्षण का निर्माण सीशोर द्वारा किया गया। इस परीक्षण के अन्तर्गत संगीत अनुभूति संगीतात्म क्रियायें, संगीतात्मक बुद्धि तथा संगीतात्मक भावनाओं को जानने का प्रयास किया जाता है।

(4) कला अभियोग्यता – इसके परीक्षण हेतु दो विधियाँ अपनायी जाती हैं एक तो मौलिक चित्र बनाना दूसरा पूर्व निर्मित चित्रों के गुण व दोषों का विवेचन करवाया जाता है। कुछ प्रसिद्ध कला अभियोग्यता परीक्षण हैं – हार्न की कला अभिरूचि सूची, नौबर की कला अभियोग्यता परीक्षण, मैकऐडोरी का कला परीक्षण।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

17. अभियोग्यता को पारिभाषित कीजिये ?

....

18. कुछ अभियोग्यता परीक्षणों के नाम बताइये ?

....

4.11 सारांश

सभी प्रकार के निर्देशनों का उद्देश्य अपने बारे में व अपने परिवेश के विषय में अध्येता को अधिक जानकारी प्राप्त करने में सहायता देना ताकि उसका विद्यालय एवं आसपास के परिवेश में बेहतर उपलब्धि के साथ समायोजन हो सके। बुद्धिमत्तापूर्वक उचित अवसरों का चयन जन्मजात योग्यता न हो इसे विकसित करना पड़ता है और इस योग्य बनाने हेतु निर्देशन कार्यक्रम में अध्येता से सम्बन्धित पर्याप्त ज़ानकारी/सूचनाओं

का संकलन मानकीकृत अथवा अमानकीकृत प्रविधियों द्वारा किया जाता है। इस इकाई में आपने इन्हीं प्रविधियों के द्वारा किया जाता है। इस इकाई में आपने इन्हीं प्रविधियों के विषय में आवश्यक जानकारी प्राप्त की। यह इकाई आपको रोचक एवं ज्ञानप्रद लगी होगी।

4.12 प्रश्नों के उत्तर

1. वंशानुक्रम एवं वातावरण
2. समाज से।
3. भूमण्डलीकरण औद्योगीकरण एवं परिवारों के बिखराव के कारण।
4. प्रशिक्षित कार्मिक उचित मनोवैज्ञानिक विधियों एवं तकनीकों की समझ रखते है।
5. व्यक्ति के समस्याओं का सतत समाधान करने के लिए।
6. व्यक्ति से सम्बन्धित।
7. परामर्शदाता एवं परामर्श प्रार्थी।
8. परामर्श सेवाओं का।
9. बिने ने।
10. व्यक्ति पर आधारित होता है समूह परीक्षण समूह के लिए होता है।
11. शक्ति परीक्षण किसी एक क्षेत्र में व्यक्ति के शक्ति की परीक्षा होती है जबकि गति परीक्षण गति की परीक्षा होती है।
12. रूचि किसी अनुभव में लिप्त हो जाने और चालू रखने की प्रवृत्ति है।
13. कार्निगे इंस्ट्टयूट ऑफ टेक्नोलॉजी।
14. स्वयं करें।
15. मनोदैहिक व्यवस्थाओं का गत्यात्मक संगठन है।
16. प्रक्षेपण विधि और अप्रेक्षण विधि।

4.13 अभ्यास कार्य

मानकीकृत एवं अमानकीकृत प्रविधियों में स्पष्ट अन्तर करते हुये इनके प्रकारों की विस्तार से चर्चा कीजिये।

4.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Jaiswal : Guidance & Councelling, Prakashan Kendra, Lucknow.

Kochar S.K. (1985) : Educational Guidance & Counseling.

खण्ड

2

निर्देशन के प्रकार

इकाई-5 शैक्षिक निर्देशन	7
इकाई-6 व्यावसायिक निर्देशन	32
इकाई-7 वैयक्तिक निर्देशन	58
इकाई-8 कैरियर निर्देशन व स्थापन्न	69

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
डॉ0 ए0 के0 सिंह	कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0 पी0 गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 राम शकल पाण्डेय	पूर्व आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 हरिकेश सिंह	आचार्य शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

परिमापक

प्रो0 एस0 पी0 गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक

डॉ0 सरोज पाण्डेय	एसोशियेट प्रोफेसर, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली

लेखक

डॉ0 सुषमा पाण्डेय	वरिष्ठ प्रवक्ता, शिक्षाशास्त्र विभाग, दी0 द0 उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खण्ड-2 : परिचय

खण्ड–2 में निर्देशन के विभिन्न प्रकारों की विस्तार से चर्चा की गई है। जैसे शैक्षिक निर्देशन, व्यावसायिक निर्देशन, वैयक्तिक और कैरियर निर्देशन , शैक्षिक निर्देशन वर्तमान में सम्पूर्ण शिक्षा प्रक्रिया के सभी स्तर पर आवश्यक अंग के रूप में विकसित हो रही है। इसकी आवश्यकता की उपेक्षा अब नहीं की जा सकती। इसकी अनिवार्यता को ध्यान में रखकर सभी स्तर की शिक्षा में इसको समाहित किया जाना चाहिए।

इकाई–6 व्यावसायिक निर्देशन से सम्बन्धित है। व्यावसायिक निर्देशन अब बौद्धिक वातावरण एवं आर्थिक आवश्यकता को देखते हुए एक व्यवस्थित निर्देशन की शाखा के रूप में प्रस्थापित एवं प्रचलित हो रहा है। इसकी आवश्यकता अनेक देशों में प्राथमिक स्तर से ही कक्षाओं में दिये जाने की सिफारिश की गई और इसे पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बनाया। भारत में व्यवसायिक निर्देशन की अनिवार्यता माध्यमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा में अधिक मानी गयी है। इस इकाई में आपने व्यावसायिक शिक्षा के विषय में विस्तार से पढ़ा।

इकाई–7 'वैयक्तिक निर्देशन' से सम्बन्धित है। 'व्यक्तिगत निर्देशन' का दायरा थोड़ा व्यापक है। वस्तुतः हर तरह का 'निर्देशन प्रायः व्यक्तिगत रूप से सम्पन्न होता है। किन्तु व्यक्तिगत मामलों यथा–घरेलू सम्बन्धों, आपसी सहयोग, मित्रों का चुनाव, वैवाहिक सम्बन्ध तथा अन्य ऐसे सन्दर्भ मौजूद हैं जहॉं व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार के सलाह की जरूरत रहती है। इस परिप्रेक्ष्य में व्यक्तिगत निर्देशन का तात्पर्य व्यक्ति को दी गई उस सहायता से है जो उसके जीवन के सभी क्षेत्रों तथा अभिवृत्तियों के विकास को दृष्टिगत रखकर देनी पड़ती है। इस प्रकार के निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति को अपनी समस्याओं के समझने एवं उनका विश्लेषण करने, उसके परिवार, समुदाय, विद्यालय एवं व्यवसाय सम्बन्धी समंजन की व्यक्तिगत समस्याओं को हल करने में मदद देना तथा उनमें अपनी सही भूमिका निभाने के लिए उसे सचेत करना है।

इकाई–8 में कैरियर निर्देशन एवं स्थापन्न सेवाओं के बारे में विस्तार से बताया गया है। व्यवसायों का चयन तथा विभिन्न उद्यमों की विशेषताओं का अध्ययन भारत जैसे विकासशील देश के लिए एक चुनौतीपूर्ण अभियान माना जा सकता है। हमें ज्ञात है कि व्यावसायिक एवं शैक्षिक निर्देशन की प्रक्रियाओं में व्यक्ति तथा व्यावसायिक जगत दोनों के सम्बन्ध में अपेक्षित जानकारी विकसित करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है इन समुदाय में युवाओं को सही ढंग के व्यवसाय (रोजगार) अपनाने के प्रति चेष्टा रहती है। किन्तु इसे वस्तुनिष्ठ एवं प्रभावी बनाने की दृष्टि से व्यवसायों की चयन प्रक्रिया तथा व्यवसायों की

सामान्य एवं विशिष्ट प्रकृति के विश्लेषण एवं मूल्यांकन को वास्तविक परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत करना परमावश्यक है।

व्यवसायों का चुनाव व्यक्ति अपनी अभिक्षमता, रूचि एवं पृष्ठभूमि के अनुसार कर सकें, इसके लिए कार्य–विश्लेषण तथा कार्य–विवरण की पद्धतियों का अनुप्रयोग लाभदायक प्रमाणित होता है। ऐसी प्रक्रियाओं के माध्यम से व्यक्ति तथा उसके लिये उपयुक्त कार्य का मिलान आसान हो जाता है। इस दृष्टि से व्यावसायिक सूचनाओं का संकलन उनका सम्यक प्रदर्शन सही व्यावसायिक चेतना विकसित करने हेतु प्रभावी होता है। इस परिप्रेक्ष्य में रोजगार सूचना सेवाओं की विशेष भूमिका सहज की आंकी जा सकती हैं। यह कहने की आवश्यकता नही है कि व्यावसायिक चयन को प्रभावित करने वाले अनेक महत्वपूर्ण कारक होते हुए भी इसमें अभिभावक, शिक्षक, निर्देशनकर्मी एवं उपबोधक अपना विशिष्ट सहयोग प्रदान करते हैं जिससे विवेक सम्मत 'चुनाव' की ओर युवाओं को प्रवृत्त किया जाता है।

MAED-103

शैक्षिक निर्देशन व परामर्श

खण्ड–01	निर्देशन की अवधारणा एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
इकाई–01	निर्देशन का स्वरूप एवं आवश्यकता
इकाई–02	निर्देशन के प्रतिमान
इकाई–03	निर्देशन का ऐतिहासिक विकास
इकाई–04	निर्देशन के सिद्धान्त एवं तकनीकी
खण्ड–02	निर्देशन के प्रकार
इकाई–05	शैक्षिक निर्देशन
इकाई–06	व्यावसायिक निर्देशन
इकाई–07	वैयक्तिक निर्देशन
इकाई–08	कैरियर निर्देशन व स्थापन्न
खण्ड –03	परामर्श की प्रकृति
इकाई–09	परामर्श का स्वरूप
इकाई–10	जन–सम्पर्क तथा निर्देशन कार्यक्रम
इकाई–11	परामर्श की प्रक्रिया
इकाई–12	परामर्शदाता की विशेषतायें
खण्ड–04	परामर्श के प्रकार एवं परीक्षण
इकाई–13	परामर्श के विविध रूप
इकाई–14	वैयक्तिक एवं सामूहिक परामर्श
इकाई–15	निर्देशन में परीक्षणों का उपयोग
इकाई–16	विशेष समूहों के लिये निर्देशन

इकाई–5 शैक्षिक निर्देशन

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 निर्देशन व शिक्षा का सम्बन्ध

5.4 शैक्षिक निर्देशन की अवधारणा

5.5 शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता

5.6 शैक्षिक निर्देशन के उद्देश्य

5.7 शैक्षिक निर्देशन के सिद्धान्त

5.8 विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक निर्देशन

5.9 शैक्षिक निर्देशन की विधियाँ

5.10 सारांश

5.11 अभ्यास के प्रश्न

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

शिक्षा को परिभाषित करना यद्यपि कठिन है, फिर भी कुछ विद्वानों ने इसे परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। शिक्षा की परिभाषाएं मानव को केन्द्र बिन्दु मानकर दी गयी हैं। मानव के दो रूप होते हैं: (1) जैविक तथा (2) सामाजिक। मानव के शारीरिक या जैविक रूप का विकास पौष्टिक भोजन द्वारा होता है। परन्तु मानव का सामाजिक विकास शिक्षा द्वारा होता है। मानव बौद्धिक स्तर पर अन्य जीवों से श्रेष्ठ है। मानव की इस बौद्धिकता का विकास शिक्षा के द्वारा होता है। टी रेमण्ट ने शिक्षा की परिभाषा इस प्रकार दी है:– शिक्षा विकास का वह क्रम है, जिसके द्वारा मानव स्वयं को भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करता है।"[1] इस परिभाषा में वातावरण को प्रधानता दी गई है। इसके विपरीत बीसवीं शताब्दी के एक प्रसिद्ध विद्वान डीवी के अनुसार, "शिक्षा व्यक्ति के अन्दर उन सभी क्षमताओं का विकास है जो व्यक्ति को स्वंय के वातावरण पर नियन्त्रण करने के योग्य बनाती है।"[2] डीवी के द्वारा दी गयी यह परिभाषा स्पष्ट करती है कि शिक्षा द्वारा ही मनुष्य की बुद्धि का इतना विकास होता है कि वह वातावरण पर विजय प्राप्त करता है। निर्देशन के एक विशेष रूप शैक्षिक निर्देशन के विषय में हम इस इकाई में विस्तार से पढ़ेगें।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेगें कि-

1. शैक्षिक निर्देशन की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता एवं उद्देश्यों का वर्णन कर सकेंगे।
3. विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक निर्देशन के संगठन का वर्णन कर सकेंगे।

5.3 निर्देशन तथा शिक्षा का सम्बन्ध

शिक्षा के निम्नांकित तीन स्पष्ट अर्थ लगाये जा सकते हैं :–

1. शिक्षा व्यक्ति में परिवर्तन लाने वाली प्रक्रिया है–बाल्यावस्था में मानव सबसे अधिक निस्सहाय प्राणी होता है। वह भौतिक वातावरण में समायोजित नही हो पाता है। अतः यह आवश्यक है कि समायोजन स्थापन के लिए बालक में कुछ परिवर्तन किए जाएँ। पहले की अपेक्षा समाज भी अधिक जटिल हो गया है। सभ्यता के उत्तरोत्तर विकास से सामाजिक जटिलता बढ़ती ही जा रही है। इस प्रकार के सामाजिक वातावरण के अनुकूल बालक को बनाने के लिए सहायता की आवश्यकता होती है। शिक्षा ही वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक को सामाजिक वातावरण के अनुकूल बनने की सहायता दी जाती है।

2. शिक्षा शिक्षण है–समाज के कुछ आदर्श तथा लक्ष्य होते हैं। इन लक्ष्यों को प्राप्त करना ही शिक्षा का उद्देश्य होता है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति की अनेक विधियां हो सकती हैं। जब अध्यापक किसी विधि का चयन करता है तो यह शिक्षण है, लेकिन जब वह छात्र को किसी विधि के चुनने में सहायता प्रदान करता है तो यह निर्देशन है।

3. शिक्षा समाज का कार्य–

मनुष्यों को सामाजिक प्राणी बनाना तथा उसका नैतिक, सांवेगिक, शारीरिक और बौद्धिक विकास में पथ–प्रदर्शन करना शिक्षा का कार्य है। इस दृष्टि से शिक्षा तथा निर्देशन में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

इससे स्पष्ट है कि निर्देशन शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।
ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. शिक्षा और निर्देशन में क्या समानता है?

....

2. शिक्षा समाज के लिए क्या करती है?

....

5.4 शैक्षिक निर्देशन की अवधारणा

आप शिक्षा तथा निर्देशन के विषय में पढ़ चुके हैं। अतः शैक्षिक निर्देशन की अवधारणा को आत्मसात करना आपके लिए आसान होगा।

ब्रेवर ने शैक्षिक निर्देशन की परिभाषा देते हुए कहा है– "शैक्षिक निर्देशन व्यक्ति के बौद्धिक विकास में सहायता प्रदान करने का सचेतन प्रयत्न है", "शिक्षण या अधिगम के लिए किए गए सभी प्रयत्न शैक्षिक निर्देशन के अंग हैं।" ब्रेवर के अनुसार विद्यालय में प्रदान की जाने वाली प्रत्येक प्रकार की सहायता शैक्षिक निर्देशन है। ब्रेवर इस प्रकार शैक्षिक निर्देशन तथा संगठित शिक्षा में कोई अन्तर नहीं पाते हैं।

जोन्स ने शैक्षिक निर्देशन की परिभाषा इस प्रकार दी है, "शैक्षिक निर्देशन का सम्बन्ध विद्यालय, पाठ्यक्रम, पाठ्य विषय और विद्यालय जीवन के चयन तथा अनुकूलन हेतु छात्रों को दी जाने वाली सहायता से है।" लेकिन जोन्स शैक्षिक निर्देशन तथा शिक्षण को एक ही मानते हैं। एक स्थान पर वह कहते हैं, "प्रभावशाली शिक्षण जो कि निर्देशन भी है, समाज तथा विद्यालय से ही प्राप्त किया जा सकता है।" जोन्स से मिलती–जुलती परिभाषा होपकिंस द्वारा दी गयी है, "निर्देशन समस्त उचित अधिगम का एक अंग है अतएव अधिगम परिस्थितियों के कुशल प्रबन्ध में निर्देशन केन्द्रित होना चाहिए।"

आर्थर ई0 ट्रेक्सलर के अनुसार, "निर्देशन प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं की योग्यताएं, रूचियों और व्यक्तित्व सम्बन्धित गुणों को समझने उनका सम्भावित विकास करने, उनको जीवन के उद्देश्यों से सम्बन्धित करने तथा अन्त में प्रजातांत्रिक, सामाजिक व्यवस्था के योग्य नागरिक की भांति पूर्ण तथा परिपक्व स्वनिर्देशन की स्थिति तक पहुंचने के योग्य बनाता है। अतः निर्देशन विद्यालय के प्रत्येक पहलू जैसे पाठ्यक्रम, शिक्षण–विधि, निरीक्षण, अनुशासन, उपस्थिति की समस्याएं पाठ्य सहगामी क्रियाएं, स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रम तथा समाज के सम्बन्ध से सम्बन्धित है।" ट्रेक्सलर ने अपनी परिभाषा के प्रारम्भ में तो निर्देशन का स्पष्ट रूप रखा है, परन्तु अन्त में उसने निर्देशन को विद्यालय के सभी कार्यों से जोड़ा है।

रूथ स्ट्रेंग के अनुसार "व्यक्ति को शैक्षिक निर्देशन प्रदान करने का मुख्य उद्देश्य छात्र को उपयोगी कार्यक्रम का चयन तथा उसमें प्रगति करने में सहायता देना है।"

रूथ स्ट्रेंग इस परिभाषा के साथ ही यह भी स्पष्ट करते हैं कि शैक्षिक निर्देशन में तीन बातें मुख्य हैं :

1. छात्र की योग्यताओं तथा रूचियों का ज्ञान होना।

2. शैक्षिक अवसरों के विस्तृत क्षेत्र का ज्ञान।

3. कार्यक्रम तथा परामर्श जो उपर्युक्त दो प्रकार के ज्ञान के आधार पर छात्रों को चयन करने में सहायता देता है।

जी0ई0 मायर्स के अनुसार, "शैक्षिक निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जो एक ओर तो विशिष्ट गुण वाले छात्रों में और दूसरी ओर अवसरों और आवश्यकताओं के विभिन्न समूहों में ऐसा सम्बन्ध स्थापित करती है, जिससे व्यक्ति के विकास और उसकी शिक्षा के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण होता है।" मायर्स द्वारा दी गई परिभाषा द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि निर्देशन द्वारा छात्र की विशेषताओं तथा शैक्षिक अवसरों के मध्य सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

शिक्षा तथा शैक्षिक निर्देशन में भिन्नता

शिक्षा तथा शैक्षिक निर्देशन का सम्बन्ध अधिकांश व्यक्तियों को स्पष्ट नही है। कुछ विद्वानों का मत है कि सम्पूर्ण शिक्षा, निर्देशन का एक रूप है। इस प्रकार का मत प्रकट करने वाले व्यक्ति शिक्षा का संकुचित अर्थ लगाते हैं। कुछ शिक्षाशास्त्री 'शिक्षा ही निर्देशन है और निर्देशन ही शिक्षा है' मानते हैं। शिक्षा तथा शैक्षिक निर्देशन के अस्पष्ट अर्थ को स्पष्ट करना आवश्यक है। विद्यालय की बहुत सी क्रियाएं जो विद्यालय को सफलतापूर्वक चलाने के लिए की जाती हैं, शिक्षा को शैक्षिक निर्देशन से जोड़ देती हैं परन्तु शिक्षा शैक्षिक निर्देशन नही है। ये क्रियाएं तो संगठित शिक्षा का अंग होती हैं। शैक्षिक निर्देशन को एक विधि माना जाता है। हैंमरिंन तथा इरिक्सन के अनुसार 'निर्देशन व्यक्तिगत छात्रों की योग्यताओं, रूचियों, पृष्ठभूमि और आवश्यकताओं का पता लगाने की विधि प्रदान करता है।' लेकिन शैक्षिक निर्देशन कोई विधि नही है बल्कि विभिन्न विधियों द्वारा व्यक्ति को स्वयं विकास के लिए मार्ग ढूंढ़ने में सहायता प्रदान करने की प्रक्रिया है।

बालक के स्वाभाविक तथा सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा आवश्यक है। शिक्षा स्वयं मे विकांस नही है। लेकिन वह इच्छानुकूल विकास में सहयोग देती है। बालकों में व्यक्तिगत भिन्नताएं पाये जाने के कारण उनके विकास में भी भिन्नता पायी जाती है। बालक का सुनियोजित विकास ही शिक्षा है। सभी बालकों के लिए एक सी ही योजना उपयोगी नही हो सकती। विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने वाले बालकों के विकास की योजना बनाते समय ये सभी विभिन्नताएं ध्यान में रखनी चाहिए। यही शैक्षिक निर्देशन है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।
ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

3. शिक्षा वास्तविक कार्य क्या है?

....

4. शैक्षिक निर्देशन की एक उपयुक्त एवं नवीन परिभाषा दीजिए?

....

5.5 शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता

मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के आधार पर शिक्षा के क्षेत्र में पहले की अपेक्षा अब अधिक परिवर्तन हुए हैं। व्यक्ति तथा समाज की आवश्यकताओं के आधार पर शिक्षा के उद्देश्य निश्चित होते हैं। समाज अधिक जटिल होता गया, विचारधारा में परिवर्तन हुए। उसके अनुसार ही शिक्षा के उद्देश्य तथा उन उद्देश्यों तक पहुंचने की विधि में भी परिवर्तन हुए। हमारे देश में भी प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में सुधार तथा पुर्नसंगठन हो रहा है। वर्तमान शिक्षा–प्रणाली का प्रमुख दोष यह है कि यह मनुष्य को वास्तविक जीवन के लिए तैयार नही करती है। निम्नलिखित दृष्टियों से भी शैक्षिक निर्देशन आवश्यक है।

1. पाठ्य–विषयों का चुनाव– 'माध्यमिक शिक्षा आयोग' (1052–53) ने अपने प्रतिवेदन में विविध, पाठ्यक्रम का सुझाव दिया है। छात्रों में जब व्यक्तिगत विभिन्नता पायी जाती है, उनकी क्षमताएं, योग्यताएं, रूचियां समान नही होती, तो उनको एक ही पाठ्यक्रम का अध्ययन कराना उचित नही है। उस प्रतिवेदन के अनुसार कुछ आन्तरिक विषय तथा इनके अतिरिक्त कुछ वैकल्पिक विषय रखे गये हैं, जिनको 7 वर्गों में विभाजित किया गया है। इन वर्गों को चुनाव करना एक कठिन कार्य है। यहाँ विद्यालयों में छात्रों को विषयों के चयन करते समय किसी प्रकार का पथ–प्रदर्शन नही दिया जाता है। छात्रों को स्वयं के तथा पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में कोई ज्ञान नही होता है। वे नही जानते हैं कि किस विषय का किस वृत्ति से सम्बन्ध है। ये छात्र अपने माता–पिता के परामर्श से या स्वयं उन विषयों को चुन लेते हैं, जो उनको रूचिकर या सरल दिखते हैं। इस प्रकार गलत पाठ्यक्रम का चुनाव करने से छात्र अवरोधन तथा अपव्यय की समस्या को बढ़ाते हैं। गलत पाठ्यक्रम का चुनाव मुख्यतः दो कारणों से होता है :

(1) कम योग्यता तथा उच्च महत्वाकांक्षा के कारण पाठ्य–विषयों का गलत चुनाव करना। बहुत से छात्र, जिनकी बुद्धि–लब्धि कम होती है, विज्ञान या गणित आदि

जैसे कठिन विषय चुन लेते हैं। इसका दुष्परिणाम एक ही कक्षा में बार–बार अनुत्तीर्ण होना होता है।

(2) उच्च योग्यता तथा निम्न महत्वाकांक्षा भी गम्भीर समस्याएं उत्पन्न करती हैं। अधिकांश छात्र प्रखर बुद्धि के होने पर सरल विषय चुन लेते है। इस तरह उनकी प्रखर बुद्धि का लाभ राष्ट्र या स्वयं उस छात्र को नही मिल पाता है। इसको रोकने के लिए शैक्षिक निर्देशन अति आवश्यक है।

2. अग्रिम शिक्षा का निश्चय– हमारे देश में शैक्षिक निर्देशन के अभाव से छात्र अग्रिम शिक्षा का उचित निश्चय नही कर पाते हैं। हाईस्कूल परीक्षा में सफलता प्राप्त करने के उपरान्त छात्रों के लिए यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि उनको व्यावसायिक विद्यालय में, औद्योगिक विद्यालय में या व्यापारिक विद्यालय में कहाँ जाना चाहिए। कभी–कभी छात्र गलत विद्यालयों में प्रवेश प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे विद्यालयों में बाद में वे समायोजित नही हो पाते हैं। छात्रों को उचित अग्रिम शिक्षा का निर्णय लेने के लिए शैक्षिक पथ–प्रदर्शन अवश्य दिया जाए।

3. अपव्यय तथा अवरोधन को दूर करना– भारत में प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर अधिक अपव्यय होता है। भारतीय संविधान के अनुसार 6 वर्ष से 14 वर्ष तक के बालकों के लिए शिक्षा अनिवार्य की गयी है लेकिन अधिकांश छात्र स्थायी साक्षरता प्राप्त किए बिना ही विद्यालय छोड़ देते हैं। बाह्य परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। यह अवरोधन भी दूसरे रूप में समय, धन तथा शक्ति का अपव्यय है। अपव्यय को दूर करने के लिए आवश्यक है कि छात्रों को निर्देशन दिया जाना चाहिए।

4. नवीन विद्यालय में समायोजन हेतु– बहुत से छात्र जब नवीन विद्यालय में प्रवेश लेते हैं तो उनको वहां के नियमों का ज्ञान न होने से वे नवीन वातावरण में अपने को समायोजित करने में असफल पाते हैं। भारत में यह समस्या विकट रूप धारण किये हुए है। यहां की अधिकांश जनसंख्या गांव में निवास करती है। इन गांवों में उच्च शिक्षा का कोई प्रबन्ध नही होता है। ग्रामीण वातावरण में पले हुए छात्र जब नगरीय क्षेत्र के विद्यालयों में प्रवेश प्राप्त करते हैं, तो उनको इन विद्यालयों में नवीन वातावरण मिलता है। अधिकांश छात्र नवीन वातावरण में समायोजित न होने पर अध्ययन छोड़कर गांवों को लौट जाते हैं। शैक्षिक निर्देशन उपलब्ध होने पर छात्रों का कुसमायोजन रोका जा सकता हैं।

5. व्यवसायों का ज्ञान देना– स्वतत्रंता प्राप्ति के उपरान्त देश के आर्थिक तथा सामाजिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएं बनाई गई है। इन पंचवर्षीय योजनाओं ने हमारे नवयुवकों के लिए अवसरों का भण्डार खोल दिया है इन नवीन अवसरों का ज्ञान कम व्यक्तियों को है। भारत में छात्र बिना किसी अवसर की परवाह किये विद्यालयों

में प्रवेश ले लेते हैं। उनको इस बात का ज्ञान नही होता कि कौन–सा पाठ्य–विषय किस व्यवसाय या सेवा की आधारशिला तैयार करता है। इसका कुपरिणाम भारत में 'शिक्षित बेरोजगारं की समस्या है अगर विद्यालयों में निर्देशन द्वारा विभिन्न पाठ्य–विषयों से सम्बन्धित अवसरों का ज्ञान दे दिया जाय तो बेरोजगारी की समस्या कुछ सीमा तक हल हो सकती है।

6. विद्यालय–व्यवस्था, पाठ्यक्रम तथा शिक्षण–विधि में परिवर्तन– शिक्षा में पहले की अपेक्षा बहुत से परिवर्तन हुए हैं। पहले शिक्षा बौद्धिक विकास की एक प्रक्रिया मात्र थी। परन्तु आज यह व्यक्तिगत तथा सामाजिक समस्याओं के समाधान का एक साधन मानी जाती है। **मौरिस** के अनुसार निश्चयात्मक शिक्षा का, जो कि विभिन्न सामाजिक स्तर के व्यक्तियों को विभिन्न अवसर प्रदान करती है, रूप परिवर्तित होकर प्रजातन्त्रात्मक शिक्षा होता जा रहा है जो कि सभी व्यक्तियों को समान अवसर प्रदान करती है। साहित्यिक पाठ्यक्रम के स्थान पर विस्तृत, वैज्ञानिक तथा सामाजिक पाठ्यक्रम स्वीकार किया जा रहा है जो प्रतिदिन की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाया जाता है। समाज तथा विद्यालय में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयत्म किये जा रहे हैं।

वर्तमान समय में शिक्षा बाल केन्द्रित हैं, जहाँ व्यक्तिगत विभिन्नता के सिद्धान्त पर अधिक बल दिया जाता है। ये सभी परिवर्तन शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता पर बल देते हैं।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।
ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

5. बालक को विद्यालय में समायोजन की समस्या कब आती है?

....

6. शैक्षिक निर्देशन शिक्षा में अपव्यय को कैसे रोकने में समर्थ होगा?

....

5.6 शैक्षिक निर्देशन के उद्देश्य

जोन्स ने शैक्षिक निर्देशन के निम्नलिखित उद्देश्य बताए हैं :–

1. विद्यालय जीवन में स्वयं को समायोजित करने में विद्यार्थियों की सहायता करना– शैक्षिक निर्देशन का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों की इस प्रकार सहायता करना है

जिससे वे विद्यालय पाठ्यक्रम तथा सम्बन्धित सामाजिक जीवन में स्वयं को समायोजित कर सकें। जब विद्यार्थी नवीन विद्यालयों में प्रवेश लेते हैं या ग्रामीण क्षेत्रों के बालक समुचित शिक्षा उपलब्ध न होने पर नगरों में स्थित विद्यालयों में प्रवेश लेते हैं तो उनको नया वातावरण व नया सामाजिक जीवन मिलता है। जिसमें वे स्वयं को समायोजित नही कर पाते तथा विभिन्न कठिनाइयों का अनुभव करते है। शैक्षिक निर्देशन नवीन वातावरण में समायोजन स्थापित करने में विद्यार्थियों की सहायता करता है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित बातों को सम्मिलित किया जा सकता है–

1. पाठ्य विषयों के चयन में सहायता प्रदान करना।
2. उपयुक्त अध्ययन आदतों का निर्माण करना।
3. अन्य छात्रों के साथ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने में सहायता करना।
4. उपयोगी पुस्तकों के चयन में सहायता करना।
5. विभिन्न विषयों में प्रगति करने के लिए प्रोत्साहित करना।
6. पाठ्य सहगामी क्रियाओं के चयन में सहायता प्रदान करना।
7. छात्रवृत्ति प्राप्त करने के सम्बन्ध में सहायता करना।

2. सम्भावित तथा इच्छित अग्रिम शिक्षा से सम्बन्धित सूचनाएं प्राप्त करने में छात्रों की सहायता करना–विद्यार्थियों के समक्ष यह समस्या उत्पन्न होती है कि वे किस विद्यालय में प्रवेश लें तथा किन विषयों का चुनाव करें। अतः आवश्यक है कि शैक्षिक निर्देशन के माध्यम से विद्यार्थियों को विद्यालय के वातावरण, नियमों तथा विषयों से सम्बन्धित जानकारियां उपलब्ध करायी जाएं।

3. व्यवसाय चयन में विद्यार्थियों का मार्ग दर्शन करना– शिक्षा समाप्ति पर विद्यार्थियों को जीविकोपार्जन के लिए किसी न किसी व्यवसाय को अपनाना होता है किन्तु व्यवसायों से सम्बन्धित जानकारियों के अभाव में उनके समक्ष विकट समस्या उत्पन्न हो जाती है कि वह किस व्यवसाय का चयन करें? किस व्यवसाय के लिए कौन–कौन सी योग्यताएं आवश्यक हैं, कौन सा व्यवसाय उनकी योग्यताओं व क्षमताओं के अनुकूल है, वेतन, नौकरी की शर्ते, प्रगति की सम्भावनाएं इत्यादि से सम्बन्धित सूचनाएं उसे कहां से प्राप्त हो सकेंगी, इत्यादि। ये सभी प्रकार की सूचनाए विद्यार्थी तक पहुंचाने के लिए शैक्षिक निर्देशन का होना आवश्यक है।

4. विभिन्न प्रकार के विद्यालयों के कार्यो ओर उद्देश्यों को जानने में विद्यार्थियों की सहायता करना– पाठ्यक्रम की विविधता तथा व्यवसायों में वृद्धि के परिणामस्वरूप

भारत में भी विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना हुई है। उदाहरणार्थ–बहुउद्देश्यीय विद्यालय, औद्योगिक विद्यालय, व्यावसायिक विद्यालय, चिकित्सा विद्यालय, कृषि विद्यालय इत्यादि। इन विभिन्न प्रकार के विद्यालयों में विद्यार्थियों को उनकी मानसिक क्षमता, रूचियों व अभिरूचियों के आधार पर ही भेजा जा सकता है क्योंकि प्रत्येक विद्यालय के उद्देश्य एवं कार्य भिन्न–भिन्न हैं। अतः प्रत्येक विद्यालय सम्बन्धी समस्त जानकारियाँ प्राप्त करने में विद्यार्थियों की सहायता करना शैक्षिक निर्देशन का उद्देश्य है।

5. अपनी रूचि के विद्यालय में प्रवेश हेतु आवश्यक शर्तो व नियमों की जानकारी प्राप्त करने में विद्यार्थियों की सहायता करना– प्रत्येक विद्यालय की अपनी व्यवस्था पद्धति होती है तथा इसके प्रवेश के नियम एवं आधार निर्धारित होते है। भिन्न–भिन्न विषयों के आधार पर विद्यालय भी भिन्न–भिन्न होते हैं। प्रवेश के लिए विशिष्ट विषयों की आवश्यकता होती है। कुछ विद्यालयों में प्रवेश के लिए पूर्व परीक्षा या साक्षात्कार या दोनों ही होते हैं और कुछ विद्यालय कम से कम वांछित शैक्षिक योग्यता के आधार पर प्रवेश देते हैं। अतः इन विद्यालयों के नियमों आदि से परिचित कराना शैक्षिक निर्देशन का लक्ष्य है जिससे विद्यार्थी अपनी क्षमता के अनुसार अपनी पसंद के विद्यालय में प्रवेश ले सकें।

6. विद्यार्थी को स्वयं की रूचियों, अभिरूचियों व योग्यताओं से अवगत कराना–प्रत्येक विद्यार्थी की रूचियाँ, अभिक्षमताएँ व योग्यताएँ एक की अपेक्षा दूसरे से भिन्न होती है। किसी में बुद्धि अधिक होती है तो किसी में कम। वर्तमान समय में विद्यार्थियों को उनकी योग्यताओं, बौद्धिक क्षमताओं, रूचियों, अभिरूचियों व व्यक्तिगत शीलगुणों से अवगत कराने के लिए शैक्षिक निर्देशन अत्यन्त आवश्यक है।

7. प्रतियोगी परीक्षाओं से सम्बन्धित जानकारी प्रदान करना– जोन्स के शैक्षिक निर्देशन का महत्वपूर्ण उद्देश्य विद्यार्थियों को विभिन्न केन्द्रीय व राज्य स्तरों पर होने वाली विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं जैसे आई0ए0एम0, पी0सी0एस0, आर0ए0एस0, बैकिंग सेवा इत्यादि के सम्बन्ध में जानकारियॉ प्रदान करना है जिससे वह प्रारम्भ से ही अपना रूझान इस ओर बना सकें। उपरोक्त सभी प्रकार की परीक्षाओं में केवल वही व्यक्ति उत्तीर्ण एवं चयनित होते हैं जो वास्तव में योग्य हैं।

8. विद्यालय के विभिन्न पाठ्यक्रमों से सम्बन्धित जानकारियाँ उपलब्ध कराना– आज शिक्षा का क्षेत्र व्यापक होने के कारण पाठ्यक्रमों में भी विभिन्नता आई है। विद्यालयों मे विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमों का अध्ययन कराया जाता है जैसे विज्ञान,

कला, कृषि, वाणिज्य इत्यादि। इन पाठ्यक्रमों में भी नवीन विषयों को सम्मिलित किया जा रहा है। उपयुक्त जानकारी के अभाव में विद्यार्थी अनुचित पाठ्य विषयों का चयन कर लेते हैं जिनका प्रभाव उनके व्यवसाय पर पड़ता है। अतः यह आवश्यक है कि निर्देशन के माध्यम से विद्यार्थियों को विभिन्न पाठ्यक्रम एवं पाठ्य विषयों से सम्बन्धित समस्त आवश्यक जानकारियां प्रदान की जाएँ।

अन्य उद्देश्य

1. अधिगम विधियों में सुधार करना– शैक्षिक निर्देशन का एक मुख्य उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापन विधियों का सुधार करना भी है। विद्यार्थियों में इतनी समझदारी नहीं होती कि वे अपने योग्यताओं व क्षमताओं के अनुरूप उपयुक्त अधिगम विधियों का चयन कर सकें।

2. प्रतिभाशाली एवं पिछड़े बालकों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना– शैक्षिक निर्देशन का उद्देश्य केवल सामान्य बालकों की सहायता करना ही नही है वरन् शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिभाशाली एवं पिछड़े बालकों की सहायता करना भी है। प्रतिभाशाली बालकों से तात्पर्य ऐसे बालकों से है जिनकी क्षमताएँ बौद्धिक शक्तियाँ, समायोजन, शैक्षिक उपलब्धि औसत बालकों से श्रेष्ठ होती है। निर्देशन के सफल एवं उपयोगी कार्यक्रमों द्वारा प्रतिभाशाली बालकों की योग्यताओं एवं क्षमताओं का पूर्ण विकास किया जाना चाहिए जिससे वे अपनी योग्यताओं के अनुरूप विशिष्ट व्यवसायों का चयन कर देश की उन्नति में अपना योगदान दे सकें। इसके विपरीत कुछ बालक ऐसे भी होते हैं जो कक्षा में किसी तथ्य को बार–बार समझाने पर भी नही समझ पाते हैं तथा औसत बालकों के समान प्रगति नही कर पाते हैं। इन्हें पिछड़े बालक कहते हैं। पिछड़ेपन के अनेक कारण हैं जैसे शारीरिक दोष, मानसिक क्षमताएँ, विद्यालय का वातावरण एवं परिस्थितियाँ, अनुशासनहीनता, विघटित परिवार एवं संवेगात्मक व सामाजिक परिस्थितियां इत्यादि। निर्देशन सेवाओं का उद्देश्य है कि वह पिछड़े बालकों की उचित सहायता करने तथा उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में सामान्य स्तर पर लाने के लिए उनकी पहचान करे तथा उपचारात्मक शिक्षा की व्यवस्था करने में सहायता करें।

3. आकांक्षा स्तर निर्धारित करने में सहायता करना–आकांक्षा स्तर का निर्धारण बालक की योग्यताओं एवं क्षमताओं के अनुरूप होना चाहिए। अतः शैक्षिक निर्देशन का उद्देश्य है कि वह छात्रों को आत्मबोध करायें जिससे वे अपनी योग्यताओं, क्षमताओं रूचियों, आवश्यकताओं व कमियों को समझ सकें और आकांक्षा स्तर को वास्तविकता के आधार पर निर्धारित कर सकें। यदि आकांक्षाओं का निर्धारण वास्तविकता के आ

ार पर नही किया जाता है तो बाद में आकांक्षाए पूरी न होने पर विद्यार्थी को निराशा, कुंठा इत्यादि का सामना करना पड़ सकता है, जो समायोजन में बाधक है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।
ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

7. अग्रिम शिक्षा के लिए विद्यार्थी को कैसी सहायता की आवश्यकता होती है?

....

8. प्रतियोगी परीक्षाओं की जानकारी विद्यालय में ही क्यों दी जानी चाहिए?

....

9. प्रतिभाशाली बालकों को शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता क्यों होती है?

....

5.7 शैक्षिक निर्देशन के सिद्धान्त–

शैक्षिक निर्देशन के निम्नलिखित सिद्धान्त व नियम है जिनका शैक्षिक निर्देशन की प्रक्रिया के समय अनुसरण होना चाहिए।

1. विद्यालय तथा अभिभावक के मध्य सम्बन्ध का सिद्धान्त– शैक्षिक निर्देशन की प्रक्रिया की सफलता के लिए विद्यालय एवं अभिभावक में गहरा सम्बन्ध होना अति आवश्यक है क्योंकि विद्यार्थी से सम्बन्धित आवश्यक सूचनाएँ विद्यालय एवं अभिभावक से प्राप्त की जा सकती है।

2. सभी विद्यार्थियों के लिए समान निर्देशन की सुविधा प्रदान करने का सिद्धान्त–शैक्षिक निर्देशन कुछ चयनित विद्यार्थियों के लिए नही वरन् सभी वर्गों, आयु समूहों व सभी योग्यताओं एवं क्षमताओं वाले विद्यार्थियों के लिए होना चाहिए। शिक्षा के सभी स्तरों पर विद्यार्थियों को निर्देशन की आवश्यता होती है अतः उनको निर्देशन व सुविधाएं अवश्य उपलब्ध होनी चाहिए।

3. प्रमापीकृत परीक्षणों के प्रयोग का सिद्धान्त–विद्यालय में विद्यार्थियों की समस्याओं का पता लगाने, उनकी रूचियों, योग्यताओं एवं अभिक्षमताओं को जानने व सम्बन्धित सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए प्रमापीकृत परीक्षणों का प्रयोग किया जाना चाहिए। इन परीक्षणों के परिणामों से विद्यार्थियों की उपलब्धि के आधार पर किसी विशिष्ट पाठ्यक्रम में सफलता व असफलता के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की जा सकती है। प्रमापीकृत परीक्षणों के द्वारा परिणाम अप्रमापीकृत परीक्षणों की अपेक्षा वस्तुनिष्ठ एवं श्रेष्ठ होते है।

4. गोपनीयता का सिद्धान्त–निर्देशन प्रक्रिया में प्रार्थी की समस्याओं की गोपनीयता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। प्रार्थी से सम्बन्धित कोई भी ऐसी सूचना किसी अन्य को न बतायी जाए जिससे कि वह स्वयं को अपने सहपाठियों से कमतर समझे।

5. अनुगामी अध्ययन का सिद्धान्त–निर्देशन देने के पश्चात् निर्देशन की प्रभावशीलता ज्ञात करना आवश्यक है। निर्देशन की सफलता की जांच करने के लिए समय–समय पर यह जानना आवश्यक है कि व्यवसाय में लगे छात्र सफल हुए या नही। इसी से निर्देशन कार्यक्रमों की सफलता का पता चल जाता है। यदि अनुगामी अध्ययन न किया जाए तो निर्देशन सेवा का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है।

6. उचित एवं सम्बन्धित सूचनाओं का सिद्धान्त– निर्देशन व्यवसायिक क्षेत्र से सम्बन्धित हो या शैक्षिक क्षेत्र से, तब तक सम्भव नही है जब तक पर्याप्त मात्रा में सम्बन्धित एवं उपयुक्त सूचनाएं एकत्रित न की जाएँ। ये सूचनाएँ छात्र की बुद्धिलब्धि, शैक्षिक उपलब्धि, रूझान से सम्बन्धित होती है। इनके आधार पर ही निर्देशन प्रदान किया जाना चाहिए।

7. समस्या समाधान का सिद्धान्त– किसी भी समस्या का समाधान, उसके भयंकर रूप धारण करने से पूर्व ही प्रारम्भ कर देना चाहिए क्योंकि समस्या के गम्भीर होने पर निर्देशन प्रक्रिया अधिक प्रभावशली सिद्ध नही हो सकेगी।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।
ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

10. निर्देशन हेतु अभिभावकों एवं विद्यालय के मध्य सम्बन्ध क्यों आवश्यक है?

....

11. निर्देशन में सही सूचनाओं का संकलन क्यों आवश्यक है?

....

5.8 विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक निर्देशन

जोन्स ने अपनी पुस्तक 'निर्देशन के सिद्धान्त' में शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर निर्देशन के महत्व के सम्बन्ध में कहा है कि ''निर्देशन सम्पूर्ण शिक्षा कार्यक्रम का एक अभिन्न अंग है। सुधारात्मक, शक्ति की अपेक्षा यह सकारात्मक कार्य के रूप में सेवा करता है और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए बालक के विद्यालय से संबंध स्थापित होने से लेकर जब तक वह किसी वृत्ति में नियुक्ति योंग्य नही हो जाता है तब तक

निरन्तर प्रक्रिया के रूप में चलते रहना चाहिए।'' इस कथन से स्पष्ट है कि निर्देशन एक गतिशील एवं विकासशील प्रक्रिया है जो छात्रों की उन्नति के लिए शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर अत्यन्त आवश्यक है। यह किण्डरगार्टन कक्षाओं से लेकर उच्च शिक्षा तक विद्यार्थियों के शैक्षिक विकास में सहायता प्रदान करती है।

प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन–प्राथमिक स्तर पर बच्चे भिन्न–भिन्न परिवारों से विद्यालयों में पढ़ने आते है। विद्यालयों का जीवन अनुशासित एवं प्रतिबंधित होता है। बालकों को निर्धारित समय के अनुरूप कार्य करने होते हैं। उनकी मानसिक शक्तियाँ अपरिपक्व होती हैं, जिससे समायोजन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। बच्चों के स्वस्थ मानसिक एवं शारीरिक विकास के लिए निर्देशन की आवश्यकता है।

वर्तमान समय में निर्देशन को एक ऐसी प्रक्रिया माना जाता है जो बालक की विद्यालयी शिक्षा के प्रथम सम्पर्क के साथ प्रारम्भ होती है और व्यवसाय व्यवस्थापन तक चलती रहती है। प्राथमिक विद्यालयों में निर्देशन के कार्य का उत्तरदायित्व शिक्षक का ही होता है किन्तु अब विशेषज्ञों की सहायता लेने की प्रवृत्ति भी बढ़ती जा रही है। शिक्षक बालकों के समूह तथा उनके माता–पिता एवं अभिभावकों के बीच निर्देशन कार्यकर्ता का कार्य करता है तथा बालकों के विकास हेतु सुझाव भी देता है जिससे बालकों के व्यक्तित्व एवं सामाजिक व्यवहार का विकास किया जा सके एवं उनके अधिगम को अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकें। अतः प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के निम्नलिखित कारण हैं–

1. बालक की प्रत्येक उत्सुकता एंव व्यवहार पर ध्यान के लिए।
2. बालक में उपयुक्त अवसरों का विकास करने लिए।
3. विकलांग बालकों की उचित आवश्यकताओं पर ध्यान देने के लिए।
4. खेल सम्बन्धी गतिविधियों का मार्गदर्शन करने के लिए।
5. बालकों मे उचित दृष्टिकोण का विकास करने के लिए जिससे वे सही और गलत तथा उचित व अनुचित में निर्णय कर सकें।
6 बालकों को उनकी योग्यताओं व क्षमताओं को समझाने में सहायता प्रदान करने के लिए।
7. बालकों को विद्यालय के नवीन वातावरण में समायोजित होने के लिए सहायता करना।
8. सामूहिक कार्य की भावना का विकास करने के लिए।

9. पाठ्यक्रम एवं पाठ्यविषयों में रूचि विकसित करने के लिए।

10. सभी बालकों को आवश्यक विकास के लिए अवसर प्रदान करने के लिए।

11. वाचन, गणित, अभिव्यक्ति आदि क्षेत्रों में उन्नति के अनुरूप आवश्यक सुधारात्मक उपायों के सम्बन्ध मे निर्णय लेने के लिए।

12. बालकों को विद्यालय के नवीन वातावरण में समायोजित करने के लिए।

प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन के कार्य– प्राथमिक शिक्षा स्तर पर शैक्षिक निर्देशन के निम्नलिखित कार्य हैं–

1. विद्यार्थियों की शैक्षिक जीवन की उचित शुरूआत करने में सहायता देना– शैक्षिक निर्देशन का मुख्य कार्य छोटे–छोटे बालकों की इस प्रकार सहायता करना है कि वे अपने शैक्षिक जीवन का प्रारम्भ भली प्रकार कर सकें, उनमें शिक्षा के प्रति रूचि उत्पन्न हो सकें तथा वे अपने आपको नवीन वातावरण में प्रभावशाली ढंग से समायोजित कर सकें।

2. विद्यार्थियों के लिए उपयोगी शिक्षा–योजना बनाने में सहायता करना–विभिन्न पाठ्यक्रमों की जानकारी देते हुए विद्यार्थियों को उनकी आवश्यकताओं एवं क्षमताओं से अवगत कराने तथा उनके अनुरूप शैक्षिक कार्यक्रमों की योजना बनाने में सहायता प्रदान करना, शैक्षिक निर्देशन का महत्वपूर्ण कार्य है। शैक्षिक निर्देशन विभिन्न व्यवसायों एवं पाठ्यक्रमों सम्बन्धी जानकारियों से विद्यार्थियों को अवगत कराता है जिससे वे अपने भविष्य की विवेकपूर्ण योजनाएँ बना सकें।

3. अधिकतम शैक्षिक लाभ प्राप्त करने में विद्यार्थियों की सहायता करना–शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को इस योग्य बनाना है कि वह स्वंय को नवीन परिस्थितियों में समायोजित कर सके। शैक्षिक निर्देशन प्राथमिक स्तर से ही बालकों मे इस प्रकार की भावनाएँ विकसित करने का प्रयास करता है जिससे वे इस बात को भली प्रकार समझ सकें कि शिक्षा ही वह साधन है जिसके द्वारा वे अपने जीवन को श्रेष्ठ बना सकते है। इसलिए उन्हें शिक्षा का अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिए। बालकों की योग्यताएं, क्षमताएँ, रूचियाँ, बुद्धि, आदि उनकी शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करती है। अतः शैक्षिक निर्देशन का कार्य है कि वह उनकी इस प्रकार सहायता करें कि वे उपरोक्त योग्यताओं का प्रयोग शैक्षिक उन्नति के लिए करें।

4. माध्यमिक विद्यालयों में प्रवेश के लिए तैयारी मे विद्यार्थियों की सहायता करना– शिक्षा एव शैक्षिक निर्देशन दोनों ही गतिशील एवं निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। शैक्षिक निर्देशन का एक प्रमुख कार्य विद्यार्थियों के भावी शैक्षिक कार्यक्रम की

योजना बनाने में, माध्यमिक विद्यालयों में प्रवेश लेने मे तथा रूचि के अनुसार पाठ्यक्रमों का चयन करने में सहायता प्रदान करना है।

प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन कार्यक्रम की सफलता, प्रधानाध्यापक, अध्यापक, परामर्शदाता, अभिभावक आदि में समन्वय पर निर्भर करती है। इस स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम में निम्नलिखित बातों को भी सम्मिलित किया जा सकता है।

1. विद्यार्थियों की आवश्यकतानुसार वर्ग बनाना।
2. संचित अभिलेख तैयार करना।
3. परीक्षणों की व्यवस्था करना।
4. बालकों को बौद्धिक क्षमतानुसार अवसर प्रदान करना।
5. असमायोजित एवं विकलांग बालकों की विशिष्ट सहायता करना।

माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन– माध्यमिक स्तर पर अध्ययन करने वाले विद्यार्थी किशोरावस्था में प्रवेश करते हैं। इस अवस्था मे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक परिवर्तन तथा विकास तीव्र गति से होता है। उनमें नयी–नयी बातों को जानने की इच्छा उत्पन्न होती है। उनकी इच्छाएँ एवं आकांक्षाएँ, रूचियाँ–अरूचियाँ आदि स्पष्ट होने लगती है। विद्यालयों, शिक्षकों तथा शिक्षा के प्रति निश्चित दृष्टिकोण विकसित हो जाता है। व्यक्तित्व सम्बन्धी शील–गुणों में स्थिरता आने लगती है। वे अपनी क्षमताओं के आधार पर आगामी कार्यक्रमों की योजनाएँ बना सकते है। शैक्षिक निर्देशन इन्ही वस्तुस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विद्यार्थियों को निर्देशन सेवा उपलब्ध ा कराता है। इस स्तर पर निर्देशन सेवा की आवश्यकता के मुख्य तीन कारण हैं–

1. जब विद्यार्थी प्राथमिक स्तर से माध्यमिक स्तर पर प्रवेश करता है। तब उसके समक्ष पाठ्यक्रम चयन की समस्या उत्पन्न होती है क्योंकि इस स्तर पर पाठ्यक्रम मे विविधता होती है।
2. माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्यापक व्यवस्था भिन्न होती है। विद्यालयों में विशिष्ट योग्यता वाले शिक्षकों द्वारा विषय विशेष का अध्यापन कार्य कराया जाता है। कोई एक अध्यापक सम्पूर्ण कक्षा के छात्रों की प्रगति के लिए उत्तरदायी नही होता। अतः इस स्तर पर बालकों की समस्याओं को समझने एवं समाधान करने के लिए संगठित निर्देशन व्यवस्था की आवश्यकता होती है।
3. इस स्तर पर विद्यार्थियों के समक्ष एक महत्वपूर्ण समस्या व्यवसायीकरण की भी है। छात्रों को नौवीं एवं 11वीं कक्षा में पहुंचकर व्यवसाय के

सम्बन्ध में महत्वपूर्ण निर्णय करने होते हैं। शैक्षिक निर्देशन की सहायता से विद्यार्थी उपयोगी निर्णय लेने में समर्थ होता है।

माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर पर निर्देशन का सम्बन्ध परामर्श सेवाओं, सूचना सेवाओं, व्यक्तिगत प्रश्नावली सेवाओं, व्यवस्थापन सेवाओं तथा शोध एवं अनुसंधान सेवाओं से सम्बन्धित होता है।

शैक्षिक निर्देशन के अन्तर्गत निम्नलिखित क्रियाएँ सम्मिलित रहती हैं–

1. प्रवेश प्राप्त करने की विधि।
2. विद्यालयों की आवश्यकताओं, कार्य करने की विधि इत्यादि से विद्यार्थियों को अवगत कराना।
3. विद्यार्थियों से सम्बन्धित व्यावसायिक एवं शैक्षिक सूचनाएं एकत्रित करना।
4. विद्यार्थियों को परामर्श द्वारा विभिन्न कार्यों में सहायता देना जैसे–

अ– पाठ्यविषयों के चयन मे विद्यार्थियों की सहायता करना।

ब– छात्रों की रूचियों, योग्यताओं एवं अभियोग्यताओं का पता लगाना तथा उनका वर्तमान एवं भविष्य के उद्देश्यों से सम्बन्ध स्थापित करना।

स– व्यक्तिगत समस्याओं के सम्बन्ध में बातचीत करना।

5. सामूहिक क्रियाओं का संगठन करना।
6. स्वास्थ्य सेवाएं संगठित करना।
7. विद्यालय के सभी शिक्षकों का सहयोग प्राप्त करना।
8. संचित अभिलेख एकत्रित करना।
9. पिछड़ेपन एवं समस्यात्मक व्यवहार से ग्रस्त विद्यार्थियों का उपचारात्मक विधियों द्वारा उपचार करना।

'अमेरिकन शिक्षालय परामर्शदाता समिति ने माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर निर्देशन कर्ता के दस दायित्वों का उल्लेख किया है–

1. निर्देशन कार्यक्रम का नियोजन एंव विकास।
2. परामर्श।
3. विद्यार्थी का मूल्यांकन।
4. शैक्षिक एवं व्यावसायिक नियोजन।

5. अभिदेशन कार्य।

6. व्यवस्थापन।

7. अभिभावक सहायता।

8. कर्मचारी परामर्श।

9. स्थानीय अनुसंधान।

10. जन–सम्बन्ध।

अमेरिकन शिक्षालय परामर्शदाता समिति ने निर्देशन हेतु एक मॉडल कार्यक्रम की योजना भी प्रस्तुत की है तथा निम्नलिखित कार्यों के अपनाने का सुझाव भी दिया है।

1. निर्देशन द्वारा विद्यार्थी के लिए व्यक्तिगत सेवा के दर्शन एवं सिद्धान्तों का अध्ययन।

2. व्यक्तिगत मूल्यांकन हेतु मानव विशेषताओं के विस्तार, प्रकृति एवं उनकी मापन प्रविधियों का अध्ययन।

3. व्यावसायिक योग्यता विकास सिद्धान्त का ज्ञान।

4. शैक्षिक एवं व्यावसायिक सूचनाओं का ज्ञान।

5. परामर्श के सिद्धान्त एवं व्यवहार का ज्ञान।

6. अनुसंधान एवं सांख्यिकी प्रविधियों का ज्ञान।

7. निर्देशन एंव परामर्श की सामूहिक विधियों का ज्ञान।

8. व्यावसायिक सम्बन्धों एवं नीतियों की जानकारी।

9. निर्देशन का प्रशासन।

10. निरीक्षण अनुभव।

माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन के कार्य–माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन के निम्नलिखित कार्य हैं–

1. विद्यार्थियों को शिक्षा के उद्देश्यों की ओर उन्मुख करना–प्रायः सभी देशों में माध्यमिक शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य है– लोकतंत्रात्मक नागरिकता का विकास, व्यावसायिक दक्षता का विकास, व्यक्तित्व का विकास एंव नेतृत्व के लिए शिक्षा। अतः शिक्षा द्वारा उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। निर्देशन

कार्यक्रम विद्यार्थियों की इस प्रकार से सहायता करते हैं कि वे अपनी क्षमताओं व योग्यताओं को समझ सकें तथा उन विषयों का चयन कर सकें जो उनके लिए अधिक उपयुक्त हों। उपयुक्त निर्देशन के अभाव में कुछ सैद्धान्तिक व शास्त्रीय विषयों का चयन कर लेते हैं तथा कुछ व्यावसायिक एवं व्यावहारिक विषयों का चयन करते है। लेकिन शैक्षिक निर्देशन का यह कार्य है कि वह छात्रों को शिक्षा के उद्देश्यों की ओर उन्मुख करें।

2. पाठ्यक्रम एवं पाठ्य विषयों के चयन में विद्यार्थियों की सहायता करना—प्राथमिक स्तर तक शिक्षा के क्षेत्र में प्रायः एकरूपता पायी जाती है क्योंकि उसका उद्देश्य सभी को अनिवार्य रूप से प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करना है। माध्यमिक स्तर पर छात्रों के समक्ष पाठ्यक्रम एवं पाठ्य—विषयों के चयन सम्बन्धित समस्याएं आती है। माध्यमिक स्तर पर प्रायः विज्ञान, कला, वाणिज्य, कृषि इत्यादि विभिन्न पाठ्यक्रम होते है। विद्यार्थी को यह निर्णय करना होता है कि वह उनमें से किस पाठ्यक्रम का चयन करें जो जीवनोपयोगी एवं उसकी क्षमताओं के अनुरूप हों। इसके अतिरिक्त कुछ अनिवार्य एवं वैकल्पिक विषय होते है जिनके चयन में कठिनाई होती है तथा विषयों को बार—बार परिवर्तित करने की स्वीकृति भी नही होती। इसलिए शैक्षिक निर्देशन का मुख्य कार्य मानकीकृत परीक्षणों एवं अन्य साधनों के प्रयोग द्वारा विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम एवं पाठ्य—विषयों के चयन के बारे में विभिन्न पहलुओं से अवगत कराना है जैसे—

1. विद्यार्थियों को उच्च माध्यमिक विद्यालय पाठ्यक्रम की प्रकृति व उद्देश्य से अवगत कराना।
2. विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की जानकारी देना तथा उनके महत्व के बारे में बताना।
3. माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद विश्वविद्यालय शिक्षा संस्थाओं, व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थाओं एवं अन्य विशिष्ट शिक्षा संस्थाओं सम्बन्धी सूचनाएं प्रदान करना।
4. विद्यार्थियों को उनकी स्वयं की रूचियों, क्षमताओं, योग्यताओं, कौशलों इत्यादि को समझने, मूल्यांकन करने तथा विभिन्न पाठ्यक्रमों व पाठ्यविषयों से उनका सम्बन्ध जोड़ने में सहायता करना।

3. अध्ययन के लिए छात्रों को अभिप्रेरित करना— शैक्षिक निर्देशन विद्यार्थियों की

विषयगत समस्याओं के समाधान में ही सहायता नही करता वरन् उद्देश्य प्राप्ति के लिए अध्ययन के प्रति अभिप्रेरित करने का कार्य भी करता है। माध्यमिक स्तर पर अभिप्रेरणा का अत्यधिक महत्व है क्योंकि इस पर विद्यार्थी स्वयं की योग्यताओं का अनुमान लगाने लगता है।

4. उच्च शिक्षा में शैक्षिक निर्देशन– शैक्षिक निर्देशन विशिष्ट रूप से प्राथमिक और माध्यमिक स्तरों से ही सम्बन्धित होता है। उच्च स्तर पर विद्यार्थियों का व्यक्तित्व परिपक्व हो जाता है, उनके लक्ष्य स्पष्ट होने लगते है तथा वे अपने उत्तरदायित्व को समझने लगते है। फिर भी कुछ विद्यार्थी ऐसे होते हैं जो बिना किसी निश्चित उद्देश्य ही उच्च शिक्षा में प्रवेश ले लेते हैं। विषयों के चयन पर भी ध्यान नही देते, उन्हें बाद में बहुत अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उनके लिए शिक्षा का कोई अर्थ नही होता। ऐसे विद्यार्थियों को शैक्षिक निर्देशन कार्यक्रम के द्वारा उनकी आवश्यकताओं से अवगत कराना चाहिए तथा विशिष्टीकरण के विषय चुनने एवं बाद में व्यवसाय चयन में सहायता करनी चाहिए। शैक्षिक निर्देशन सम्बन्धी विभिन्न कार्यक्रम जैसे–प्रसार भाषण, ट्यूटोरियल्स तथा बहसें, पुस्तकालय सुविधा इत्यादि द्वारा विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रगति में सहायता की जानी चाहिए।

उच्च शिक्षा स्तर पर शैक्षिक निर्देशन के कार्य– संक्षेप में उच्च शिक्षा स्तर पर शैक्षिक निर्देशन के अग्रलिखित कार्य हो सकते हैं–

1. उच्च शिक्षा के प्रारम्भ में ही विद्यार्थियों को कालेज शिक्षा के उद्देश्य, कार्य क्षेत्र एवं महत्व से अवगत कराना।
2. विद्यार्थियों की तात्कालिक आवश्यकताओं की ओर ध्यान देना।
3. विद्यार्थियों की प्रगति में बाधक कारणों को जानना तथा उन्हें दूर करने का प्रयास करना।
4. उच्च शिक्षा स्तर पर विद्यार्थियों को उपयुक्त निर्देशन प्रदान करने के लिए ट्यूटोरियल्स, प्रसार भाषण, सेमिनार इत्यादि की व्यवस्था करना।
5. विद्यार्थियों में अध्ययन की उत्तम आदतों का विकास करने, विषय सम्बन्धी कठिनाईयों को दूर करने एवं उनकी शैक्षिक प्रगति में सहायता प्रदान करना।
6. उच्च शिक्षा में प्रवेश के समय से ही प्रत्येक संकाय द्वारा शैक्षिक निर्देशन कार्यक्रमों को प्रारम्भ करना।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।
ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

12. प्राथमिक स्तर की शिक्षा में निर्देशन देने का कार्य कौन करता है?

....

13. माध्यमिक स्तर की शिक्षा में शैक्षिक निर्देशन प्रक्रिया क्लिष्ट क्यों हो जाती है?

....

14. उच्च स्तर की शिक्षा में शैक्षिक निर्देशन के क्या कार्य है?

....

5.9 शैक्षिक निर्देशन की विधियां

शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्व को समझने के पश्चात प्रश्न यह उठता है कि छात्रों को शैक्षिक निर्देशन कैसे दिया जाए। सामान्यतया शैक्षिक निर्देशन प्रदान करने की विधियां दो वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं–

1. व्यक्तिगत निर्देशन विधियां
2. सामूहिक निर्देशन विधियां

1. व्यक्तिगत निर्देशन विधियां– व्यक्तिगत निर्देशन विधियों द्वारा निर्देशन व्यक्तिगत स्तर पर सम्पर्क स्थापित करके प्रदान किया जाता है। इसमें व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, बौद्धिक तथा वैयक्तिक समस्याओं का अध ययन किया जाता है। इसमें निम्नलिखित विधियों का अनुकरण किया जाता है–

(i) प्राथमिक साक्षात्कार–विद्यार्थियों का व्यक्तिगत रूप से अध्ययन करने के लिए प्राथमिक साक्षात्कार किया जाता है। इस प्राथमिक साक्षात्कार में निर्देशन समिति के लिए विद्यार्थी से सम्बन्धित विभिन्न सूचनाएं एकत्रित करना आवश्यक है।

1. पारिवारिक वातावरण से सम्बन्धित।
2. शिक्षा एंव व्यवसाय सम्बन्धी योजनाओं के सम्बन्ध में।
3. अवकाश के समय में की जाने वाली क्रियाओं के सम्बन्ध में।

2. विद्यार्थियों का संचित अभिलेख–शैक्षिक निर्देशन के लिए विद्यार्थियों से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की जानकारियों को एकत्रित किया जाता है तथा उन्हें रिकार्ड के रूप में सुरक्षित रखा जाता है। यही संचित अभिलेख है। संचित अभिलेख में निम्नलिखित सूचनाएं सम्मिलित की जाती हैं–

1. छात्र का परिचय एवं विवरण।

2. छात्र की बौद्धिक स्तर सम्बन्धी सूचनाएँ।
3. रूचियों एवं अभिरूचियों से सम्बन्धी सूचनाएँ।
4. शारीरिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी सूचनाएँ।
5. मानसिक तथा उपलब्धि परीक्षण सम्बन्धी जानकारी।
6. पारिवारिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि।
7. पाठ्येत्तर क्रियाकलाप।
8. व्यक्तित्व सम्बन्धी अन्य विशिष्ट जानकारिया इत्यादि।

3. **सामाजिक व आर्थिक अध्ययन**–विद्यार्थी के घर, परिवार, पास–पड़ोस इत्यादि के बारे में सामाजिक व आर्थिक जानकारियां प्राप्त कर लेनी चाहिए। इसके लिए प्रश्नावलियां एवं सामाजिक आर्थिक स्तर मापनी का भी प्रयोग किया जा सकता है।

4. **मनोवैज्ञानिक परीक्षण**– शैक्षिक निर्देशन के लिए विद्यार्थी के विभिन्न व्यक्तित्व शील गुणों के सम्बन्ध में जानने के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है। ये परीक्षण निम्नलिखित हो सकते हैं–

1. बुद्धि परीक्षण
2. अभिरूचि परीक्षण
3. रूचि परिसूची
4. उपलब्धि परीक्षण
5. व्यक्तित्व परीक्षण

5. **स्वास्थ्य परीक्षण**–विद्यार्थियों के स्वास्थ्य का परीक्षण भी आवश्यक है। ऐसा माना जाता है कि 'स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। अतः विद्यार्थियों के स्वास्थ्य परीक्षण की नियमित एवं समुचित व्यवस्था होनी चाहिए जिससे बाह्य व आंतरिक बीमारियों तथा कमजोरियों का पता चल सकें।

विद्यालय जीवन का अध्ययन–विद्यार्थी के विद्यालय जीवन का अध्ययन करना भी अत्यन्त आवश्यक है जिससे विद्यार्थी से सम्बन्धित निम्नलिखित जानकारियां प्राप्त हो सकें–

1. विद्यार्थी ने किन–किन विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की है।
2. उसने किन विषयों को पढ़ने में रूचि दिखाई है।
3. किस विषय में कितने अंक प्राप्त किए है।
4. पाठ्य सहगामी क्रियाओं के प्रति उसकी क्या रूचि है।

5. उसकी रूचि–अरूचि क्या है?

6. शिक्षा व शिक्षकों के प्रति कैसा दृष्टिकोण है? इत्यादि उपरोक्त समस्त जानकारियाँ, संचित अभिलेख पत्र द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं और इन्हीं के आधार पर विद्यार्थी को शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन प्रदान किया जा सकता है।

(ii) सामूहिक निर्देशन विधियां–कभी कभी ऐसी परिस्थितिया व कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती है जब विद्यार्थी को सामूहिक रूप से निर्देशन प्रदान किया जाता है। सामूहिक निर्देशन विधियां निम्नलिखित हैं–

1. **अनुस्थापन वार्ताएं**–निर्देशक व अन्य विद्वानों द्वारा विद्यार्थियों को सामूहिक रूप से शैक्षिक निर्देशन के महत्व को समझाया जाता है। उनकी शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं की विस्तृत चर्चा की जाती है जिससे विद्यार्थी स्वयं अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में गहनता से सोचने के लिए प्रोत्साहित होते हैं। विद्यार्थियों को निर्देशनं हेतु मानसिक रूप से तैयार करने के पश्चात् निर्देशन देना सदैव प्रभावी होता है।

2. **पार्श्वचित्र निर्माण**– विद्यार्थी से सम्बन्धित समस्त सूचनाएं एकत्रित कर लेने के पश्चात् एक पार्श्वचित्र तैयार कर लेना चाहिए। यह ग्राफ पेपर पर बना हुआ एक रेखाचित्र होता है जिसमें विद्यार्थी की योग्यताओं, क्षमताओं तथा अन्य परीक्षणों के परिणामों के स्तर को प्रदर्शित किया जाता है। तत्पश्चात् इस पार्श्वचित्र के आधार पर विद्यार्थियों से सम्बन्धित सूचनाओं का निष्कर्ष निकाला जाता है।

3. **विद्यालय से विद्यार्थी के सम्बन्ध में सूचनाएं एकचित्र करना**–शैक्षिक निर्देशन के लिए विद्यार्थियों के सम्बन्ध में सूचनाएं एकत्रित करने के लिए विद्यालय एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं। विद्यार्थी की शैक्षिक उपलब्धियों का ज्ञान उनके द्वारा विभिन्न परीक्षाओं में प्राप्त अंकों से हो जाता है। अध्यापकों के साथ साक्षात्कार करके विद्यार्थियों की रूचियों, योग्यताओं, कौशलों, आदतों, व्यक्तित्व सम्बन्धी अन्य विशेषताओं व पाठ्यसहगामी क्रियाओं में रूचि आदि के सम्बन्ध में विभिन्न सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं। अतः निर्देशन के लिए सूचनाएं एकत्रित करते समय विद्यालय एवं अध्यापक की सहायता अवश्य ली जानी चाहिए।

4. **परिवार से विद्यार्थी के सम्बन्ध में सूचनाएं एकत्रित करना**– बच्चों की जीवन में सबसे अधिक निकटता परिवार में अपने माता–पिता से ही होती है। जन्म से ही माता–पिता अपनी आंखों के समक्ष उनको विकसित होते हुए देखते हैं तथा निरन्तर उनकी प्रगति के लिए सोचते रहते हैं। वे बच्चों की आदतों, रूचियों,

अभिरूचियों व कठिनाइयों को बहुत अच्छी तरह से समझते हैं अतः बालकों की भावी शैक्षिक एवं व्यावसायिक योजनाओं के बारे में वे अच्छी तरह से बता सकते हैं। यह सूचनाएं घर जाकर, वार्ता द्वारा व पत्र व्यवहार द्वारा सम्पर्क स्थापित करके प्राप्त की जा सकती हैं।

5. **सम्मेलन**—विद्यार्थियों से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की सूचनाओं से प्राप्त निष्कर्षों को शैक्षिक निर्देशन समिति के समक्ष रखा जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी–अपनी राय प्रस्तुत करता है तथा आपसी विचार–विमर्श के पश्चात् एक सर्वमान्य निर्णय पर पहुंचते हैं। यह निर्णय निर्देशन के लिए बहुत महत्वपूर्ण होता है तथा विद्यार्थियों के भविष्य को प्रभावित करता है।

6. **रिपोर्ट तैयार करना**— सम्मेलन में लिए गए निर्णय के आधार पर निर्देशन समिति प्रत्येक विद्यार्थी के सम्बन्ध में विस्तृत रिपोर्ट तैयार करती है। यह रिपोर्ट विद्यार्थियों के माता–पिता, अभिभावक एवं विद्यालय अधिकारियों को दी जाती है जिससे वे विद्यार्थी की कार्य योजना में सहायता कर सकें।

7. **अनुवर्त्ती कार्य**— अनुवर्ती कार्य से तात्पर्य है जिन विद्यार्थियों को निर्देशित किया गया है उनका निरन्तर मूल्यांकन करते रहना, जिससे यह पता चल सके कि उन्हें जिस शिक्षा को ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित किया गया था, उसमें वे सफलता प्राप्त कर रहे हैं या नही। यदि विद्यार्थी की सफलता संतोषजनक नही है तो हमें यह समझना चाहिए कि हमारी निर्देशन पद्धति दोषपूर्ण है और उस कमी को जानकर दूर करने का प्रयास करना चाहिए। दूसरे शब्दों मे अनुवर्ती कार्य निर्देशन–कार्यक्रम व्यवस्था को सुधारने एवं इसकी प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने के लिए अति आवश्यक है।

बोध प्रश्न—

टिप्पणी—क— नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख— इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

15. शैक्षिक निर्देशन में पार्श्वचित्र क्या है?

....

16. अनुस्थापन वार्तालाप क्यों दी जाती है?

....

17. अनुवर्ती क्रियाओं का निर्देशन में महत्व बताइए?

....

5.10 सारांश

शैक्षिक निर्देशन वर्तमान में शिक्षा के सभी स्तर पर एक आवश्यक अंग के रूप में विकसित हो रहा है। इसकी आवश्यकता की उपेक्षा अब नही की जा सकती। इसकी अनिवार्यता को ध्यान में रखकर सभी स्तर की शिक्षा में इसको समाहित किया जाना चाहिए।

5.11 अभ्यास के प्रश्न

किसी विद्यालय के प्राथमिक कक्षाओं में अधिगम की समस्या से ग्रस्त विद्यार्थियों के लिए एक निर्देशन कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार कीजिए।

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. दोनों ही व्यक्ति को विकास एवं समायोजन में सहायता देते है।
2. मानव संसाधन तैयार करती है।
3. मानव व समाज दोनो का विकास।
4. स्वयं लिखे।
5. जब वह नए विद्यालय में जाता है या फिर अधिगम सम्बन्धी समस्या होती है।
6. उचित शिक्षा व अधिगम हेतु सलाह देकर।
7. उचित मार्गदर्शन की।
8. जिससे पूर्व में ही अपने व्यवसाय हेतु मस्तिष्क को तैयार कर लें।
9. समान कक्षा परिस्थितियों में समायोजन हेतु।
10. दोनों मिलकर ही बालक की सम्पूर्ण समस्या को समझ सकते है।
11. सही सूचना से ही सही निर्देशन सम्भव।
12. शिक्षक।
13. किशोरावस्था की विकासात्मक परिवर्तनशील परिस्थितियों के कारण।
14. समायोजन, अग्रिम शिक्षा के लिए तथा उचित व्यवसाय प्राप्ति के लिए।
15. प्राप्त जानकारी का ग्राफ पेपर पर बना रेखाचित्र।
16. निर्देशन की आवश्यकता की जानकारी के लिए।
17. निर्देशन की प्रक्रिया में सुधार के लिए।

5.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Pandey, K.P. (2000). Educational and Vocational Guidance in India. Vishwavidyalaya Prakashan, Varanasi.

2. Indu Dave. (1983). The Basic Essentials of Counselling. Sterling Pubnlishers Private Limited.

.3. S.K.Kochhar. Guidance and Counselling in Colleges and Universities.

4. डॉ० रमाकान्त दुबे। शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के आधार। वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।

5. सिंह एवं कन्नौजिया। शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श । आलोक प्रकाशन, लखनऊ. ।

6. Burt. C. The Historical Development of the Child Guidance Movement in Education. 1955.

इकाई 6 व्यावसायिक निर्देशन

संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 निर्देशन सेवाओं में व्यावसायिक निर्देशन

6.4 व्यायवसायिक निर्देशन के मूल प्रत्यय

6.5 व्यावसायिक निर्देशन की परिभाषा

6.6 व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र

6.7 व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्य

6.8 व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता

6.9 व्यवसाय चयन के विचारणीय बिन्दु

6.10 व्यासायिक निर्देशन देने की विधि

6.11 भारत में व्यवसाय सम्बन्धी सूचनायें

6.12 सारांश

6.13 चर्चा के बिन्दु

6.14 अभ्यास कार्य

6.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.1 प्रस्तावना

प्राचीन काल में निर्देशन अनुभवी व्यक्तियों के सुझावों तथा उनके मार्गदर्शन पर आधारित था। कभी–कभी व्यक्ति स्वयं भी व्यवसाय की कार्य–पद्धति का अवलोकन करके अपना मार्ग निर्धारित करता था। कालान्तर में समाज के स्वरूप, उसकी संरचना तथा व्यवस्था में अनेक परिवर्तन हुए। मनुष्य की आवश्यकतायें बहुल और विषम हुई, जनसंख्या में वृद्धि हुई, माँग और पूर्ति की समस्या शनैः–शनैः जटिलतर हुई। इन सबके परिणामस्वरूप निर्देशन एक सुव्यवस्थित विज्ञान एवं सुसंयत शास्त्र के रूप में हमारे समक्ष है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि

- व्यावसायिक निर्देशन के मूल प्रत्ययों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- व्यावसायिक निर्देशन की परिभाषा कर सकेंगे।
- व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र को स्पष्ट कर सकेंगे।

- व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.3 निर्देशन सेवाओं में व्यावसायिक निर्देशन

आज निर्देशन की सेवाओं का विविध क्षेत्रों में अनेकानेक ढंग से प्रयोग किया जा रहा है। आम जीवन में बढ़ती कठिनाइयों ने कुसमायोजन को जन्म दिया और विविध प्रकार की समस्याओं ने अनेक प्रकार की निर्देशन सेवाओं को जन्म दिया जिन्हें नीचे व.र्णित किया जा रहा है–

निर्देशन का वर्गीकरण

सामान्यतः निर्देशन के वर्गीकरण का आधार मनुष्य की समस्याएँ, आवश्यकताएँ, योग्यताएँ, रूचियाँ व अभिरूचियाँ होती हैं। क्रैमर ने निर्देशन के वर्गीकरण के निम्नलिखित आधार बताए हैं–

1. व्यक्ति में निहित आंतरिक योग्यताएं एवं क्षमताएँ।
2. विद्यमान परिस्थितियाँ।
3. व्यक्तित्व संरचना एवं वैयक्तिक अभिप्रेरणा।
4. व्यक्ति का विकास एवं व्यावसायिक विकल्प।
5. किसी कार्य के सम्पन्न किये जाने के अवसर पर ली जाने वाली निर्णय क्षमता।
6. परिष्कार तथा अनुकूलीकरण।

इन आधारों पर विभिन्न विद्वानों ने निर्देशन के विभिन्न प्रकार बताए हैं–

1. प्रॉक्टर द्वारा दिया गया वर्गीकरण–विलियम मार्टिन प्रॉक्टर ने सन् 1980 में अपनी पुस्तक 'शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन' में निर्देशन के छह प्रकारों का वर्णन किया है–

1. शैक्षिक निर्देशन
2. व्यावसायिक निर्देशन
3. सामाजिक एवं नागरिक कार्यों में निर्देशन
4. चरित्र निर्माण से सम्बन्धित कार्यों में निर्देशन
5. अवकाश के समय का उत्तम उपयोग करने के लिए निर्देशन
6. स्वास्थ्य एवं शारीरिक समस्याओं से सम्बन्धित निर्देशन

2. ब्रीवर का वर्गीकरण–जॉन एम0 ब्रीवर ने अपनी पुस्तक 'शिक्षा निर्देशन है' में निर्देशन के निम्नलिखित दस प्रकार बताए हैं–

1. शैक्षिक निर्देशन
2. व्यावसायिक निर्देशन
3. धार्मिक निर्देशन
4. घरेलू समस्याओं में निर्देशन

5. नागरिकता के लिए निर्देशन
6. अवकाश एवं मनोरंजन के लिए निर्देशन
7. उचित कार्य करने के लिए निर्देशन
8. व्यक्तिगत उन्नति सम्बन्धी निर्देशन
9. सहयोग एवं विचार सम्बन्धी निर्देशन
10. सांस्कृतिक कार्यो से सम्बद्ध निर्देशन

3. पैटरसन द्वारा दिया गया वर्गीकरण–पैटरसन ने निर्देशन के पाँच प्रकारों का उल्लेख किया है–

1. शैक्षिक निर्देशन
2. व्यावसायिक निर्देशन
3. व्यक्तिगत निर्देशन
4. स्वास्थ्य निर्देशन
5. आर्थिक निर्देशन

4. कूफ एवं कीफोवर का वर्गीकरण–

1. शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन
2. व्यवसाय सम्बन्धी निर्देशन
3. मनोरंजन सम्बन्धी निर्देशन
4. स्वास्थ्य सम्बन्धी निर्देशन
5. नागरिक, सामाजिक तथा नैतिक निर्देशन

5. जोन्स का वर्गीकरण–आर्थर जे0 जोन्स ने अपनी पुस्तक 'निर्देशन के सिद्धान्त' में निर्देशन के छह प्रकारों का उल्लेख किया है–

1. व्यावसायिक निर्देशन
2. विषय, पाठ्यक्रम तथा स्कूल निर्देशन
3. नागरिक तथा नैतिक निर्देशन
4. सामाजिक निर्देशन
5. अवकाश का समय तथा व्यावसायिक निर्देशन
6. नेतृत्व निर्देशन

अतः विभिन्न विद्वानों द्वारा किये गये उपरोक्त वर्गीकरणों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि शैक्षिक एवं व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत निर्देश ही अधिक महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि सामाजिक, मनोरंजनात्मक एवं अवकाश संबंधी निर्देशन को भी सम्मिलित किया जाता है। इस इकाई में हम व्यावसायिक निर्देशन के बारे में पढ़ेंगे।

बोध प्रश्न–

1. जोन्स ने अपनी किस पुस्तक में निर्देशन के प्रकारों की चर्चा की हैं?

   ....

2. पैटरसन ने निर्देशन के कुल कितने प्रकार बताए हैं?

   ....

6.4 व्यावसायिक निर्देशन के मूल प्रत्यय

यूरोप तथा पश्चिम के अन्य देशों में औद्योगिक क्रान्ति के कारण भौतिकता की लहर समग्र विश्व में दौड़ गयी। अमेरिका जैसे सुविकसित महादेश ने प्रयोजनवादी दर्शन अपनाया जिसके कारण उसके सम्मुख मुख्य समस्या राष्ट्र की सम्पत्ति के पूर्ण उपभोग की हुई। किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए आवश्यक है कि उसकी मानवीय एवं प्राकृतिक पूँजी का पूर्णतः सदुपयोग किया जाय। अतः प्रत्येक बालक एवं बालिका की बौद्धिक एवं शारीरिक शक्ति का अन्वेषण करके उसे उचित दिशा में ले जाना राष्ट्र का महान् दायित्व बन जाता है क्योंकि सूझ–बूझ, ज्ञान तथा उचित निर्देशन के अभाव में बहुधा व्यक्ति ऐसे व्यवसाय पकड़ लेता है जिसमें न तो वह अपनी सर्वोत्तम शक्ति लगाकर अधिकतम उत्पादन कर पाता है और न अपना विकास ही कर पाता है। व्यवसाय की उत्पादकता पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः मनुष्य की शारीरिक एवं बौद्धिक शक्ति के संरक्षण एवं सदुपयोग के लिये तथा व्यवसायों में अधिकतम उत्पादन के लिए व्यावसायिक निर्देशन आवश्यक है।

जिस प्रकार मानव में व्यक्तिगत भिन्नता पायी जाती है और एक व्यक्ति दूसरे से भिन्न होता है, उसी प्रकार व्यवसायों में भी भिन्नता पायी जाती है। एक व्यवसाय दूसरे व्यवसाय से अपनी प्रकृति, माँग और अपेक्षा में भिन्न होता है। इसी मनुष्यगत एवं व्यवसायगत भिन्नता पर व्यावसायिक निर्देशन की आधारशिला रखी हुई है।

वर्तमान शताब्दी में मनोविज्ञान का साहित्य बहुत ही तीव्रगति से समृद्ध हुआ है। मनोविज्ञान के प्रायः सभी शोधों, प्रयोगों तथा अनुसधानों का बाहुल्य हो गया है। व्यक्तिगत भेद के सिद्धान्त का प्रतिपादन इसी युग की देन है। प्रत्येक व्यक्ति बौद्धिक क्षमता, रूझान, अभिरूचि तथा अन्य मानसिक शक्तियाँ लेकर जन्म लेता है जो दूसरे व्यक्ति की शक्तियों से भिन्न होती है। यही नहीं, अपनी इस जन्मजात पूँजी में परिवर्तन भी प्रत्येक व्यक्ति अपने ढंग से करता है। अतः दो व्यक्ति सर्वथा समान नहीं होते। व्यावसायिक निर्देशन के सम्पूर्ण कार्यक्रम का यही आरम्भ बिन्दू है। निर्देशन के पूर्व सर्वप्रथम व्यक्ति की बुद्धिलब्धि, रूचि, रूझान, दृष्टिकोण तथा उसके सामान्य व्यक्तित्व का अध्ययन कर लेना आवश्यक होता है। सारांशतः यह जान लेना होता है कि व्यक्ति क्या है, उसकी जन्मजात शक्तियाँ क्या हैं, उसके दायित्व क्या हैं और उसकी पूँजी क्या है।

मानव के प्रति दार्शनिक दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आ चुका है। अब मनुष्य को कार्य, व्यवसाय एवं सम्पत्ति के परिवेश में आंका जाता है। समाज उसे उपादेयता की दृष्टि से देखता है। उपादेयता विहीन व्यक्ति समाज पर बोझ है, परोपजीवी है। व्यवसायों के क्षेत्र में अनेक प्रकार के विशिष्टीकरण के कारण समृद्धि आ चुकी है, उनमें भेद–उपभेद हो चुके हैं, और कितने व्यवसायों ने तो सर्वथा नये रूप से जन्म ले लिया

है। अतः उपयुक्त व्यक्ति को उपयुक्त कार्य में लगाने के लिए व्यवसायों का विशद अध्ययन वांछित है। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जिसके विषय में कोई पूर्व कथन सरलता से नहीं किया जा सकता। रूचि, रूझान, संवेग, स्थायी भाव आदि उसके व्यक्तित्व के प्रमुख निर्धारण तत्व होते हैं। अतः व्यक्ति का सुनियोजित अध्ययन एक कठिन कार्य हो जाता है। मनुष्य के विषय में समुचित जानकारी के लिए एक सुव्यवस्थित प्रक्रिया का अनुसरण आवश्यक है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि व्यक्ति एवं व्यवसाय निर्देशन रूपी तराजू के दो पलड़े हैं जिनमें सामंजस्य स्थापित करना व्यावसायिक निर्देशक का प्रमुख कार्य है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

3. व्यावसायिक निर्देशन क्या है ?

....

4. व्यावसायिक निर्देशन क्यों आवश्यक है ?

....

6.5 व्यावसायिक निर्देशन की परिभाषा

''व्यावसायिक निर्देशन के सिद्धान्त एवं तकनीक'' नामक पुस्तक के सुप्रसिद्ध लेखक **ई0 डब्ल्यू0 मायर्स** ने उक्त पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर व्यावसायिक निर्देशन के समारम्भ का विवरण देते हुए लिखा है कि 'निर्देशन' शब्द के साथ जिनते विश्लेषण जोड़े गये उनमें सर्वप्रथम 'व्यावसायिक' शब्द ही था। 1 मई सन् 1809 ई0 को बोस्टन के व्यावसायिक संस्थान के संचालक फ्रैंक पार्सन्स के लेख में ''व्यावसायिक निर्देशन'' जैसी युक्ति प्रथम बार देखने को मिली। साथ ही निर्देशन सम्बन्धी अन्य विचार पद्धतियों का विकास भी आरम्भ हो गया था। फलस्वरूप व्यावसायिक निर्देशन के अतिरिक्त शैक्षिक निर्देशन, नैतिक निर्देशन तथा स्वास्थ्य–निर्देशन सम्बन्धी विचारधारायें पृथक रूप से प्रयोग में आने लगीं। सन् 1921 ई0 में ''नेशनल वोकेशनल गाइडेन्स एसोशियेशन'' ने व्यावसायिक निर्देशन की एक सुव्यवस्थित परिभाषा देने का प्रयास किया जिसे सन् 1924 ई0 में संशोधित कर दिया गया। संशोधित परिभाषा के अनुसार ''किसी भी व्यवसाय के चयन, प्रशिक्षण, उसमें प्रवेश और विकास के हेतु उपयुक्त परामर्श, अनुभव तथा सूचना प्रदान करना ही व्यावसायिक निर्देशन है।'' किन्तु इस परिभाषा को यथातथ्य स्वीकार नहीं किया गया और इसमें परिवर्तन किये जाते रहे। लगभग पन्द्रह वर्षो के सुविचारित प्रयास के उपरान्त इसी संस्थान ने व्यावसायिक निर्देशन को पुनः नवीन रूप से परिभाषित किया जिसके अनुसार ''व्यावसायिक निर्देशन किसी भी व्यक्ति को व्यवसाय चुनने, उसके लिए तैयारी करने, उसमें प्रवेश करने तथा दक्षता प्राप्त करने में सहायता प्रदान करने की प्रक्रिया है।''

प्रस्तुत परिभाषा के विषय में कुछ बातें विचारणीय हैं। सर्वप्रथम, यह परिभाषा किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं दी गयी है, प्रत्युत् एक संस्थान द्वारा धैर्य एवं विवेक से

निर्धारित की गयी है, अतः अधिक विश्वसनीय है। साथ ही यह परिभाषा सन् 1924 ई0 में दी गयी परिभाषा से मूलतः भिन्न भी है।

प्रथम परिभाषा में मुख्य बल 'व्यवसाय का चुनाव करने के लिए सूचना', अनुभव तथा परामर्श प्रदान करने पर है जिससे स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण दायित्व व्यावसायिक निर्देशक पर ही है। प्रत्याशी को स्वयं कोई भी उपक्रम करने की आवश्यकता नहीं है। इसके प्रतिकूल दूसरी परिभाषा का बल व्यावसायिक निर्देशक की ओर से सहायता मात्र प्रदान करने से है ताकि व्यक्ति स्वयं अपने लिये "व्यवसाय चुनने" का प्रयास कर सकें। इस प्रकार व्यावसायिक निर्देशन पहली परिभाषा में जहाँ व्यक्ति को एक तटस्थ प्रतीक्षार्थी बना देता है वही दूसरी परिभाषा में उसे सम्पूर्ण प्रक्रिया में भागीदार बना देता है। निर्देशक के इंगित पर प्रत्याशी सक्रिय रूप से कर्मशील हो जाता है और अपने को सम्पूर्ण कार्य पद्धति का एक अंग मानने लगता है। किसी विद्वान ने उभय परिभाषाओं के अन्तर को बड़ी ही निपुणता से व्यक्त किया है। प्रथम परिभाषा के अनुसार कहा जा सकता है कि निर्देशक प्रत्याशी, को पहले भलीभाँति समझता है, तत्पश्चात् व्यवसाय में उसे सफल बनाने का प्रयास करता है। अर्थात् को व्यवसाय में लगाने और उसे सफल बनाने का दायित्व निर्देशक उसी प्रकार इस कथन में भी ले लेता है जिस प्रकार उसने सन् 1924 ई0 की प्रथम परिभाषा में ली थी। प्रत्याशी को न तो यह चिन्ता है कि उसकी कार्यक्षमता, योग्यता और बुद्धि कितनी है, उसका रूझान किधर है और न उसे व्यवसाय ढूँढ़ने, स्वीकारने तथा उसमें सफलता प्राप्त करने की ही चिन्ता है। वह एक निष्क्रिय यंत्र की भाँति है, जिसे जहाँ भी नियुक्त कर दिया जाता है, वहाँ वह कार्यरत हो जाता है। प्रत्याशी सचेष्ट न होकर एक निश्चेष्ट प्राणी बन जाता है। परन्तु 1940 ई0 की परिभाषा के अनुकूल व्यक्त करने पर उपर्युक्त कथन का स्वरूप बदल गया जिसमें निर्देशक का दायित्व प्रत्याशी को इस प्रकार सहायता प्रदान करना है कि वह अपना आत्म विश्लेषण स्वयं कर सके और व्यवसाय चुन कर उसमें सफलता प्राप्त करने का प्रयास भी स्वयं ही करे। इस दूसरी परिभाषा में निर्देशक प्रत्याशी को उन समस्त साधनों, तकनीकों तथा आँकड़ों के संग्रह एंव प्रयोग के लिए प्रेरित करता है जिनसे वह आत्म–विवेचन कर सके। वह यह भी समझ सके कि उसकी वास्तविक कार्यक्षमता कितनी है। तदुपरान्त वह उस व्यवसाय का अध्ययन करे जिसे उसने अपनी जीविका हेतु चुना है। निर्देशक का कार्य प्रत्याशी को उत्साहित करना, उसे व्यवसाय सम्बन्धी सामग्री उपलब्ध कराना और अनुपलब्ध सामग्री को सुलभ बनाने हेतु परामर्श देना है। इस प्रकार दूसरी परिभाषा में प्रत्याशी एक कर्मठ एव सचेष्ट व्यक्ति है जो निर्देशक की सहायता से अपने भावी मार्ग का निर्धारण स्वयं करता है। वह जो भी है, स्व–निर्मित है, परोपजीवी नहीं है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संक्षेप में व्यावसायिक निर्देशन वह सोपान है जिस पर खड़ा होकर व्यक्ति अपने भविष्य का मार्ग स्वयं ढूँढ़ता है।

व्यावसायिक निर्देशन के अध्यापक और अध्येता मुख्यतया द्वितीय परिभाषा को मान्यता देते हैं, किन्तु अन्य विचारकों द्वारा भी व्यावसायिक निर्देशन की परिभाषायें दी गयी हैं जिन पर यहाँ विचार करना असंगत न होगा। 'सुपर' ने अपनी पुस्तक में व्यावसायिक निर्देशन की परिभाषा देते हुए कहा कि व्यावसायिक निर्देशन का प्रधान लक्ष्य "व्यक्ति को इस योग्य बनाना है कि वह अपने व्यवसाय से उचित समायोजन स्थापित कर सके, अपनी शक्ति का प्रभावशाली ढंग से उपयोग कर सके तथा उपलब्ध ा सुविधाओं से समाज का आर्थिक विकास करने में सक्षम हो सकें।" यहाँ लेखक ने व्यावसायिक निर्देशन का एकांगी दृष्टिकोण लिया है। व्यक्तिगत भेद तथा व्यावसायिक

वैषम्य जैसी जटिल समस्याओं पर विचार नहीं किया गया। इससे स्पष्ट होता है कि व्यक्तिगत भेद तथा व्यावसायिक निर्देशन का कार्य मात्र जैसे–तैसे व्यक्ति को किसी कार्य में लगा देना है। जिस प्रकार अर्थशास्त्री देश की सम्पत्ति का पूर्ण उपभोग अपना लक्ष्य मानता है, उसी प्रकार सुपर ने भी मानवीय शक्ति का सीधा–सादा उपयोग ही व्यावसायिक निर्देशन का लक्ष्य माना है। इसके प्रतिकूल व्यावसायिक निर्देशन एक जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है जिसका समापन व्यवसायरत हो जाने पर ही नहीं हो जाता।

सन् 1949 ई0 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने व्यावसायिक निर्देशन की परिभाषा प्रस्तुत करने हुए लिखा है कि 'व्यावसायिक निर्देशन किसी व्यक्ति को उसकी व्यवसाय–चयन सम्बन्धी समस्याओं के समाधान तथा उसकी समृद्धि हेतु दी गयी सहायता है जो उसके व्यावसायिक सुअवसरों सम्बन्धी क्षमताओं को ध्यान में रख कर दी जाती है।'' प्रस्तुत परिभाषा आधुनिक होते हुए भी उन अनेक प्रमुख गुणों का अपने में समावेश नहीं करती जो वस्तुतः व्यावसायिक निर्देशन में है। व्यावसायिक निर्देशन एक जीवन्त प्रक्रिया है। उसका सम्बन्ध चैतन्य मानव से है। जिस प्रकार एक नदी अपनी सहायक नदियों से जल लेकर विकसित होती जाती है और अन्त तक एक बड़ी नदी बन जाती है, उसी प्रकार व्यावसायिक निर्देशन भी निर्देशक, नियोजन, स्वामी तथा अभिभावक के सहयोग से एक पुष्ट, जीवन्त तथा विशाल प्रक्रिया बन जाता है। संक्षेप में, व्यावसायिक निर्देशन का प्रश्न उठते ही निर्देशक के सम्मुख एक विशाल एवं जटिल प्रक्रिया खड़ी हो जाती है। एक ओर व्यक्ति और दूसरी ओर व्यवसाय के अध्ययन से ही निर्देशक आगे बढ़ता है। व्यावसायिक निर्देशन का विशद विवेचन करने के उपरान्त मायर्स ने समाहार रूप में कहा है कि ''व्यावसायिक निर्देशन व्यक्ति की जन्मजात शक्तियों तथा विद्यालयों में प्रदत्त प्रशिक्षण से अर्जित बहुमुल्य क्षमताओं को संरक्षित रखने का एक मूल प्रयास है। इस संरक्षण हेतु वह व्यक्ति को उन सभी साधनों से सम्पन्न करता है जिनसे वह अपनी तथा समाज की तुष्टि के लिए अपनी उच्चतम शक्तियों का अन्वेषण कर सकें''।

व्यावसायिक निर्देशन व्यक्ति, व्यवसाय तथा सेवा–नियोजन के मध्य उपयुक्त गठबन्धन कराने की प्रक्रिया है जिसमें निर्देशक एक सक्रिय घटक रहता है। वह देखता है कि व्यक्ति और व्यवसाय के मध्य सम्बन्ध सुखमय हों और दोनों का समायोजन सन्तोषजनक हो।

व्यावसायिक निर्देशन वह निर्देशन है जो व्यक्ति को मुख्यतः व्यावसायिक समस्याओं के सम्बन्ध में दिया जाता है। व्यक्ति और उसकी समस्याओं को एक–दूसरे से पृथक करना सम्भव नहीं। अतः व्यावसायिक निर्देशन किसी व्यक्ति के शैक्षिक, नैतिक एवं सामाजिक पक्षों को भी पृथक नहीं कर सकता। वास्तव में व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया व्यक्तित्व के समन्वित एवं उपयुक्त विकास में सहायता देती है। व्यावसायिक निर्देशन का लक्ष्य किसी व्यक्ति को इस उद्देश्य से सहायता प्रदान करना है कि वह अपना एक समन्वित एवं सच्चा चित्र विकसित कर सके और उसे समझ सके, व्यवसाय जगत के यथार्थिक धरातल पर अपनी उक्त अवधारणा को परख सके और आत्म संतोष एवं समाज के हित में अपनी अवधारणा को वास्तविक रूप दे सकें। इस परिभाषा का महत्वपूर्ण आधार यह है कि व्यावसायिक निर्देशन व्यक्ति के पूर्ण विकास का अभिन्न अंग है और व्यक्ति का व्यावसायिक विकास उसके व्यक्तित्व के विकास में सहायक होता है। इस प्रकार व्यावसायिक निर्देशन व्यक्ति के विकास और उसके

स्व–प्रत्यय (Self-concept) के विकास में सहायता की प्रक्रिया है। इससे एक ऐसे व्यावसायिक स्व–प्रत्यय (Vocational Self-Concept) का विकास होता है जो व्यक्ति के स्व–प्रत्यय की व्यवस्था के अनुरूप हो। इस प्रत्यय के अधिक से अधिक विकास में सहायता प्रदान करना निर्देशन का कार्य है। बौद्धिक तथा भावात्मक दृष्टिकोण से व्यावसायिके अवधारणा को स्वीकार करने में व्यक्ति को सहायता प्रदान करना व्यावसायिक निर्देशन का कार्य है। व्यावसाय का निर्देशन की आधुनिक अवधारणा यही है। **"मार्गरेट बनेट"** के अनुसार "मानव के विकास तथा उसके उपजीविकीय जीवन के क्षेत्र में अनुसंधानों ने व्यावसायिक निर्देशन को समझने की दिशा में नये क्षितिज खोल दिये है। किसी भी उपजीविका के चयन, उसके प्रवेश तथा समायोजन के निमित्त मानव व्यक्तित्व सम्बन्धी आवश्यकताभों और व्यवसायों की आवश्यकताओं के अध्ययन की पुरानी अवधारणा भी अब बदल रही है और व्यावसायिक निर्देशन एक ऐसे कार्य के रूप में उभर रहा है जो यह बताये कि व्यक्ति अपने समन्वित व्यक्तित्व को किस प्रकार संवारे कि उसे आत्मबोध हो सके और वह समाज के कल्याण में सहायता प्रदान कर सके।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यावसायिक निर्देशन की धारणा तथा विधि में क्रमशः परिवर्तन तथा विकास होता रहा है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

5. "नेशनल वोकेशनल गाइडेन्स एसोशियेशन" ने व्यावसायिक निर्देशन की क्या परिभाषा दी है?

....

6.6 व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र

व्यावसायिक निर्देशन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है क्योंकि इसके अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत व्यक्ति और व्यवसाय प्रमुख रूप से आते हैं। व्यक्ति (मनुष्य) के अध्ययन के सम्बन्ध में मानव सम्बन्धी सभी शास्त्रों का सम्पर्क व्यावसायिक निर्देशन से होता है। मनुष्य की व्यवसाय के प्रति विभिन्न रूचियों, दृष्टिकोणों, मनोभावों, बुद्धि तथा योग्यता का ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्यावसायिक निर्देशन मनोविज्ञान से सम्पर्क स्थापित करता है। मनुष्य के मनोभाव और उसकी जीवन पद्धति का कोई न कोई दार्शनिक आधार होता है। व्यावसायिक निर्देशन मनुष्य की प्रकृति, उसका स्वभाव और व्यक्तित्व पहचानने के लिए दर्शनशास्त्र का सहारा लेता है। दर्शनशास्त्र की आधारशिला पर ही मानवीय विज्ञानों एवं शास्त्रों का प्रासाद खड़ा है। इसलिए व्यावसायिक निर्देशन तथा दर्शनशास्त्र का सम्बन्ध घनिष्ठ है। अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र तथा शिक्षा शास्त्र जैसे विषय भी व्यावसायिक निर्देशन के अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत आते है क्योंकि मानव जीवन से इन शास्त्रों का निकट का सम्बन्ध है।

जहाँ तक व्यवसाय का प्रश्न है, इसका अध्ययन व्यावसायिक निर्देशन विज्ञान के माध्यम से करता है। विभिन्न व्यवसायों के विश्लेषण, उनकी अपेक्षाओं तथा माँगों के निराकरण के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता पड़ती है। इन पाठ्यक्रमीय

विषयों के अतिरिक्त व्यावसायिक निर्देशन का सम्बन्ध अनेक पाठ्येत्र क्रियाओं से भी होता है यथा पत्रकारिता, पुस्तकालय, वाद–विवाद, चलचित्र आदि। इन सबका उपयोग व्यावसायिक निर्देशक प्रत्याशी को व्यावसायिक सूचना प्रदान करने में करता है। अतः हम देखते हैं कि व्यावसायिक निर्देशन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है।

6.7 व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्य

मूल रूप से व्यावसायिक निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति को उपयुक्त व्यवसाय में लगने के लिए सहायता प्रदान करना है। इसी प्रकार किसी व्यवसाय के लिए उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप उपयुक्त व्यक्ति को ढूँढ़ना भी व्यावसायिक निर्देशन का कार्य है। किन्तु जोन्स ने व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्यों की सूची निम्नलिखित प्रकार से दी है–

1. विद्यार्थी को उन व्यवसाय समूहों की विशेषताओं, कार्यों, कर्त्तव्यों और पुरस्कारों से अवगत कराना जिनमें से उसे अपने व्यवसाय का चयन करना है।
2. उसे यह पता लगाने में सहायता देना कि विचाराधीन व्यवसाय समूह के लिए किन विशिष्ट योग्यताओं तथा चातुर्यो की आवश्यकता है और उक्त व्यवसाय में प्रवेशार्थ कितनी उम्र, कितनी तैयारी और किस लिंग (पुरूष अथवा स्त्री) की अपेक्षा है।
3. विद्यालय के भीतर तथा बाहर विद्यार्थी को ऐसे अनुभव प्राप्त कराना जिनसे उसे ऐसी सूचना मिले कि किसी व्यवसाय की क्या परिस्थितियाँ हैं जिनके योग्य उसे अपने को बनाना है।
4. व्यक्ति को ऐसे दृष्टिकोण के विकास में सहायता प्रदान करना कि सभी ईमानदारी का परिश्रम उत्तम है और किसी भी व्यवसाय के चयन के प्रमुख आध ार निम्न हैं–

(क) व्यक्ति समाज की क्या सेवा कर सकता है ?

(ख) व्यवसाय में उसे कितनी संतुष्टि मिलती है ?

(ग) व्यवसाय के लिए किस प्रकार के दृष्टिकोण की अपेक्षा होती है ?

5. व्यक्ति को व्यावसायिक सूचना के विश्लेषण की विधि से परिचित होने में सहायता प्रदान करना तथा व्यवसाय के चयन सम्बन्धी अन्तिम निर्णय लेने के पूर्व इन सूचनाओं का विश्लेषण करने की आदत का विकास करना।
6. ऐसी सहायता प्रदान करना कि व्यक्ति अपनी विशिष्ट तथा व्यापक योग्यताओं, रूचियों तथा क्षमताओं के विषय में अपेक्षित जानकारी प्राप्त कर सकें।
7. आर्थिक दृष्टि से पिछड़े बालकों को विभिन्न प्रकार की आर्थिक सहायता प्रदान करना जिससे वे अपनी व्यावसायिक योजनाओं के अनुसार शिक्षा प्राप्त कर सकें।
8. विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं द्वारा प्रदत्त व्यावसायिक प्रशिक्षण के निमित्त अपेक्षित ध ान के विषय में जानकारी प्राप्त करने में सहायता प्रदान करना।
9. जिस व्यवसाय में व्यक्ति लगा है उससे समायोजन स्थापित करने, उसी व्यवसाय तथा अन्य व्यवसायों में लगे अन्य कार्यकर्ताओं से सम्बन्ध स्थापित करने में

सहायता प्रदान करना।

10. विद्यार्थियों को इस विषय में विश्वसनीय सूचनाएँ प्रदान करना कि अपने भाग्य जानने तथा सुधारने की विभिन्न अवैज्ञानिक विधियाँ, जैसे हस्तरेखा विज्ञान आदि कितनी अनुपयुक्त है तथा उनकी अपेक्षा विशेषज्ञों से परामर्श करके वैज्ञानिक विधियों का अनुसरण कितना लाभकर है।

क्रो0 तथा क्रो0 ने अपनी पुस्तक में व्यावसायिक निर्देशन के निम्न उद्देश्यों का उल्लेख किया है–

1. विद्यार्थी जिन व्यवसायों का चयन कर सकते हैं, उनके कार्य, कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्वों से अवगत कराना।
2. स्वयं अपनी योग्यताओं आदि का पता लगाने में विद्यार्थी की सहायता करना तथा विचाराधीन व्यवसाय से उनका सामन्जस्य स्थापित करना।
3. स्वयं अपने तथा समाज के हित की दृष्टि से विद्यार्थी की योग्यता तथा रूचियों का मूल्यांकन करना।
4. कार्य के प्रति ऐसे दृष्टिकोण के विकास में विद्यार्थी की सहायता करना कि वह जिस प्रकार के भी व्यवसाय में प्रवेश लेना चाहे, उसका मान बढ़ाए।
5. विद्यालय शिक्षण के विभिन्न क्षेत्रों में इस बात का अवसर प्रदान करना कि विद्यार्थी को विभिन्न प्रकार के कार्यों का अनुभव प्राप्त हो सकें।
6. विद्यार्थी को आलोचनात्मक दृष्टि से विभिन्न प्रकार के व्यवसाय पर विचार करने में सहायता प्रदान करना और प्राप्त व्यावसायिक सूचनाओं के विश्लेषण की विधि सिखाना।
7. मानसिक, शारीरिक तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए व्यक्तियों की सहायता प्रदान करना जो उनके तथा समाज के हित में सर्वोत्तम समायोजन स्थापित करने में सहायता दे।
8. विद्यार्थियों में शिक्षकों तथा अन्य निर्देशन कार्यकर्ताओं के प्रति विश्वास उत्पन्न करना जिससे वे उनसे अपनी समस्याओं पर विचार विमर्श करने में उत्साहित हों।
9. विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं द्वारा जो व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाता है उसके विषय में आवश्यक सूचनायें प्राप्त करने में विद्यार्थी की सहायता करना।
10. उच्चतर शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश की शर्तों, प्रशिक्षण की अवधि तथा व्यय आदि के विषय में सूचनायें प्रदान करना।
11. विद्यालय शिक्षण की अवधि में ऐसी सहायता देना कि व्यक्ति आगे चलकर अपने कार्य की परिस्थितियों तथा अन्य कार्यकर्ताओं से समायोजन स्थापित कर सके।
12. विद्यार्थी की सहायता करना कि वह कार्यकर्ताओं के मध्य अपना स्थान बना सकें।
13. कार्य में दक्षता प्राप्त करने के लिए दीर्घकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता के प्रति विद्यार्थी को सचेष्ट करना।
14. प्रत्येक विद्यार्थी को व्यावसायिक दक्षता प्राप्त करने की अवैज्ञानिक विधियों से सावधान करना।
15. यह अनुभव करने में शिक्षार्थी को सहायता प्रदान करना कि प्रयत्न द्वारा ही

सफलता प्राप्त हो सकती है और अपना कार्य योग्यता एवं ईमानदारी से करने में ही सन्तोष मिलता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

6. जोन्स के अनुसार व्यवसाय चयन के आधार कौन कौन से है?

....

7. मूल रुप में व्यावसायिक निर्देशन का क्या उद्देश्य है ?

....

6.8 व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता

व्यावसायिक निर्देशन के संघटन एवं संचालन का मूल आधार व्यक्ति तथा व्यवसाय के मध्य चलने वाली विषमता है। यदि सभी व्यक्ति अभिरूचि बुद्धि, व्यक्तित्व, प्रतिभा तथा क्षमता में समान होते तो यह समस्या ना उठती। इसके प्रतिकूल यदि सभी व्यवसाय अपनी माँग, कार्य पद्धति उपादेयता में समान होते तो भी व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता ना होती। व्यक्ति के अनुरूप व्यवसाय और व्यवसाय के अनुरूप व्यक्ति निश्चित करने की आवश्यकता है। व्यक्ति एवं समाज की आवश्यकताएँ प्रतिदिन नवीन होती जा रही है। आज हमारी आवश्यकताएँ सभी सीमाओं को लांघ चुकी है। समाज का जीवन आज विभिन्नता से परिपूर्ण है। इसके लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों की माँग है। जिसमें अपेक्षित प्रतिभा, क्षमता एवं बुद्धि हो। यह व्यवसायिक निर्देशन से सम्भव है। व्यवसायों की आवश्यकता ने विभिन्नता को जन्म दिया है। यह व्यक्ति क्रम, व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता को जन्म देता है। जिसके निम्न कारण है–

1. मानव शक्ति का उचित उपयोग
2. परिवार की परिवर्तनशील संरचना
3. उद्योग की परिस्थितियों में परिवर्तन
4. जनसंख्या में वृद्धि
5. शिक्षा की माँग में वृद्धि
6. जन्म–मृत्यु संख्या में परिवर्तन
7. धार्मिक व नैतिक आदर्शों में परिवर्तन
8. परिवर्तित शिक्षा दर्शन
9. अवकाश का सदुपयोग

1. मानव की मूलभूत आवश्यकता–सर आर्थर जोन्स ने अपनी पुस्तक में एक

उदाहरण देते हुए एक संकेत दिया कि सुअवसर एवं उचित निर्देशन ना मिलने के कारण मिल्टन और क्रामवेल गॉव में लुप्त हो गये। इस वाक्य से ही स्पष्ट है कि निर्देशन की आधारशिला मानव शक्ति एवं मानव जीवन के संरक्षण पर निहित है। और इसकी आवश्यकता ही इसका प्रमुख आधार है।

2. परिवार की परिवर्तनशील संरचना—परिवार समाज का लघु रूप है। परिवर्तित समय के साथ शासन और परिवार की प्रकृति एवं आकार बदलता चला गया। आज से पहले विभिन्न व्यवसायों का प्रशिक्षण अनायास ही प्राप्त हो जाता था किन्तु अब व्यवसायों की अधिकता ने प्रशिक्षण को भी प्राप्त करना आसान नही रखा। अब शिक्षा के प्रचार–प्रसार ने अच्छा जीवन स्तर प्राप्त करना एवं क्षमता और रूचि के अनुसार व्यवसाय प्राप्त करने के रूझान को बढ़ावा दिया है। इससे उचित निर्देशन की आवश्यकता बढ़ी।

3. उद्योग की परिस्थितियों में परिवर्तन—स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश में औद्योगिक विकास बहुत ही तेजी से हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमारा देश भी अपनी पहुच बनाने के लिए विशिष्ट वस्तुओं के उत्पादन में रूचि दिखा रहा है। और इस प्रकार की प्रकृति ने श्रम में विशिष्ट प्रशिक्षण एवं दक्षता को अनिवार्य बना दिया है। विशिष्ट क्षमता, बुद्धि, धारणा एवं रूचि के व्यक्ति के खोज के लिए निर्देशन सेवा की आवश्यकता है।

4. जनसंख्या में वृद्धि—जनसंख्या वृद्धि ने विश्व के परिस्थितियों को विस्फोटक बना दिया। पहले जीवन बहुत की सरल–सहज, सादा एवं सीमित आवश्यकताओं वाला था। अब जनसंख्या वृद्धि के साथ लोगों को मूलभूत आवश्यकताएँ भी पूरी करने के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है। जिससे उसका पूरा जीवन संघर्षमय एवं भटकाव के साथ व्यतीत होने की सम्भावना रहती है। इससे आवश्यक निर्देशन की मॉग बढ़ी।

5. शिक्षा की मॉग में वृद्धि—स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सम्पूर्ण साक्षरता, सबके लिए शिक्षा एवं शिक्षा सार्वजनिकरण एवं सभी स्तरों पर शिक्षा को सर्वसुलभ बनाये जाने से शिक्षित लोगों के समूह में वृद्धि हुयी है और उन्हे आवश्यक व्यवसाय प्रदान करना व्यवसायिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बन गया।

6. जन्म–मृत्यु संख्या में परिवर्तन—पूरे विश्व में वैज्ञानिक खोजों ने मानव जीवन को सुविधा को परिपूर्ण कर दिया इससे मृत्यु संख्या घटी और जीवन आयु बढ़ी है इससे जनसंख्या में बेतहाशा वृद्धि हुई है। जनसंख्या वृद्धि ने व्यवसायिक खोजने और चाहने वाले व्यक्तियों की संख्या बढ़ा दी हैं। उनकी आवश्यकताओं की प्रत्यक्ष एवं परोक्ष पूर्ति नए व्यवसायों का जन्म होना भी सम्भव हो रहा है। इससे व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता बढ़ती जा रही हैं।

7. धार्मिक तथा नैतिक आदर्शो में परिवर्तन—हमारे देश की अनेक रूढ़िगत मान्यतायें थीं जिनका अब धीरे–धीरे विघटन हो रहा है। उदाहरण के लिए किसी उच्च जाति अथवा

वर्ग का व्यक्ति दर्जीगिरी अथवा जूते का व्यापार नहीं करता था। ब्राह्मण क्षत्रिय एवं कायस्थ हल ग्रहण नहीं करते थे, अतः कुछ ऐसे व्यवसाय थे जिन पर समाज के किसी विशिष्ट वर्ग का ही दबाव रहा करता था। किन्तु अब इन धारणाओं तथा पूर्वाग्रहों में शिथिलता आती जा रही है। अतः निर्देशन की आवश्यकता भी बढ़ती जा रही है।

8. परिवर्तित शिक्षा दर्शन–शिक्षा दर्शन में भी उत्तरोत्तर परिवर्तन होता जा रहा है। हमारे देश की शिक्षा तथा जीवन–दर्शन का आधार आदर्शवादी था। धर्म तथा नैतिकता ही इस देश की संस्कृति के प्राण हैं। किन्तु पाश्चात्य देशों के प्रयोजनवादी दर्शन तथा वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों के कारण भौतिकवादी दर्शन हमारी शिक्षा तथा जीवनशैली में शनैः–शनैः प्रवेश करते जा रहे हैं। अतः इस प्रकार व्यवसाय तथा जीविकोपार्जन का भी महत्व बढ़ता जा रहा है।

9. अवकाश का सदुपयोग–वैसे तो अन्य देशों मं भी यह समस्या हे कि अवकाश का सदुपयोग कैसे किया जाये। छात्र जीवन के अतिरिक्त भी उद्योग धन्धों में, कृषि में, सेवाओं में, सर्वत्र अवकाश की समस्या आ खड़ी होती है। हमारे देश में इसका विशेष महत्व है। हमारे देश के जलवायु में बहुत अधिक विविधता है जिसका प्रभाव जीवन शैली एवं शरीर तथा मन पर भी पड़ता है। अवकाश के समय में भी उपयोगी कार्य किये जा सके इसके लिए व्यवसायिक निर्देशन की नितान्त आवश्यकता प्रतीत होती है।

कुछ विद्वान व्यसवसायिक निर्देशन की बढ़ती हुई आवश्यकता के लिए निम्न घटकों को उत्तरदायी मानते हैं–

1. समाज की परिवर्तनशील संरचना।
2. राजनीतिक परिवर्तन।
3. नगरीकरण।
4. पाश्चात्य देशों का प्रभाव।
5. विज्ञान तथा मानव शास्त्रों का विकास।
6. विशिष्टीकरण पर बल।

उपर्युक्त घटकों का संक्षिप्त विवेचन यहाँ समीचीन है।

1. **समाज की परिवर्तनशील संरचना**–समाजवादी समाज के गठन की ओर हमारा देश धीरे–धीरे बढ़ रहा है। धनी और निर्धन के बीच की खाई पटती जा रही हैं समाज का वह वर्ग जो कुछ दशकों पूर्व अपने को शासक मानता था और किसी भी प्रकार का व्यवसाय अपनाना या नौकरी करना हेय मानता था, वह भी अब व्यवसाय के क्षेत्र में उतर रहा है। इसी प्रकार सवर्णेतर जातियों के लोग जो किसी विशेष प्रकार के व्यवसाय अथवा नौकरियाँ करते थे, अब सभी व्यवसायों की ओर बढ़ रहे हैं। अतः व्यावसायिक निर्देशन के सम्मुख एक नयी चुनौती आ रही है।

2. **राजनीतिक परिवर्तन**–स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त देश में समाजवाद लाने के लिए राजनीतिक दल सामने आये जो पूँजीवाद तथा वर्गवाद के भी

समर्थक थे। परन्तु धीरे–धीरे जन–चेतना जाग्रत हुई और सभी राजनीतिक दलों तथा वर्गवाद के भी समर्थक थे। परन्तु धीरे–धीरे जन–चेतना जाग्रत हुई और सभी राजनीतिक दलों ने यह अनुभव किया कि देश के लिए समाजवादी व्यवस्था ही एक उपयुक्त व्यवस्था है। सम्प्रति देश में जो महानिर्वाचन हो रहे हैं, उस सम्बन्ध में विभिन्न राजनीतिक दलों ने अपने जो कार्यक्रम प्रकाशित किये है; उन सभी में श्रमिकों, मजदूरों, कर्मचारियों तथा किसानों के कल्याण की बात जोरदार शब्दों में कही गयी है। अतः स्पष्ट है कि व्यावसायिक निर्देशन का आयाम उत्तरोत्तर बढ़ रहा है।

3. **नगरीकरण**–नगरीकरण की भी समस्या देश के सम्मुख उपस्थित हो रही है। शिक्षित समुदाय गॉव छोड़कर नगरों की ओर खिसक रहा है। परिणामस्वरूप व्यवसायों पर बोझ बढ़ रहा है। इसके समाधान के लिए नये व्यवसायों का जन्म हो रहा है तथा नगरों में बसने वाले व्यक्तियों के लिए नये व्यवसाय उपलब्ध कराने की भी समस्या हो रही है।

4. **पाश्चात्य देशों का प्रभाव**–हमारे देश की जीवन पद्धति पर पाश्चात्य देशों का जो पदार्थवादी तथा भौतिकवादी प्रभाव पड़ा है उसकी चर्चा इसके पूर्व की जा चुकी है।

5. **विज्ञान तथा मानव–शास्त्रों का विकास**–नित्य नये आविष्कार तथा खोज विज्ञान एवं मानव शास्त्रों को अधिक समृद्ध बना रहे हैं। विज्ञान के क्षेत्र में अन्तरिक्ष यात्रा जैसे अनेक नवीन विज्ञानों का उदय अत्यन्त आधुनिक है। इसी प्रकार मानवशास्त्रों के क्षेत्र में ऐसे विचार सामने आ रहे हें जिनका नाम भी वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में किसी ने नहीं सुना था। अतः नवीन शास्त्रों तथा विज्ञानों के उदय से व्यावसायिक निर्देशन की सम्भावनाओं में भी वृद्धि हो गयी है।

6. **विशिष्टीकरण पर बल**–सभ्यता के विकास तथा आविष्कारों के फलस्वरूप व्यवसायों के विशिष्टीकरण को बल मिल रहा है। समाज व्यवसायों के स्थूल रूप से ही अब संतुष्ट नहीं है, वरन् वह उनके सूक्ष्म विवेचन में लगा है। किसी भी व्यवसाय के विशिष्ट पहलू पर शोध हो रहे हैं और फलस्वरूप नयी दिशायें सामने आ रही हैं। अतः विशिष्टीकरण के लिए विशेष प्रकार की प्रतिभाओं को खोजने की समस्या है। प्रतिभावान व्यक्तियों को उनकी रूचि तथा योग्यता के अनुरूप व्यवसाय खोजने की भी समस्या है।

जोन्स ने व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के संदर्भ में निम्न घटकों की चर्चा की है–

1. व्यवसायों में भिन्नता।
2. छात्रों के जीवन में स्थिरता का प्रश्न।
3. व्यक्तिगत भिन्नताएँ।

4. आर्थिक दृष्टिकोण।
5. स्वास्थ्य का दृष्टिकोण।
6. अरूचिकर व्यवसाय में व्यक्तित्व का ह्रास।
7. व्यक्तिगत एवं सामाजिक मूल्य।
8. मनवीय शक्तियों का उपर्युक्त प्रयोग।
9. परिवर्तनशील परिस्थितियाँ।

1. **व्यवसायों में विभिन्नता**—व्यवसायों में भिन्नता की चर्चा हम कर चुके हैं। पहले की अपेक्षा अब व्यवसायों की संख्या बहुत बढ़ गयी है। अतः युवकों को इन नवीन व्यवसायों से परिचित कराने तथा नये व्यवसायों के लिए अच्छे कर्मचारी खोजने के लिए व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता है।

2. **छात्रों के जीवन में स्थिरता का प्रश्न**—वर्तमान शिक्षा, जिसका सम्बन्ध यथार्थ जीवन से नहीं हैं विद्यार्थी को निराधार समाज में खड़ा कर देती है। अज्ञात वातावरण में समायोजन ढूंढ़ना उसके लिए समस्या बन जाती है। अतः यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों को छात्र–जीवन में ही व्यवसाय जगत का पर्याप्त ज्ञान करा दिया जाय ताकि विद्यार्थी–जीवन समाप्त होने के उपरान्त उनके जीवन में स्थिरता आ सके।

3. **व्यक्तिगत भिन्नताऐं**—व्यवसायगत भिन्नताओं के समान ही व्यक्ति में भी भिन्नतायें पायी जाती हैं। प्रत्येक व्यक्ति कार्य नहीं कर सकता। इसी प्रकार प्रत्येक कार्य के लिए प्रत्येक व्यक्ति भी योग्य नहीं होता। अतः प्रत्येक व्यक्ति को उसके योग्य कार्य का ज्ञान देने की आवश्यकता हैं।

4. **आर्थिक दृष्टिकोण**—उचित निर्देशन के अभाव में आज का शिक्षित युवक जो भी व्यवसाय पाता है, उसी में लग जाता है। इसके लिए उसकी आर्थिक परिस्थिति तथा बेकारी की समस्या उत्तरदायी होती और जिसमें वह मन लगाकर काम नहीं कर पाता। अतः शिक्षितों के लिए उचित व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता हैं।

5. **स्वास्थ्य का दृष्टिकोण**—स्वास्थ्य की दृष्टि से भी व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता होती है। अरूचिकर व्यवसाय का श्रमिक के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वह बिना उत्साह के कार्य करता है और अपने जीवन में नीरसता का अनुभव करता है। यदि व्यवसाय रूचिकर है तो श्रमिक प्रसन्नता और सन्तोष का अनुभव करता है जो उसके स्वास्थ्य के लिये सुखकर होता है।

6. **व्यक्तित्व का दमन**—अरूचिकर तथा उपयुक्त व्यवसाय में लग जाने पर व्यक्ति को आर्थिक हानि तो होती ही है, साथ ही उसके व्यक्तित्व का भी ह्रास होने लगता है। उसमें एक प्रकार की हीन–भावना समा जाती है और वह जीवन से धीरे–धीरे अन्यमनस्क होने लगता हैं व्यवसाय निर्देशन से ही व्यक्ति को उसके रूचि के अनुकूल व्यवसाय में डाला जा सकता है।

7. **व्यावसायिक निर्देशन के व्यक्तिगत तथा सामाजिक मूल्य**—उपयुक्त व्यवसाय वही है जहाू कर्मचारी अधिकतम सन्तोष, सुख, उत्साह तथा आशा

का अनुभव करता है। ऐसे व्यवसाय मूँ ही उसके व्यक्तित्व का विकास सम्भव है। मनुष्य का सामाजिक इकाई के रूप में मूल्य तभी है जब वह अधिकतम सामाजिक कल्याण करता है। वह हितैषी तभी माना जा सकता है जब वह संसार का अधिकतम भला कर सके। कोई भी व्यक्ति जीविका जगत से बाहर रहकर यह कार्य नहीं कर सकता और जीविका में उसकी सफलता तभी सम्भव है जब जीविका व्यक्ति के उपयुक्त हो। जब मनुष्य उपयुक्त कल्याणकारी कार्यो को सफलतापूर्वक करता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वह उपयुक्त व्यवसाय में नियुक्त है। यदि ऐसा नहीं है तो उसे व्यवसाय निर्देशन की आवश्यकता है।

8. **मानव शक्ति का उपयुक्त उपयोग**—मानव की छिपी हुई क्षमताओं को व्यवसाय के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है। प्रसिद्ध कवि ग्रे के शब्दों में अवसर न मिलने के अभाव में अनेक विभूतियाँ नष्ट हो गयी। उचित निर्देशन के माध्यम से व्यक्ति की प्रच्छत्र शक्तियों को सुविकसित किया जा सकता है।

9. **परिवर्तन परिस्थितियाँ**—सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के नित्यशः परिवर्तित होने के कारण व्यावसायिक—निर्देशन की आवश्यकता और बढ़ जाती है। परिवर्तन के कारण नये व्यवसाय जन्म लेते है और उनकी मॉगें नयी होती है और इन मॉगों और अपेक्षाओं के अनुकूल व्यक्ति खोजने के लिए व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता होती है।

व्यावसायिक निर्देशन की व्यापकता दिन—प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

प्रश्न—

टिप्पणी—क— नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख— इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

8. व्यवसायिक निर्देशन के प्रमुख कारणों में से औद्योगिकरण एवं भूमण्डलीकरण क्यों माने जाते है?

....

9. व्यावसायिक निर्देशन की मॉग दिन—प्रतिदिन क्यों बढ़ती जा रही है?

....

6.9 . व्यवसाय—चयन के विचारणीय बिन्दु

किसी भी व्यवसाय का चयन करते समय प्रत्येक व्यक्ति को सर्वप्रथम उस व्यवसाय का अध्यन करना आवश्यक है। इस अध्ययन हेतु कुछ सूचनाएँ प्राप्त की जाती हैं। कौन सी सूचनाएँ आवश्यक, कौन सी नहीं—इसका विस्तृत विवरण बहुत से विद्धानों ने विभिन्न प्रकार से किया है। परन्तु नीचे कुछ प्रमुख शीर्षक दिये गये हैं जिनके अनुसार एक व्यवसाय का अध्ययन करना सुविधाजनक रहता है। वैसे ये शीर्षक व्यवसाय तथा व्यक्ति के स्वभाव के अनुसार घटाये तथा बढ़ाये जा सकते हैं:

(1) व्यवसाय का महत्व–इसके अन्तर्गत हमें देखना चाहिए कि व्यवसाय का सामाजिक महत्व क्या है? इसमें कितने व्यक्ति रोजगार प्राप्त करते हैं? क्या व्यवसाय विकसित अवस्था में है या विकास की तरफ अग्रसर हो रहा है?

(2) कार्य का स्वभाव–दूसरे, यह देखना चाहिए कि कार्य किस प्रकार का है? मजदूर क्या कार्य करते है?

(3) कार्य की दशाएँ–यह भी देखना चाहिए कि मजदूरों या कर्मचारियों को किस प्रकार की परिस्थितियों में कार्य करना पड़ता है? क्या कार्य चहारदीवारी के अन्दर करना पड़ता है? क्या भ्रमण पर भी जाना पड़ता है? सफाई कैसी है? प्रकाश, हवा एवं पानी का क्या प्रबन्ध है? कितने घण्टे कार्य करना पड़ता है? इत्यादि बातों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

(4) व्यवसाय के लिए योग्यताएँ–व्यवसाय या कार्य किस प्रकार की योग्यता चाहता है–शारीरिक या मानसिक? यदि शारीरिक चाहता है तो क्या क्रिया समस्त शरीर से करनी पड़ेगी या शरीर के कुछ विशिष्ट अंगों से यथा–मुँह, आँख, हाथ आदि। यदि मानसिक है तो कितनी बुद्धि चाहिए? कितने संवेग चाहिए? कितना धैर्य, साहस, स्थिरता चाहिए? कैसा व्यक्तित्व चाहिए? इत्यादि तथ्यों को देखना चाहिए।

(5) वांछित प्रशिक्षण–इस बात का पता लगाना चाहिए कि अमुक व्यवसाय हेतु कितनी सामान्य शिक्षा तथा किस प्रकार के विशिष्ट व्यवसाय प्रशिक्षण की आवश्यकता है? यह प्रशिक्षण कितना खर्चीला है एवं कहाँ उपलब्ध है?

(6) उन्नति के अवसर–देखना चाहिए कि व्यवसाय में प्रवेश करने की क्या पद्धति है? कितनी आयु की जरूरत होती है? प्रति स्तर पर कितने दिन औसतन कार्य करना पड़ता है? किस प्रकार का निरीक्षण कार्य होता है? भविष्य में उन्नति के क्या अवसर हैं?

(7) वेतन–व्यवसाय में प्रारम्भिक वेतन क्या है? प्रति वर्ष कितनी वृद्धि होगी? अन्तिम वेतन क्या है? वेतन दैनिक दिया जाता है अथवा साप्ताहिक या मासिक? वेतन के अलावा अन्य सुविधायें; यथा–निःशुल्क चिकित्सा, मकान इत्यादि का भी पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

(8) व्यवसाय का इतिहास–व्यवसाय का अध्ययन करते समय व्यवसाय का संक्षिप्त इतिहास भी जानना अति आवश्यक हो जाता है। व्यवसाय के इतिहास के माध्यम से व्यवसाय का स्थापित एवं दीर्घता का बोध हो जाता है। इससे हमें यह ज्ञान होता है कि व्यवसाय उन्नति के पथ पर है या इसके विपरीत।

(9) अन्य कर्मचारीगणों को अध्ययन–यह अवश्य देखना चाहिए कि व्यवसाय में किस प्रकार के कर्मचारियों की संख्या अधिक है क्योंकि उन्हीं के साथ कार्य सम्पन्न करना पड़ेगा।

(10) सामान जिस पर कार्य करना है–किस प्रकार के समामन पर कार्य करना है,

इस बात को ध्यान में अवश्य रखना चाहिए क्योंकि कुछ सामान स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालता है तथा कुछ सामान अधिक जोखिमपूर्ण होता है।

(11) अनुभव वांछित–व्यवसाय कितना अनुभव चाहता है या बिना अनुभव के ही कार्य चल जायेगा? अनुभव कहाँ से प्राप्त किया जा सकता है? इत्यादि तंयि नजर में अवश्य रखने चाहिए।

(12) कार्य की नियमितता–क्या कार्य पूरी साल रहता है? कार्य चीनी कारखानों की भॉति वर्ष के कुछ ही महीने तो नहीं रहता है? इत्यादि तथ्य नजर में अवश्य रखने चाहिए।

(13) व्यवसाय का संगठन–देखना चाहिए कि व्यवसाय का संगठन कैसा हैं? क्या एकाधिकार व्यापार है? क्या एक मालिकाना व्यापार है? क्या साझेदारी व्यापार है? क्या संयुक्त स्कन्ध प्रमण्डल है? क्या सहकारी सिद्धान्तों पर तो आधारित नहीं? सहकारी है या प्राइवेट।

(14) नियुक्ति का स्थान–कार्य स्थान की जलवायु, भाषा, यातायात के साधन, खाद्य–सामग्री, स्वदेश से दूरी इत्यादि बातों का ध्यान रखना भी आवश्यक है।

6.10 व्यावसायिक निर्देशन देने की विधि

व्यावसायिक निर्देशन देते सम्य निर्देशन को दो तत्व सामने रखकर चलना पड़ता है : प्रथम–व्यवसाय के लिए वांछित योग्यताओं की सूची अर्थात् अमुक व्यवसाय के लिए किस स्तर के स्वास्थ्य की जरूरत पड़ती है, कितनी तथा किस प्रकार की बुद्धि की आवश्यकता होती है; किस प्रकार की अन्य क्षमताओं, रूचियों तथा अभिरूचियों, शिक्षा, अनुभव आदि की जरूरत होती है; द्वितीयतः–उस व्यक्ति में व्यवसाय के योग्य कितनी अनुकूलता है।

जहॉ तक व्यवसाय के अध्ययन की जरूरत है, इसके लिए पहले से ही एक सूची निर्धारित कर दी जाती है कि उसके लिए किस स्तर के स्वास्थ्य, बुद्धि, अनुभव, शिक्षा आदि की आवश्यकता होती है। प्रत्येक व्यवसाय के सम्बन्ध में प्रत्येक निर्देशन को इस प्रकार की सूचनाएँ तैयार रखनी चाहिए।

जहॉ तक व्यक्ति के अध्ययन का प्रश्न है, यह प्रश्न बड़ा जटिल है। व्यक्ति का अध्ययन बड़ी सावधानी से करना चाहिए। व्यक्ति के अध्ययन हेतु निम्न प्रणाली अपनायी जा सकती है।:

(अ) प्राथमिक साक्षात्कार

निर्देशक को सर्वप्रथम बालक का एक प्राथमिक साक्षात्कार करना चाहिए। इस साक्षात्कार के द्वारा निर्देशन बालक के सामाजिक तथा आर्थिक वातावरण का अध्ययन कर सकेगा। साथ ही साथ वह बालक के स्वास्थ्य, नेत्र–ज्योति, स्वर, श्रवण–शक्ति, उसका दिखावा उसके बाह्य सम्बन्ध आदि का ज्ञान सरलतापूर्वक प्राप्त कर सकता है।

सामान्य निर्देशन को इस साक्षात्कार में निम्नांकित तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए:

(1) बालक का नाम, (2) जन्म तिथ तथा आयु (3) माता–पिता के नाम जाति, धर्म, (4) माता–पिता का व्यवसाय, (5) अन्य भाई–बहिनों की संख्या, (6) भाई–बहिनों में उसका क्रम, (7) माता–पिता तथा भाई–बहिनों की संख्या, (8) परिवार की कुल आय, (9) आय के कुल साधन, (10) वंशानुक्रमिक रोग, (11) शारीरिक अस्वस्थता, (12) विद्यालय जिनमें शिक्षा प्राप्त की, (13) मित्र, (14) रूचिकर खेल, (15) हॉबीज (16) अन्य तथ्य।

(ब) बौद्धिक स्तर की माप

बालक के आर्थिक व सामाजिक वातावरण का ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् निर्देशन को चाहिए कि वह बालक के बौद्धिक स्तर का माप करें। निर्देशन में बौद्धिक स्तर का बड़ा महत्व है। कभी–कभी तो केवल बौद्धिक स्तर के आधार पर भी व्यक्तियों का श्रेणी–विभाजन करते हुए देखा जाता है। उदाहरण के लिए, हम बर्ट के श्रेणी–विभाजन को ले सकते हैं। वे कहते हैं कि 150 बुद्धि–लब्धि वाले अच्छे प्रशासक 130–150 बु0ल0 वाले अच्छे टेक्नीशियन, निम्न श्रेणी के अच्छे प्रशासक, 115–130 बु0 ल0 वाले अच्छे दक्ष श्रमिक होते हैं।

बुद्धि के सम्बन्ध में माप करते समय ध्यान रखना चाहिए कि बुद्धि के दो तत्व होते हैं–(1) सामान्य बुद्धि–तत्व तथा (2) विशिष्ट बुद्धि–तत्व। निर्देशक को दोनों ही तत्व की माप अनेक बुद्धि परीक्षणों द्वारा कर सकता है। इसके लिए निर्देशक को विभिन्न प्रकार के परीक्षणों का सहारा लेना चाहिए। उसे मौखिक बुद्धि–परीक्षण, सामूहिक बुद्धि–परीक्षण, शक्ति व गति परीक्षणों के अलावा क्रियात्मक परीक्षणों आदि सभी प्रकार के परीक्षणों की सहायता लेनी चाहिए। निर्देशक निम्नांकित परीक्षणों का प्रयोग कर सकता हैं–डॉ0 सोहन लाल का सामूहिक बुद्धि–परीक्षण।

विशिष्ट तत्वों की माप के लिए निर्देशक को निम्नलिखित विशिष्ट योग्यताओं की माप हेतु अलग–अलग से परीक्षण अपनाने चाहिए:

(1) यांत्रिक योग्यता–यांत्रिक योग्यता हेतु निर्देशक निम्न परीक्षण का प्रयोग कर सकता है

(i) Minnesota Mechenical Assembly Test

(ii) Detroit Mechenical Aptitude test

(iii) Paper and Pencil Test of Mechenical Aptitude

(iv) Stenquist test for Mechenical Aptitude

(v) O' Rourke Mechenical Aptitude Test

(2) **लिपिक योग्यता**– इसके लिए निम्नांकित परीक्षण प्रमुख हैं :

(i) Minnesota Vocational Test for Clercial Works

(ii) Thurstone Examination in Clerical Works

(iii) Centroit Clerical Aptitude Examination

(3) **संगीत योग्यता**–इसके लिए का नाम उल्लेखनीय है।

(4) कला–योग्यता– इसेक लिए का नाम उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार विभिन्न विशिष्ट योग्यताओं का माप करने के पष्चात् निर्देशक गेंस रूप से बालक की बुद्धि का पता लगा लेगा।

(स) व्यक्तित्व की माप–

बुद्धि के दोनों पहलुओं का माप करने के पश्चात् निर्देशक को बालक के व्यक्तित्व का माप करना चाहिए। व्यक्ति की माप किस प्रकार तथा किन परीक्षणों के द्वारा की जानी चाहिए, इसका उल्लेख आगे विस्तृत रूप से कर दिया गया है।

(द) रूचि की माप–

निर्देशक को निर्देशन कार्य के लिए बालक की रूचि का भी पता लगा लेना चाहिए। इसके लिए उनकी रूचि का माप करना चाहिए। रूचि की माप के विशय में आगे विस्तृत विवेचना की गई है।

इस प्रकार बालक का अध्ययन विभिन्न पहलुओं से करके एक निष्कर्ष निकालना चाहिए। यदि हम बालक की विभिन्न मापों को ग्राफ पर अंकित करें तो एक छवि बन जायेगी। इसे हम पार्श्व–चित्र कहते है। इसका एक काल्पनिक नमूना नीचे दिया गया है :

व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक पार्श्व–चित्र

1 बुद्धि के मौखिक परीक्षण

2. शब्द–भण्डार परीक्षण

3. भाटिया परफॉरमेन्स

4. संगीत परीक्षण

5. यांत्रिक परीक्षण

6. निश्पत्ति परीक्षण

7. चित्र निर्माण परीक्षण

8. सामूहिक बुद्धि–परीक्षण

9. व्यक्तित्व परीक्षण

10 शारीरिक क्षमता परीक्षण

11. स्थिरता परीक्षण

12. टरमन–मैरिल स्केल

व्यक्ति के इस पार्श्व चित्र की तुलना विभिन्न व्यवसायों के पार्श्व–चित्र से करनी चाहिए। जिस व्यवसाय के पार्श्व–चित्र के साथ पार्श्व–चित्र की सर्वाधिक अनुरूपता हो, समझना चाहिए कि व्यक्ति उसी व्यवसाय के सर्वाधिक उपयुक्त है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि कभी भी व्यक्ति तथा व्यवसाय पार्श्व–चित्र शत–प्रतिशत अनुरूप नहीं

होते हैं।

(य) अन्तिम साक्षात्कार

समस्त प्रकार के मापन के पश्चात् अन्त में पुनः एक साक्षात्कार करना चाहिए। इस साक्षात्कार के यदि निर्देशन की कोई शंका रह गई है, तो उसका समाधान करना चाहिए।

अपनी शंकाओं के समाधान, छात्र के सामाजिक व आर्थिक वातावरण तथा विभिन्न मापों के आधार पर अन्त में निर्देशक को अपना विवरण लिखकर प्रस्तुत करने चाहिए।

विद्यालय का दायित्व

निर्देशन क्षेत्र में विद्यालय का एक महत्वपूर्ण स्थान है। अच्छे प्रशासन हेतु यह आवश्यक है कि प्रधानाचार्य दायित्वशाली शासक हो, जिससे विद्यालय के सम्पूर्ण कार्य सुचारू रूप से सम्पन्न हो सकें। इस प्रकार निर्देशन सम्बन्धी समस्त कार्य चाहे वे केन्द्रीय सरकार द्वारा संचालित हों या राज्य सरकार द्वारा या किसी अन्य संस्था द्वारा, उसी समय सफलतापूर्वक सम्पन्न किये जा सकते हैं जब प्रधानाध्यापक योग्य शासक हो। बिना योग्य प्रधानाध्यापक के अच्छी अच्छी योजना भी सफल नहीं हो सकती है। समस्त संस्थाएँ प्रधानाध्यापक के अच्छी से अच्छी योजना भी सफल नहीं हो सकती है। समस्त संस्थाएँ प्रधानाध्यापक के माध्यम से ही कार्य करती हैं। इस प्रकार वही निर्देशन प्रोग्रामों का प्रमुख व्यक्ति है। अतः :सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि उनका निर्देशन में पूर्ण विष्वास हो तथा हृदय में इस प्रोग्राम को आश्रय देता है। निर्देशन हेतु वह स्कूल में उचित वातावरण बना सकता है, समस्त अध्यापक वर्ग को इस कार्यक्रम में भाग लेने को उत्साहित कर सकता है। परामर्शदाता के माध्यम से कार्यक्रम की सफलता ज्ञात कर सकता है तथा कमियों को दूर कर सकता है।

परन्तु यह समझ लेना कि अकेला प्रधानाध्यापक ही सब कुछ कर सकता है,. भूल होगी, क्योंकि कोई कार्यक्रम, चाहे वह निर्देशन हो या और कोई, उस समय तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि समस्त कर्मचारी सहयोग न दें। प्रधानाध्यापक निर्देशन योजना को लागू कर सकता है, उसे प्रकाषित कर सकता है परन्तु वास्तविक रूप से उसे कार्यान्वित अध्यागक वर्ग ही करता है। अतः निर्देशन प्रोग्राम में विद्यालय का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

विद्यालय–जीवन जीवन–निर्माण के लिए सबसे महत्वपूर्ण अवस्था है, अतः इस अवस्था में ही किसी भी प्रकार का परिवर्तन सम्भव है, बाद में नही। छात्रों में आवश्यक परिवर्तन, आवश्यक गुण एवं योग्यताएँ विद्यालय ही प्रदान कर सकता है।

विद्यालय में 'विविध पाठ्यक्रम' चलता है। छात्र अपनी योग्यता के अनुसार विषय–चयन नहीं कर सकता है। उसके विचार अन्य तथ्यों से भरे रहते हैं, जिनके आध ाार पर वह विषयों का चयन करता है। अतः उचित विषयों का चयन कराने में विद्यालय का महत्वपूर्ण दायित्व है।

विद्यालय छात्रों की व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान आसानी से कर सकते हैं। अन्य कोई भी संस्था ऐसा नहीं कर सकती है क्योंकि अपने कार्य–जीवन का अधिकांश समय छात्र स्कूल में ही व्यतीत करता है।

विद्यालय ही एक ऐसी संस्था है जो छात्र का अति निकट से अध्ययन करती है। वह उससे सम्बन्धित समस्त सूचनाएँ एकत्रित कर सकता है तथा छात्र के सम्बन्ध ा में पक्षपातरहित राय दे सकता है। इसके अलावा जन–साधारण का भी स्कूलों पर पूर्ण विश्वास होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यवसाय–निर्देशन में विद्यालय अत्यन्त महत्वपूर्ण योग दे सकते हैं।

विद्यालय में एक सफल व्यवसाय–निर्देशन सेवा योजना के हेतु मेयर्स ने निम्नांकित आठ सेवाओं का उल्लेख किया है :

1. व्यावसायिक सूचना सेवा
2. आत्म–विश्लेषण सेवा
3. व्यक्तिगत आँकड़े संकलन सेवा
4. परामर्शदाता सेवा
5. व्यवसाय तैयारी सेवा
6. नियुक्ति सेवा
7. समायोजन सेवा
8. अनुसन्धान सेवा

(1) व्यवसाय सूचना सेवा–इस सेवा द्वारा व्यवसाय से सम्बन्धित विभिन्न सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं। विद्यालय का यह काम हो जाता है कि वह विभिन्न व्यवसायों ने सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्र करें तथा छात्रों को उनसे अवगत करायें। इस सेवा द्वारा व्यवसाय का महत्व, कार्य का स्वभाव, कार्य हेतु योग्यता एवं प्रशिक्षण, कार्य की दशा एवं समय, उन्नति के अवसर, कार्य से सुविधा–असुविधा कार्य हेतु व्यक्तिगत क्षमताओं की आवश्यकता तथा इसी प्रकार की अन्य सूचनाएँ एकत्रित की जा सकती हैं इस प्रकार की सेवाएँ या तो विषय–अध्ययन का एक अंग हो सकती हैं अथवा इनसे अवगत कराने हेतु प्रथम प्रबन्ध किया जा सकता है। ये सूचनाएँ कई प्रकार से दी ज़ा सकती हैं :

1. पाठ्य–विषय के माध्यम से;
2. देशाटन एवं उद्योग के भ्रमण के माध्यम से
3. पुस्तकों के माध्यम से;
4. चित्रादि के माध्यम से;
5. फिल्म; स्लाइड्स इत्यादि के माध्यम से;
6. भाषण एवं वाद–विवाद के माध्यम से; और
7. रेडियों तथा टेलीविजन के माध्यम से।

अधिक महत्वपूर्ण होने के कारण इस सेवा के सम्बन्ध में आगे विस्तृत व्याख्या की गई है।

(2) आत्म–विश्लेषण सेवा–

इस सेवा में माध्यम से छात्र उन सूचनाओं को एकत्रित करते हैं जो उनकी योग्यताओं के अनुकूल होती हैं। उन सूचनाओं में छात्र उन्हीं सूचनाओं को सम्मिलित करते हैं जो उनकी योग्यता, क्षमता, रूचि, अभिरूचि, सीमा, व्यक्तिगत दायित्व के अनुरूप होती है। इस सेवा द्वारा छात्र को स्वयं का भी ज्ञान होता है। यदि छात्र किसी व्यवसाय को चुनता है तो उसे न केवल व्यवसाय ही, वरन् अपनी ज्ञात एवं अज्ञान शक्तियों का भी अध्ययन करना चाहिए। सुकरात का कहना कि 'अपने को देखो' एक महत्वपूर्ण कहावत है, एवं आत्म–विश्लेषण स्वयं को ज्ञात करने के अलावा और कुछ नहीं। अतः जीवन में सफलता प्राप्त करने हेतु आत्म–विश्लेषण सेवाएँ महत्वपूर्ण हैं।

(3) व्यक्तिगत आँकड़े संकलन सेवा–

इस प्रकार की सेवा का कार्य परामर्श सेवा को सहायता देना है। परामर्शदाता को यह आवश्यक है कि वह जिस व्यक्ति को परामर्श दे रहा है, उसके सम्बन्ध में समस्त सम्बन्धित आँकड़े एकत्र कर ले। परामर्शदाता व्यक्ति से सम्बन्धित किन–किन तथ्यों का अध्ययन करें, इसका संक्षिप्त विवरण ऊपरी सप्तसूत्री योजना में दे दिया है तथा विस्तृत विवरण अन्यत्र पृथक अध्याय में दिया है।

(4) परामर्श सेवा–

इस सेवा के माध्यम से छात्र अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं का मूल्यांकन एवं महत्व व्यवसाय के, जिसमें कि उसकी रूचि है, अवसर एवं वांछित योजनाओं के आधार पर कर सकता है। इसमें परामर्शदाता को छात्र की योग्यता व शक्तियों एव उसके लिए प्रस्तुत सुविधाओं तथा अवसरों का ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। इसके सम्बन्ध में आगे विस्तृत विवेचना की गई है।

(5) व्यवसाय की तैयारी सेवा–

इस प्रकार की सेवा के माध्यम से व्यवसाय में प्रवेश से पूर्व वांछित प्रशिक्षण सुविधाओं से छात्र को अवगत कराया जाता है। यह स्वयं–सिद्ध है कि व्यवसाय में सफलता पर्याप्त मात्रा में प्रशिक्षण पर निर्भर हैं। इस कार्य में छात्रों को सहायता की आवश्यकता होती है कि प्रशिक्षण कहाँ, कैसे, कब तथा क्यों प्राप्त किया जा सकता है। यह सूचना देना व्यवसाय हेतु पूर्व–निर्माण सेवा का कार्य है।

(6) नियुक्ति सेवा–जब छात्र व्यवसाय–चयन कर चुकने के बाद उचित प्रशिक्षण प्राप्त कर चुकता है तो विद्यालय की नियुक्ति सेवा का यह कार्य हो जाता है कि वह छात्र को उपयुक्त व्यवसाय में प्रवेश करा दे। उचित स्थान प्राप्त करने में सहायता की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार की सेवा के अभाव में सम्पूर्ण निर्देशन योजना असफल हो सकती है। इसकी विस्तृत व्याख्या आगे की गई है।

(7) समायोजन सेवा–

छात्र को व्यवसाय में प्रवेश करने के पश्चात् यह विद्यालय का काम हो जाता है कि वह छात्र से उसके जीविका–जीवन में भी सम्पर्क बनाये रखे जिससे उसकी सफलता एवं असफलताओं का ज्ञान विद्यालय को होता रहे। इससे विद्यालय भी अपनी सेवाओं का मूल्यांकन कर सकता है।

(8) अनुसंधान सेवा–

इस सेवा का प्रमुख कार्य विद्यालय में व्यवसाय निर्देशन योजना में सुधार लाना है निर्देशन के नये–नये तरीके तलाश करना है। यह सेवा नये प्रयोग करती है, नये सिद्धान्त प्रतिपादित करती है, निर्देश की नई रीति एवं पद्धति की खोज करती है तथा वर्तमान पद्धतियों के दोषों को दूर करती है।

प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

10 व्यवसायिक निर्देशन देने में रूचि मापन क्यों आवश्यक है?

....

11. समायोजन सेवा का व्यावसायिक निर्देशन में क्या महत्व है?

....

6.11 भारत में व्यवसाय सम्बन्धी सूचनायें–

व्यवसायगत सूचनाओं मं हम न समस्त तथ्यों को सम्मिलित करते हैं जो एक व्यवसाय से सम्बन्धित होते हैं। संक्षेप में इनके अन्तर्गत हम सामान्य शिक्षा एवं तकनीकी शिक्षा–संस्थाओं की नियमावली, औद्योगिक पुरस्कार, समाचार–पत्र, विज्ञापन एवं चलचित्र भी सम्मिलित करते हैं। इनके अलावा एक परामर्शदाता के अनुसार व्यवसायगत सूचना–साहित्य में वे समस्त प्रकाशन जो व्यवसाय सम्बन्धी कुछ भी ज्ञान कराते हैं, सम्मिलित हैं। इनके माध्यम से व्यवसायगत सूचनाएँ पर्याप्त मात्रा में प्राप्त की जा सकती हैं।

भारत में व्यवसायगत सूचनाएँ संकलित करने के अनेक स्रोत हैं। इनमें से कुछ प्रमुख स्रोत निम्नांकित हैं :

(A) भारत में व्यवसायगत सूचनाएँ अनेक संस्थाओं द्वारा प्रकाशित की जाती हैं। राष्ट्रीय स्तर पर श्रम एवं रोजगार मंत्रालय के अधीन 'डाइरेक्ट्रोरेट जनरल आफ रेसेटलमेंट एण्ड एम्पलॉयमेंट ने अनेक व्यवसायों से सम्बन्धित सूचनाएँ निम्नांकित पाँच विभागों में प्रस्तुत हैं :

(1) **गाइड टू कैरियर**–ये संक्षिप्त पुस्तिकाएँ 8 से 10 पृष्ठों की हैं। इनमें

विभिन्न व्यवसायों का परिचय अत्यन्त सरल तथा सुगम भाषा द्वारा कराया गया है।

(2) आक्यूपेशनल फील्ड रिब्यूज–ये प्रमुखतया व्यवसाय–परामर्श तथा कैरियर मास्टर्स के प्रयोग के लिए हैं। प्रत्येक 'रिब्यू' एक व्यवसाय का तथा उससे सम्बन्धित व्यवसायों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है। इनका चयन तथा सामूहिक राष्ट्रीय व्यबसाय श्रेणीकरण के आधार पर हैं।

(3) व्यवसायों का राष्ट्रीय वर्गीकरण–इसमें भारत के समस्त छोटे–बड़े व्यवसायों को 9 वर्गों में विभक्त कर दिया गया है। ये 9 श्रेणियाँ पुनः 55 भागों में विभक्त की गई हैं तथा ये 55 भाग पुनः 300 उपभागों में विभक्त कर दिये गये हैं।

(4) हैण्ड बुक्स आन ट्रेनिंग फैसिलीटिज–इनका प्रकाशन राज्य प्रकाशन रोजगार दफ्तर हेतु हुआ है। इनके माध्यम से रोजगार अधिकारी नियोगकर्त्ता एवं प्रार्थी की आवश्यकताओं को अध्ययन करते हैं।

(B) वोकेशनल गाइडेंस ब्यूरो–भारत में 'वोकेशनल गाइडेंस ब्यूरो' ने भी व्यवसाय–सम्बन्धी कुछ प्रकाशन किये हैं। इनमें अधिकांश रूप से व्यवसाय–सम्बन्धी अवसर, सुविधाओं तथा व्यवसायगत शिक्षा–सुविधाओं का वर्णन हैं।

(C) रोटरी क्लब–बम्बई के रोटरी क्लब ने भी 'कैरियर पैम्फलेट' प्रकाशित किये हैं। परन्तु इनमें विभिन्न व्यवसायों की व्याख्या अत्यन्त अस्पष्ट भाषा में की गई है तथा कुछ पुस्तिकाओं में केवल बम्बई प्रान्त तक सीमित व्यवसायों की सूचना दी गई है।

(D) वाई0 एम0 सी0 कलकत्ता–वाई0 एम0 सी0 कलकत्ता ने भी 'वोकेशनल गाइडेंस सीरिज' प्रकाशित की हैं। इनमें कुछ पुस्तिकाएँ, यथा 'कैरियर्स फार साइंस ग्रेजुएट्स', 'कैरियर्स फार मेडिकल ग्रेजुएट्स', 'कैरियर्स फार अकांउटैंसी' एवं 'कैरियर्स फार वोमेन' अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यवसाय–सम्बन्धी सूचनाएँ प्रदान करती है।

(E) सैण्ट्रल ब्यूरो ऑफ एजुकेशनल एण्ड वोकेशनल गाइडेंस–केन्द्रीय शिक्षा–मन्त्रालय के अधीनस्थ इस ब्यूरों ने भी अनेक प्रकाशन किये हैं तथा कुछ संक्षिप्त चलचित्रों का निर्माण भी किया है।

(F) रक्षा मन्त्रालय–रक्षा मन्त्रालय ने भी जल, नभ तथा थल सेना सम्बन्धी व्यवसायों की विस्तृत सूचना प्रदान कराने हेतु अनेक प्रकाशन किये हैं। इसी प्रकार सूचना मन्त्रालय ने 'आवर मर्चेन्ट नेवी', 'आवर पोलिस', 'इण्डियाज फारेस्ट' जैसे प्रकाशन हमारे सम्मुख प्रस्तुत किये हैं। इसके अलावा अन्य मन्त्रालयों ने भी इस सम्बन्ध में बहुत से प्रकाशन किये है।

6.12 सारांश

व्यावसायिक निर्देशन अब बौद्धिक वातावरण एवं आर्थिक आवश्यकता को देखते हुए एक व्यवस्थित निर्देशन की शाखा के रूप में प्रस्थापित एवं प्रचलित हो रहा

है। इसकी आवश्यकता अनेक देशों में प्राथमिक स्तर से ही कक्षाओं में दिये जाने की सिफारिश की गई और इसे पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बनाया। भारत में व्यवसायिक निर्देशन की अनिवार्यता माध्यमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा में अधिक मानी गयी है। इस इकाई मे आपने व्यावसायिक शिक्षा के विषय में विस्तार से पढ़ा। यह इकाई आपकों रूचिकर लगी होगी।

6.13 चर्चा के बिन्दु

व्यावसायिक निर्देशन की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसकी आवश्यकता एवं उद्देश्यों की चर्चा भारत के परिप्रेक्ष्य में कीजिए।

6.14 अभ्यास कार्य

व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत माध्यमिक विद्यालय में एक व्यावसायिक सूचना केन्द्र बनाने हेतु उसकी रूपरेखा एवं कार्यो का विवरण दीजिए।

6.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Perin, H, Mehta & Hoshing, P. Mehta : The History of the Guidance Movement in India, 1960.
2. Burt, C. : A Study of Vocational Guidance, 1929.
3. Pal., S.K. : Guidance in Many Lands, 1968.
4. Keller & Morris, S. Vitales : Vocational Guidance Throughout the Worlds, 1937.
5. डॉ0 रमाकान्त दुबे, :शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के आधार, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
6. Burt. C. : The Historical Development of the Child Guidance Movement in Education, 1955.

इकाई–7 वैयक्तिक निर्देशन

संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 व्यक्तिगत निर्देशन की अवधारणा एवं उद्देश्य

7.4 व्यक्तिगत निर्देशन के सिद्धान्त

7.5 व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता

7.6 व्यक्तिगत निर्देशन की प्रक्रिया एवं कार्यतन्त्र

7.7 सारांश

7.8 अभ्यास के प्रश्न

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.1 प्रस्तावना

मानव जीवन संघर्ष से परिपूर्ण रहता है। सम्पूर्ण जीवन काल में मनुष्य अपने समायोजन की समस्या से जुझता रहता है। अपने व्यक्तिगत जीवन में सामंजस्य, तालमेल एवं संगति लाना अब मानव के लिए कठिन होता जा रहा है। क्योंकि हमारी सामाजिक व्यवस्था जटिल होती जा रही है। शैक्षिक दृष्टि से अच्छी उपलब्धि वाला, व्यावसायिक दृष्टि से सफल व्यक्ति भी अपने व्यक्तिगत जीवन में मानसिक, सांवेगिक, चारित्रिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक विकास की दृष्टि से समस्याग्रस्त हो सकता है। यह भी कहा जा सकता है कि इनका संतुलित विकास ना होने के कारण अनेक प्रकार की कुण्ठाएँ एवं ग्रन्थियाँ उसके मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है जिसका कुप्रभाव उसके शैक्षिक एवं व्यवसायिक जीवन पर भी पड़ता है। जब मनुष्य अपनी स्वयं की समस्याओं को ना तो समझ पाता है और ना ही सुलझाने में अपने–आप को सक्षम पाता है तब उसे निर्देशन की आवश्यकता होती है जिसे व्यक्तिगत निर्देशन कहा जाता है। इस इकाई में हम व्यक्तिगत निर्देशन के विषय में विस्तार से पढ़ेगें।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- व्यक्तिगत निर्देशन की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
- व्यक्तिगत निर्देशन के उद्देश्य एवं आवश्यकताओं का वर्णन कर सकेंगे।
- व्यक्तिगत निर्देशन की कार्यप्रणाली को समझा सकेंगे।

7.3 व्यक्तिगत निर्देशन की अवधारणा एवं उद्देश्य

आप पूर्व में शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन के विषय में पढ़ चुके है। व्यक्ति की कुछ निजी समस्याएँ भी होती है जिनका समाधान वह स्वयं नही कर पाता। मानव जीवन के सम्यक उत्थान के लिए आवश्यक है कि उसका जीवन समस्या रहित हो, वास्तव में निजी समस्याएँ उसके सम्पूर्ण जीवन के विकास को प्रभावित कर देती है।

तनावग्रस्त शरीर, मन एवं जीवन किसी अन्य क्षेत्र में विकास एवं समायोजन के लायक नही रहता। समस्या तब अधिक होती है जब व्यक्ति उसका निदान खोजने में अपने–आप को असफल पाता है।

व्यक्ति के निजी समस्याओं को आम तौर पर हम निम्न भागों में बाँट सकते है।

1. **मानसिक समस्या**–ये समस्याएँ मूलतः मानसिक स्वास्थ्य एवं मनुष्य के अहम् से जुड़ी रहती है। व्यक्ति के मानसिक समस्या के निराकरण हेतु निर्देशन प्रदान करने का उद्देश्य उसे मानसिक रूप से स्वस्थ करना होता है। मनोविश्लेषणवादियों ने मनुष्य की मानसिक समस्याओं का विस्तार से अध्ययन किया जिसमें फ्रायड का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने मानव मस्तिष्क की संरचना के तीन परत ईद, ईगो और सुपर ईगो माना है। ईद के अन्तर्गत मनुष्य की समस्त व्यक्तिगत सुख एवं पाशविक प्रवृत्तियों से सम्बन्धित इच्छाएँ रहती हैं जो समय–समय पर मनुष्य को उन्हें पूरा करने हेतु उकसाती है। इसके पश्चात् ईगो आता है जिसका सम्बन्ध बाहर की दुनिया हमारी संस्कृति एवं सभ्यता से रहता है। सुपर ईगो मानव मस्तिष्क में स्पष्ट, अत्यन्त शिष्ट एवं सुधरा हुआ रूप होता है। मनुष्य जब अपनी इच्छाओं को पूरा नही कर पाता तब वह उसकी सुपर ईगो आवरण में चली जाती है परन्तु ये सुबुप्त इच्छाएं उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करके समय–समय पर उसे तनावग्रस्त करती रहती है।

2. **पारिवारिक समस्या**–मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज और परिवार दोनों में समय–समय पर अपनी अहम भूमिका निभाता है। अनेक भूमिकाओं के होने के कारण उसके सामने समायोजन की समस्या खड़ी हो जाती है इसके अतिरिक्त परिवार की आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि उसके जीवन को प्रभावित करती है। इन्हीं के मध्य उसकी निजी समस्याएँ भी जन्म लेती है। तब उसे व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता होती है।

3. **शारीरिक समस्या**–शारीरिक समस्याओं के अन्तर्गत व्यक्ति के स्वास्थ्य में कमी, दुर्बलता एवं परिस्थितिजन्य समस्याएँ आती है। स्वस्थ शरीर ही स्वस्थ मस्तिष्क का भार उठा पाता है। असंतुलित आहार विद्यालय का नीरस वातावरण, आसपास के पर्यावरण में स्वास्थ्यपयोगी परिस्थितियों का अभाव, विद्यार्थियों की कमजोर आर्थिक परिस्थितियाँ तथा जन्मजात शारीरिक समस्याएँ विद्यार्थी के शारीरिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालती है और वह कुसमायोजित हो जाता है। इसके लिए व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।

4. **सामाजिक समस्या**–इनके अन्तर्गत व्यक्ति के समक्ष समुदाय, समाज से जुड़ी रूढ़ियाँ, परम्पराएँ, अंधविश्वास एवं कुरीतियों के कारण उत्पन्न समस्याएँ आती है जो उसके स्वभाविक विकास को रोक देती है। समाज की समस्याएँ व्यक्ति के मनः मस्तिष्क को तनावग्रस्त करने के साथ कुसमायोजित भी कर देती है।

इन चारों तरह की समस्याएँ मनुष्य के निजी जीवन को अस्त–व्यस्त कर देती है। इन समस्याओं से ग्रस्त होकर मानव अपना सन्तुलन खोने लगता है। तब उसे सहायता की आवश्यकता होती है जोकि व्यक्तिगत निर्देशन के कार्यक्रमों द्वारा ही सम्पन्न होता है। वास्तव में व्यक्तिगत निर्देशन कोई नयी अवधारणा नही है। निर्देशन का स्वरूप व्यक्तिगत ही होता है, व्यक्तिगत निर्देशन शब्द के प्रयोग से भ्रम पैदा होता है। जिसे लेस्टर डी0 क्रो0 एवं एलिस क्रो0 ने स्पष्ट करते हुए लिखा कि "व्यक्तिगत निर्देशन का अभिप्राय व्यक्ति को प्राप्य उस सहायता से है जो उसके जीवन के सभी क्षेत्रों तथा अभिवृत्तियों के विकास को दृष्टिगत रखकर समायोजन के प्रति निर्दिष्ट होती है।"

व्यक्तिगत निर्देशन के अन्तर्गत व्यक्ति की समायोजन क्षमता बढ़ाने, निजी समस्याओं के प्रति समझ एवं हल ढूढ़ने आत्मबोध कराने के लिए दिया गया सहयोग सम्मिलित होता है। व्यक्ति के लिए अपनी समस्या को समझ पाना तथा आवश्यकतानुसार उसका हल ढूढ़ना आसान कार्य नही है। आयु के साथ अनुभव बढ़ता है जिससे कि समस्याओं के प्रति समझ एवं हल ढूढ़ना भी आसान हो जाता है परन्तु बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था में स्थिति भयावह हो जाती है और व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता होती है।

व्यक्तिगत निर्देशन के उद्देश्य

व्यक्तिगत निर्देशन के अन्तर्गत व्यक्ति को उसके आस–पास के वातावरण को समझने एवं उसमें समायोजन करने की क्षमता का विकास सम्मिलित होता है। इसका मुख्य उद्देश्य होता है–

1. व्यक्ति को उसकी समस्याओं को समझने एवं उनका विश्लेषण करने की क्षमता का विकास करना।
2. व्यक्ति को अपने आस–पास के वातावरण को समझने एवं उनके प्रति संवेदनशील बनाना।
3. व्यक्ति को परिवार, समुदाय, विद्यालय एवं व्यवसाय सम्बन्धी दशाओं को समझने तथा उनसे उत्पन्न व्यक्तिगत समस्याओं को हल करने में मदद देना।
4. व्यक्ति की समायोजन क्षमता को बढ़ाने में उसकी मदद करना।
5. व्यक्ति को अपने जीवन से सम्बन्धित निर्णय लेने एवं अभिक्षमता के आधार पर उनपर कार्य करने के लिए विवकेशील बनाना।
6. व्यक्तिगत तनाव का पता लगाना और उचित समय पर उनके कारणों को जानना।

7. व्यक्ति को अपने पारिवारिक और सामाजिक जीवन में सही भूमिका निभाने स्वस्थ सम्बन्ध बनाने उचित आर्थिक पाने एवं सांवेगिक संतुलन बनाए रखने आदि में मदद करना।
8. मानव में अपने जीवन की अनेकानेक परिस्थितियों में अपेक्षित सूझ–बूझ विकसित करने तथा क्रियाशील होकर जीवन यापन हेतु सहायता प्रदान करना।
9. विद्यार्थी को परावलम्बन से हटकर स्वतंत्र निर्णय और कार्य करने में सहायता देना।
10. ऐसे अवसरों की व्यवस्था करना जिसमें छात्रों के सामाजिक विकास के लिए परस्पर सम्पर्क करने का प्रोत्साहन मिलें।
11. विद्यार्थी को भावनात्मक नियन्त्रण करने का अभ्यास देना।

वास्तव में व्यक्तिगत निर्देशन वह सहायता है जो कि व्यक्ति में अपने जीवन के प्रति उचित समझ पैदा करते हुए कुशलतापूर्वक समायोजन के योग्य बनाता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. निर्देशन का वास्तविक स्वरूप कैसा होता है?

   ....

2. किस मनोविश्लेषक ने मानसिक समस्याओं के विषय में विस्तार से अध्ययन किया है?

   ....

3. मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन किन समस्याओं से सबसे अधिक प्रभावित होता है?

   ....

7.4 व्यक्तिगत निर्देशन के सिद्धान्त

निर्देशन की व्यक्ति के जीवन में आवश्कता को समझने के पश्चात् उन सिद्धान्तों को भी समझ लेना चाहिए जिनके आधार पर यह निर्देशन दिया जाता है क्योंकि इन सिद्धान्तों का ज्ञान निर्देशन के क्रियात्मक या व्यावहारिक कार्य में अधिक सहायता देता है। सम्पूर्ण व्यक्तिगत निर्देशन कार्यक्रम इन्हीं सिद्धान्तों पर टिका रहता है।

1. **समान रूप से सभी छात्रों को निर्देशन प्रदान करने का सिद्धान्त**–निर्देशन व्यक्तिगत रूप से किसी एक व्यक्ति विशेष के लिए नहीं है यह सहायता सभी

को समान रूप से प्रदान की जाती है। इसके प्रदान किए जाने एवं उपलब्धता पर कोई विरोधाभास नही है अन्तर मात्र समस्याओं के आधार पर होता है।

2 **निर्देशन की व्यापकता**—निर्देशन प्रक्रिया व्यापक होती है इसमें परामर्शप्रार्थी की समस्या पर व्यापक रूप से विचार किया जाता है और उसके आधार पर ही सम्पूर्ण प्रक्रिया का संचालन होता है। व्यक्तिगत निर्देशन व्यक्ति के विकास से सम्बन्धित सभी क्षेत्रों पर आच्छादित होता है। यह व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं भावात्मक वृद्धि की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। इसके अतिरिक्त यह उसके जीवन से सम्बन्धित अन्य पक्षों पर भी विचार करता है। सुपर ने निर्देशन की धारणा की व्यापकता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि "सीखने एवं विकास के मनोविज्ञान से यह तथ्य प्रकाश में आया है कि निर्देशन युवक और जीविका में मेल स्थापित करने तक ही सीमित नही है और ना यह व्यक्तियों की अपनी योग्यताओं एवं रूचियों को समझने में सहायता प्रदान करने की प्रक्रिया है और ना व्यक्तिगत विशेषताओं को शैक्षिक एवं व्यवसायिक अवसरों में सम्बन्धित करने व निर्णय लेने की प्रक्रिया है। यह तो वास्तव में व्यक्तिगत विकास में निर्देशित करने से सम्बन्धित है।"

3. **व्यवस्थित संचालन का सिद्धान्त**—व्यक्तिगत निर्देशन की सम्पूर्ण प्रक्रिया निश्चित चरणों से संचालित की जाती है इसके लिए सभी आवश्यक जानकारी एवं संसाधनों की सहायता ली जाती है जिससे कि आवश्यक लक्ष्य की प्राप्ति तत्काल हो सकें।

4. **लचीलेपन के सिद्धान्त**—व्यक्तिगत निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति का विकास करना है अतः यह व्यक्ति की आवश्यकता के अनुसार लचीली की जाती है और समय—समय पर इसमें मूल्यांकन करते हुए आवश्यक परिवर्तन भी किया जाता है।

5. **सहयोग का सिद्धान्त**—व्यक्तिगत निर्देशन वास्तव में व्यक्ति की शारीरिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं मानसिक समस्याओं से सम्बन्धित होता है। अतः यह आवश्यक होता है कि निर्देशन में उसके जीवन से सम्बन्धित लोगों का सहयोग लिया जाये जिससे कि उसकी समस्याओं से सम्बन्धित सम्पूर्ण सहयोग मिल सकें।

6. **गोपनीयता का सिद्धान्त**—व्यक्तिगत निर्देशन में परामर्शदाता परामर्शप्रार्थी की समस्या को समझने के लिए उससे सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करता है और यह तब सम्भव होता है जब वह परामर्शप्रार्थी को यह विश्वास दिला देता है कि उसके द्वारा दी गई जानकारी पूर्णतया गोपनीय रखी जायेगी।

ये सभी सिद्धान्त व्यक्तिगत निर्देशन की प्रक्रिया में समाहित होते है और लक्ष्य प्राप्त करने में सहयोग देते है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4. व्यक्तिगत निर्देशन में परामर्शदाता किसका सहयोगी है?

....

5. व्यक्तिगत निर्देशन की प्रक्रिया में अन्तर कब आता है?

....

6. व्यक्तिगत निर्देशन की प्रक्रिया लचीली क्यों होती है?

....

7.5 व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता

वैसे तो व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता को विशेष तौर से अपसमंजन या कुसमंजन की परिस्थितियों से जोड़ दिया जाता हैं, तथापि सामान्य जीवन के अनेक ऐसे सन्दर्भ देखे जा सकते हैं जिनमें व्यक्ति को थोड़ी सी राय या दिशा निर्देशन के जरिये उसे सफल एवं प्रभावी बनाया जा सकता है। बाल्यकाल से लेकर वृद्धावस्था तक अपने जीवन के विविध सन्दर्भो में मधुर समायोजन रखना व्यक्ति के जीवन की सफलता एवं मानसिक स्वास्थ्य का परिसूचक है। आज की बदलती उप–संस्कृतियों एवं उनके लिए अपेक्षित तौर–तरीके तथा मिजाज के सन्दर्भ में नई अपेक्षाएँ, मानक तथा आचार संहिताएँ बन रही हैं। पुराने तथा नये मूल्यो में टकराव प्रायः दिखाई पड़ता है। नई पीढ़ी तथा पुरानी पीढ़ी के खिंचाव, परिवर्तित सन्दर्भो में जीवन की नवीन शैलियों का उद्भव तथा विकासशील जीवन मूल्य 'व्यक्तिगत निर्देशन' के महत्व को सहज ही व्यक्त करते है।

उक्त परिप्रेक्ष्य में 'व्यक्तिगत निर्देशन' की आवश्यकता को निम्नलिखित दृष्टियों से प्रदर्शित किया जा सकता है–

(1) व्यक्तिगत समंजन की सम्भावना बढ़ाने की दृष्टि से–परिवार के अनेकानेक सन्दर्भो तथा सामुदायिक एवं सामाजिक जीवन की परम्परागत जिम्मेदारियों का कुशलतापूर्वक निर्वाह करने के लिये व्यक्ति की समंजनशीलता अपेक्षित है। विशेष तौर से आज की परिवर्तित परिस्थितियों में इसका विशेष महत्व है। युवा–वर्ग समाज में सर्जनशील भूमिका कैसे निभाये, वह अपने जीवन साथी का चुनाव करने हेतु विवाह–प्रस्तावों एवं रस्मों को किस तरह पूरा करें एवं शिक्षा तथा रोजगार के अवसरों से अपना उचित संबंध कैसे स्थापित करें–इन सभी के लिए अपेक्षित समंजनशीलता की सम्भावना बढ़ाने की दृष्टि से व्यक्तिगत निर्देशन नितान्त आवश्यक है।

(2) व्यक्तिगत कुशलता विकसित करने की दृष्टि से–यहाँ व्यक्तिगत कुशलता

से अभिप्राय व्यक्ति की सद्यः निर्णय लेने की क्षमता एवं उसके अनुकूल कार्यान्वयन की स्थिति पैदा करने की दक्षता से है। आज जीवन के हर क्षेत्र में कुशल व्यक्ति ही सफल हो सकते हैं। इस दृष्टि से व्यक्तिगत निर्देशन तथा शिक्षा के प्रकार्यो में कोई भेद नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में याद रखना होगा कि पारिवारिक, सामुदायिक एवं व्यावसायिक कुशलता के स्तर भिन्न–भिन्न होते हैं तथा उन्हें विकसित करने में 'व्यक्तिगत निर्देशन' की भूमिका जोरदार होती है।

(3) **आपसी तनावों तथा व्यक्तिगत उलझनों की स्थिति से बच सकने में मदद देने की दृष्टि से**–आज आपसी सम्बन्धों का दायरा बढ़ रहा है, व्यक्ति के परस्पर तनाव एवं निजी उलझनों की परिस्थितियाँ जटिलतर बनती जा रही है। ऐसी परिस्थितियों का भली प्रकार सामना न कर सकने की दशा में व्यक्ति अपना सन्तुलन एवं मानसिक स्वास्थ्य खो बैठता है। इनसे बचने में मदद देने की दृष्टि से व्यक्तिगत निर्देशन नितान्त आवश्यक है।

(4) **व्यक्ति के पारिवारिक एवं व्यावसायिक जीवन में सामंजस्य कायम करने की दृष्टि से**–व्यक्ति के व्यावसायिक जीवन के सुखमय होने का रहस्य उसके पारिवारिक जीवन में पाई जाने वाली मधुरता एवं आत्मतोष में बहुत हद तक ढूँढ़ा जा सकता है। इसी प्रकार व्यावसायिक जीवन की सफलता एवं उसमें उपलब्ध सामंजस्य को उसके पारिवारिक जीवन की शान्ति एवं सन्तुलन को महत्वपूर्ण रूप में प्रभावित करते हुए देखा जा सकता है। यहाँ ध्यान देना होगा कि व्यक्ति का पारिवारिक एवं व्यावसायिक जीवन अलग–थलग होते हुए भी इनमें सम्बन्ध बढ़ाया या घटाया जा सकता हैं। व्यक्ति इन संबंधों में कड़वाहट न महसूस कर सके इसके लिये सम्यक प्रकार का व्यक्तिगत निर्देशन अपेक्षित है।

(5) **संकट के समय या सामान्य क्षणों में अपेक्षित धैर्य तथा सन्तुलन बनाये रखने की दृष्टि से**–व्यक्ति में अपेक्षित धैर्य एवं सन्तुलन का होना उसके मानसिक स्वास्थ्य का परिचायक है। इसकी आवश्यकता जीवन के सामन्य क्षणों के अलावा संकट की घड़ियों में विशेष रूप से होती है। जहाँ ये गुण व्यक्ति की व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं से सम्बद्ध हैं, वहाँ इन्हें समुचित अभ्यास द्वारा विकसित करना भी सम्भव है। इस दृष्टि से व्यक्तिगत निर्देशन का महत्व विशेष रूप से देखा जा सकता है।

(6) **व्यक्तिगत मामलों में सही निर्णय ले सकने की दृष्टि से**–व्यक्ति का अपने जीवन के प्रारम्भिक क्षणों से लेकर, जब वह माँ–बाप या अभिभावक पर निर्भर होता है तथा प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था तक अनेक प्रकार के निर्णय लेने पड़ते हैं। उसे किस विद्यालय में प्रवेश लेना चाहिये, गृहकार्य कैसे पूरा करना चाहिये अपने पड़ोसियों के साथ किस तरह पेश आना चाहिये, अपने माँ–बाप के प्रति आदर कैसे प्रदर्शित करना चाहिये, अपने जीवन सहचर या जीवन–सहचरी

का चयन कैसे हो, उचित उद्यमों में कैसे लगा जाये तथा वृद्धावस्था में परेशानियाँ न खड़ी हों इसके लिए अपेक्षित पूर्व तैयारी क्या हो सकती है। हाँ, इतना अवश्य है कि प्रबुद्ध व्यक्ति होश सम्भालने पर अपना निर्देशन अपने विवके के आधार पर स्वयं कर लेता है।

(7) **व्यक्ति के जीवन में सुख, शान्ति एवं सन्तोष का भाव लाने की दृष्टि से**–हर व्यक्ति अपने जीवन में सुख एवं शान्ति चाहता है। इसके लिये उसमें सन्तोष का भाव भी पैदा करना आवश्यक होता है। यह व्यक्ति की मनोवृत्ति एवं उसके निजी मूल्यों पर निर्भर होने के साथ उचित प्रशिक्षण द्वारा विकसित किया जा सकता है। इस दृष्टि से ठीक प्रकार की नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा तथा उस पर आधारित व्यक्तिगत निर्देशन के कार्यक्रमों की आवश्यकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपेक्षित कुशलता, आत्मसन्तोष एवं सामंजस्य कायम करने तथा स्वस्थ, प्रभावी एवं सहज आत्म–विकास का मार्ग प्रशस्त करने की दृष्टि से 'व्यक्तिगत निर्देशन' की सेवाओं का योगदान होता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

7. व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता कब होती है?

....

8. व्यक्तिगत निर्देशन किसके मध्य सामंजस्य स्थापित करता है?

....

7.6 व्यक्तिगत निर्देशन की प्रक्रिया एवं कार्यतन्त्र

व्यक्तिगत निर्देशन की प्रक्रिया का मूलस्वरूप वैयक्तिक एवं परामर्शक है। इनमें औपचारिक रूप से गठित सेवाओं का उतना महत्व नहीं होता जितना अनौपचारिक 'आवश्यकता आश्रित' (नीड–बेस्ड), सहज रूप में उपलब्ध निर्देशन के अवसरों का प्रायः हुआ करता है। आगे व्यक्तिगत निर्देशन की प्रक्रिया तथा उसके कार्यतन्त्र को स्पष्ट करने वाले सोपानों का उल्लेख किया जा रहा है–

(1) **सौहार्द स्थापन**–व्यक्ति से सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना जिससे वह निर्देशनकर्मियों से बिना किसी हिचक के खुलकर अपने बारे में अपने पारिवारिक सन्दर्भो तथा अपनी समस्याओं पर प्रकाश डाल सकें।

(2) **रूचियों एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों का आकलन**–व्यक्ति की

रूचियों एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों का पता लगाना। इस सोपान के तहत रूचियों एवं व्यक्तित्व विषयक पक्षों का वस्तुनिष्ठ रूप में जायजा लेने हेतु उपयुक्त प्रकार की मापनी एवं परीक्षाओं का भी प्रयोग किया जाता है।

(3) **समंजन एवं अन्य समस्याओं से सम्बन्धित स्थिति का जायजा**—व्यक्ति की समंजन से सम्बन्धित तथा अन्य समस्याओं का मूल्यांकन करना। इसके लिये मनोविश्लेषण की विधियों का प्रयोग वांछनीय माना जाता है। फ्रायड, जुंग, एडलर एवं उनके अनुयायियों ने व्यक्तिगत निर्देशन की प्रणाली को ठोस, चिकित्सात्मक एवं प्रभावी बनाने में इस दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनके अनुसार इस सोपान के अन्तर्गत व्यक्ति के अहम् (ईगो), इदम् (ईड) तथा पराहम् (सुपर ईगो) के विकास की कहानी, उनके परस्पर समायोजन तथा वस्तुस्थिति का एहसास कराया जाता है।

(4) **उचित परामर्श उपलब्ध कराना**—व्यक्ति को अपेक्षित परामर्श उपलब्ध कराना तथा उसके आधार पर उसके तथा उसके पर्यावरण के मध्य मधुर समन्वय कायम करना।

(5) **कार्य योजनाओं के क्रियान्वयन में व्यक्ति की मदद करना**—व्यक्ति को अपने विवेक एवं आत्म—मूल्यांकन के फलस्वरूप से देखी जा सकती है।

(6) **समस्याओं के निराकरण के बारे में परिचर्चा**—समय—समय पर व्यक्ति की समस्याओं के निवारण या उनके हल के बारे में विचार—विमर्श करना। इस सोपान के अन्तर्गत निर्देशक एक कुशल चिकित्सक की भाँति सेवार्थी से उसकी समस्याओं का सन्तोषजनक हल प्राप्त करने के बारे में पूछताछ करता रहता है तथा इस प्रक्रिया में किसी तरह की बाधा या कठिनाई आने पर उसे दूर करने की कोशिश करता है।

(7) **सेवार्थी व्यक्ति पर पड़े परिणामों का आकलन**—निर्देशकों की टीम द्वारा समस्या के स्वरूप, उसके लिए प्राप्त हल तथा व्यक्ति के समंजन में दिखाई पड़ने वाले परिणामों का मूल्यांकन करना, 'व्यक्तिगत निर्देशन' की प्रक्रिया का अन्तिम सोपान होता है। इसके जरिये व्यक्तिगत निर्देशन की सेवाओं में व्यावसायिकता का पुट आता है जिससे निर्देशनकर्मी भविष्य में अपने अनुभव के आधार पर उपयोगी युक्तियों का प्रयोग कर सकने में सफल होते हैं।

व्यक्तिगत निर्देशन का बुनियादी स्वरूप चिकित्सापरक एवं सुधारात्मक है। इसमें व्यक्ति के आत्म—अवबोध एवं संवेदनशीलता का विकास उसकी परिस्थिति का गहराई

में अध्ययन तथा अपेक्षित युक्तियों का समीक्षात्मक मूल्यांकन मुख्य कार्य होते हैं। इसका कार्य–तन्त्र औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार के सन्दर्भो से मिलकर बनता है।

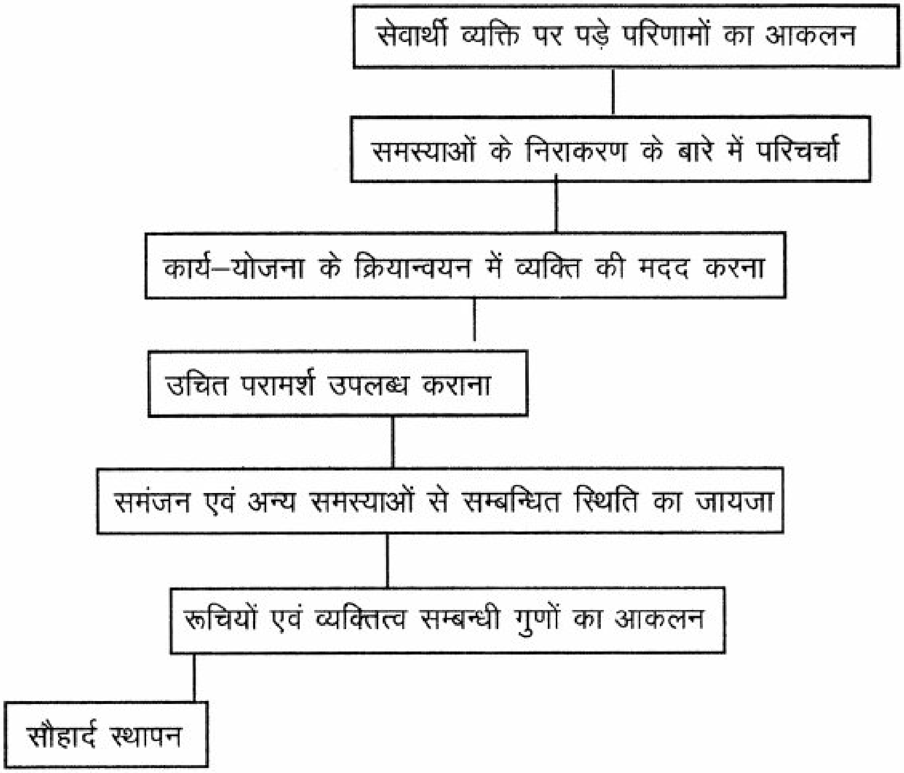

निर्देशनकर्मी को अत्यन्त सावधानीपूर्वक जाँच–पड़ताल की भूमिका निभानी पड़ती है तथा वार्तालापों के माध्यम से सेवार्थी के सम्बन्ध में ज्ञात तथ्यों एवं सूचनाओं को गोपनीय रखने की व्यावसायिक जिम्मेदारी पूर्णतः उसकी होती है। इस प्रकार **'व्यक्तिगत निदेशन'** व्यक्ति के विकास–पथ को सरल, सुगम एवं निरापद बनाने, उसमें अपेक्षित मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने तथा अपने जीवन के विविध क्षेत्रों में समंजन लाने की दृष्टि से प्रत्येक प्रगतिशील समाज की स्वाभाविक चिन्ता, चेष्टा, आत्मचेतना एवं दर्शन का परिचायक है। परिव्ार, सामुदायिक एवं सामाजिक सन्दर्भों, मित्रों, व्यावसायिक सहकर्मियों, शिक्षकों, चिकित्सकों तथा समाजसेवी व्यक्तियों एवं संस्थाओं के माध्यम से इसका व्यापक जाल फैला रहता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

9. परामर्शदाता सौहार्द क्यों स्थापित करता है?

....

10. समस्याओं के निराकरण के लिए परामर्शदाता किससे परिचर्चा करता है?

....

11. व्यक्ति पर पड़े परिणाम का आंकलन क्यों किया जाता है?

....

7.7 सारांश–

'व्यक्तिगत निर्देशन' का दायरा थोड़ा व्यापक है। वस्तुतः हर तरह का निर्देशन प्रायः व्यक्तिगत रूप से सम्पन्न होता है। किन्तु व्यक्तिगत मामलों यथा–घरेलू सम्बन्धों, आपसी सहयोग, मित्रों का चुनाव, वैवाहिक सम्बन्ध तथा अन्य ऐसे सन्दर्भ मौजूद है जहाँ व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार के सलाह की जरूरत रहती है। इस परिप्रेक्ष्य में व्यक्तिगत निर्देशन का तात्पर्य व्यक्ति को दी गई उस सहायता से है जो उसके जीवन के सभी क्षेत्रों तथा अभिवृत्तियों के विकास को दृष्टिगत रखकर देनी पड़ती है। इस प्रकार के निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति को अपनी समस्याओं के समझने एवं उनका विश्लेषण करने, उसके परिवार, समुदाय, विद्यालय एवं व्यवसाय सम्बन्धी समंजन की व्यक्तिगत समस्याओं को हल करने में मदद देना तथा उनमें अपनी सही भूमिका निभाने के लिए उसे सचेत करना है।

7.8 अभ्यास के प्रश्न

1. वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए भारतीय समाज में व्यक्तिगत निर्देशन की पद्धति का व्यवहारिक प्रयोग बढ़ाने हेतु सुझाव दीजिए?

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. सुधारात्मक।
2. फ्रायड।
3. पारिवारिक, मानसिक एवं व्यवसायिक समस्याए।
4. व्यक्ति से सम्बन्धित लोग।
5. समस्या की विविधता होने पर।
6. व्यक्ति की हितों व समस्या को देखते हुए।
7. व्यक्ति से सम्बन्धित समस्या उपलब्ध होने पर।
8. परिवार और व्यवसायिक परिस्थितियों के मध्य।
9. परामर्श प्रार्थी अपने आप को सहज वातावरण में अनुभव करके सहयोग दे सकें।
10. परामर्श प्रार्थी के साथ।
11. जिससे कि व्यक्ति को अपनी समस्या पर सही रूप में सहयोग मिल सकें।

7.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. प्रो0 पाण्डेय, के0 पी0 (2003), शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–3।

इकाई–8 कैरियर या वृत्तिक निर्देशन एवं स्थापन्न

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 वृत्तिक विकास एवं व्यवसाय चयन

8.4 रो की व्यक्तित्व विकास एवं वृत्तिक चयन का सिद्धान्त

8.5 हॉलैण्ड की व्यावसायिक व्यक्तित्व एवं कार्य वातावरण का सिद्धान्त

8.6 गिंजबर्ग का सिद्धान्त

8.7 वृत्तिक अध्ययन विधियाँ

8.8 स्थानन एवं अनुवर्तन

8.9 कार्य विश्लेषण

8.10 कार्य विश्लेषण का महत्व एवं विधियाँ

8.11 कार्य विवरण

8.12 वृत्तिक सूचना सेवा

8.13 रोजगार अवसर सूचना सेवा

8.14 सारांश

8.15 अभ्यास के प्रश्न

8.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.17 उपयोगी पुस्तकें

8.1 प्रस्तावना

निर्देशन एवं उपबोधन की अधिकांश परिस्थितियों में व्यक्ति को परमुखप्रेक्षी न बनाकर अपने विवेक एवं सूझ–बूझ द्वारा सही व्यवसाय की ओर प्रवृत्त होने में मदद देना इसकी वास्तविक परिणति मानी जाती है। वृतिक निर्देशन वास्तव में राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप आया। आज वैज्ञानिक युग में अनेक प्रकार के कैरियर्स का विकास हुआ उनको ध्यान में रखकर विद्यार्थियों के लिये ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जाये जो उनकी रूचि, आवश्यकताओं के अनुकूल हो और उन्हें ऐसे कैरियर के लिये तैयार किया जाए जो उनकी उन्नति में सहायक हो सके। इस इकाई में हमें कैरियर निर्देशन के विषय में जानकारी प्राप्त करेगें।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेगें कि–

- कैरियर निर्देशन के महत्व को समझ सकेगें।
- कैरियर के अध्ययन की विधियों का वर्णन कर सकेगें।
- कैरियर चयन को प्रभावित करने वाले तत्वों को इंगित कर सकेंगे।

8.3 वृत्तिक विकास

वृत्तिक विकास वास्तव में मानसिक विकास के समानान्तर चलता है। बूलर (1933) द्वारा किये गये वृत्तिक विकास के सिद्धान्तों को सुपर (1957) ने प्रयोग किया। सम्पूर्ण वृत्तिक विकास के चरणों में उत्पत्ति, व्यवस्थित, रख–रखरखाव एवं पतन की अवस्था मुख्य केन्द्र बिन्दु हैं।

जिन्जबर्ग (1951) ने वृत्तिक चयन की अवस्था को निम्न चरणों में बांटा।

1) कल्पना अवस्था (11 वर्ष तक)

2) अनुमान अवस्था (12 से 16 वर्ष तक)

इसके कई उपचरण है।

- रूचि अवस्था
- मूल्य अवस्था
- क्षमता अवस्था
- परिवर्तन अवस्था

3) यथार्थ अवस्था–(17 वर्ष एवं अधिक)

इसके भी उपचरण है

- अन्वेषण
- ठोसकिरण
- विशेषकितृ

कल्पना आयु वास्तव में 4 वर्ष के आयु के बच्चे में ही परिलिक्षित हो जाती है जब वह अपने भविष्य के कार्यो को सम्भावना व्यक्त करने लगता है। धीरे–धीरे कोई एक विशेष क्षेत्र के प्रति उसकी सोच बढ़ती है और वह अनुमान अवस्था की ओर बढ़ता है। इस आयु में आने तक बालक को अपनी क्षमता का कुछ अनुमान होने लगता है अपने मूल्यों को जान लेता है और वह सोचने लगता है कि उसकी इच्छा के अनुरूप उसके पास में सुविधायें हो सकता है न मिलें।

इस आयु में फिर वह अपने आसपास के वातावरण का अन्वेषण करता है। फिर भी जो अधिक सक्षम होते है वे सचेत होकर अपनी इच्छाओं का निर्धारण करने लगते है। इसके साथ ही ठोसीकरण की अवस्था प्रारम्भ हो जाती है जब बालक किसी एक क्षेत्र की ओर उन्मुख हो जाता है और अपनी रूचि को विशेषीकृत कर लेता है।

इसी प्रकार से सुपर (1957) ने वृत्तिक विकास की अवस्था को निम्न चरणों में बांटा है।

1) विकास अवस्था (14 वर्ष तक)

2) अन्वेषण अवस्था (15 वर्ष से 25 वर्ष)

- अनुमान

- परिवर्तन
- परीक्षण

3) संस्थापन अवस्था

- परीक्षण
- उन्नति

4) निर्वाह/रक्षा अवस्था (45–65 आयु)

5) क्षय अवस्था (66 वर्ष की आयु के पश्चात्)

सुपर ने सभी चरणों की विस्तृत व्याख्या की है। बालक के वृत्तिक विकास पर उसके आसपास के वातावरण, विभिन्न लोगों के सामाजिक सम्बन्ध, विभिन्न व्यवसायों के प्रति सूचनायें आदि प्रभाव डालते है और यह सभी उसे किशोरावस्था तक मदद करते है।

अन्वेषण अवस्था–यह अवस्था अनुमान लगाने की आयु से प्रारम्भ होती है इसमें बच्चे अपने आस–पास के वातावरण से प्रेरित रहते हैं। वातावरण से मिले उद्दीपन उसे अपनी पसंद तय करने का रास्ता दिखाते है। सुपर की वृत्तिक विकास का सिद्धान्त पूर्णतया बालक के अपने मानसिक विकास के ऊपर ही आधारित है जिसमें बालक अपने विचार एवं प्राथमिकता तय करने तक प्रयासरत रहता है। बच्चे को सूचनायें आस–पास के वातावरण से मिलती है। अपनी क्षमताओं का ज्ञान एवं अपने मूल्यों एवं आदर्शो का निर्धारण ही उसे लक्ष्य की आरे तेजी से उन्मुख होने में सहायता करते है। अपने आपको समझने के साथ ही रूचियों का निर्धारण भी होने लगता है। अभ्यास अवस्था में कुछ बच्चे बड़ी ही सरलता से प्रविष्ट होते है तो कुछ इसे बढ़ा लेते है। जो बच्चे आत्मविश्लेषण की प्रक्रिया सही कर पाते है वे अभ्यास अवस्था में ही सफल हो जाते है और जो आत्मविश्लेषण सही तरीके से नहीं कर पाते उन्हे और प्रयास करना पड़ता है। अभ्यास अवस्था व्यवस्थीकरण अवस्था तक जाती है और फिर यह व्यवसाय में समायोजित होने व विकास करने तक जाती है।

निर्वाह/रक्षा अवस्था–

यह अवस्था 45 वर्ष की आयु से प्रारम्भ होती है। यदि व्यक्ति का आत्म/प्रत्यय या आत्मविश्लेषण सही दिशा में रहता है तो वह संतुष्ट एवं प्रसन्नता का अनुभव करता है और ऐसा नही होने पर हताशा एवं असंतुष्टि का अनुभव करता है। इसके पश्चात् पतन/क्षय की अवस्था आती है जब तक मनुष्य की ऊर्जा का ह्रास होने लगता है और फिर मनुष्य के सामने चुनौती होती है कि वह नयी परिस्थितियों के साथ समायोजन कर क्षमता के अनुसार कार्य करें।

प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. कल्पना अवस्था की मुख्य विशेषतायें क्या है ?

....

2. निर्वाह अवस्था में व्यक्ति अपने वृत्ति के विषय में क्या सोचता है?

....

8.4 रो की व्यक्तित्व विकास एवं वृत्तिक चयन का सिद्धान्त

एन रो एक चिकित्सा मनोवैज्ञानिक थे जो बाद में वृत्तिक विकास की ओर अपने व्यक्तित्व के गुणों व विशेषताओं पर किये गये शोध से उन्मुख हुये। उनके सिद्धान्तों में वृत्तिक विकास एवं व्यक्तित्व के मध्य सम्बन्ध स्थापित है। उनके सिद्धान्तें से यह बात स्पष्ट हुयी कि व्यक्तित्व की विभिन्नताएँ ही विभिन्न व्यवसायों को चुनने का कारण बनती है।

विभिन्न व्यावसायिक समूहों का विवरण–रो ने सम्पूर्ण व्यवसायों के रेंज को वर्गीकृत किया है। ये सभी वर्गीकृत समूह है।

सर्विस/सेवा/नौकरी–ये व्यवसाय मुख्यतया दूसरों की आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं तथा हित के लिये कार्य से सम्बन्धित है। इस समूह में समाज सेवा, निर्देशन घरेलू एवं रक्षात्मक सेवायें सम्मिलित हैं। ये उस परिस्थिति पर निर्भर करता है कि वह उस व्यक्ति के कार्य करने की प्रकृति व परिस्थिति क्या है।

1) धन्धे एवं सम्पर्क/विजनेस–ये व्यवसाय, बचत एवं अन्य चीजों एवं सेवाओं के भेजने से सम्बन्धित है।

3) संगठन–ये सभी प्रबन्धन एवं उद्योगों, व्यवसायों एवं सरकार में सफेद कॉलर कार्य कहलाते हैं। इनमें मुख्यतया सरकारी उद्योग एवं मशीनरी आती है। इसमें व्यक्तियों के मध्य औपचारिक सम्बन्ध होते है।

4) तकनीकि–इस समूह में व्यवसाय उत्पादन, रखरखाव, परिवहन एवं अनरू उपयोगी कार्यो से सम्बन्धित होते है, इसमें इंजीनियरिंग, क्राफ्ट, मशीन ट्रेड, परिवहल संचार व्यवस्था इत्यादि व्यवसाय होते है।

5) आऊटडोर–इस समूह में कृषि, संरक्षण, खनन, समुद्री व्यापार, पानी से सम्बन्धित संसाधन, खनिजों से सम्बन्धित संसाधन, जंगलों से सम्बन्धित वस्तुओं से सम्बन्धित व्यवसाय आते है। इसमें कन्सल्टिंग स्पेशलिस्ट, आर्किटेक्टस, वैज्ञानिक व वनकर्मी आते है।

6) विज्ञान–इनमें वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित व्यवसाय आतें हैं जिनका उपयोग

विभिन्न आविष्कारों में किये जाते है।

7) सामान्य संस्कृति–इस समूह में सांस्कृतिक धरोहरों, तत्वों को संजोने स्थानान्तरित करने का कार्य करने वाले लोग आते है। इस समूह में शिक्षा, पत्राचार, साहित्य एवं मानवीकि से सम्बन्धित व्यवसाय आते है।

8) कला एवं मनोरंजन–इस समूह में कला एवं मनोरंजन के क्षेत्र में जुड़े व्यवसाय आते हैं इसमें एक व्यक्ति का सम्बन्ध एक बहुत बड़े समूह के साथ अप्रत्यक्ष रूप से स्थापित होता है।

समूहों के विभिन्न स्तर–प्रत्येक समूह के छह स्तर होते है। जो कि नीचे वर्णित हैं।

1) **प्रोफेशनल एवं मैनेजेरियल (व्यक्तिगत स्तर पर)**– इस स्तर पर उच्च स्तर के नवीन विचारक, सृजक प्रबन्धक तथा प्रशासक आते है। इनमें व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायित्वों को निवर्हन करने वाले, नीति बनाने वाले और उच्च स्तर की शिक्षा प्राप्त लोग आते है।

2) **प्रोफेशनल एवं मैनेजेरियल**–इस समूह में ऐसे लोग आते है जो कि अपने एवं दूसरे के मध्य उत्तरदायित्व निर्धारण को माध्यम बनने, नीतियों के विश्लेषक और स्नातक स्तर से अधिक शिक्षा रखने वाले व्यक्ति आते हैं।

3) **अर्ध–व्यावसायिक तथा लघु व्यवसाय**–इसमें वे लोग आते है जो अन्य लोगों के लिये कम उत्तरदायित्व, स्वयं अपनी नीति बनाना (छोटे उद्योगों के लिये और हाईस्कूल, इण्टर तथा टेक्निकल स्कूल तक की शिक्षा प्राप्त होते हैं।

4) **दक्ष**–इस स्तर पर किसी विशेष स्तर पर दक्षता प्राप्त अनुभवी लोग आते हैं।

5) **अर्ध दक्ष**–इसमें कुछ प्रशिक्षण एवं अनुभव प्राप्त लोग होते है और वर्ग 4 में रखे जाते हैं।

6) **दक्षता विहीन**–इसमें किसी विशेष प्रशिक्षण शिक्षा दक्षता की आवश्यकता नही रखने वाले व्यवसाय आते है।

रो के अनुसार आवश्यकताओं एवं रूचि के उदय के कारण–वंशानुक्रम किसी व्यक्ति के क्षमता के सभी गुणों के विकास में माध्यम का भूमिका निभाते है। वंशानुक्रम से प्राप्त विशेषतायें अपने वास्तविक स्वरूप को पहुँच पायेंगी या नहीं यह बहुत कुछ लिंग जाति, सामाजिक, आर्थिक परिस्थिति तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर निर्भर करता है।

- रूचि, अभिवृत्ति एवं व्यक्तित्व के अन्य चर कुछ वंशानुक्रम के साथ व्यक्तिगत अनुभवों पर भी आधारित करते है। और जिस क्षेत्र में बिना प्रयास ही उसका ध्यान चला जाये वह आगे चलकर उसकी रूचि को निर्देशित करते हैं।
- जो भी आवश्यकतायें लगातार संतुष्ट की जाती है वे अचेतन प्रेरक नहीं बनती।
- जिन आवश्यकताओं को कमतर संतुष्टि मिलती है वे बाद में भुला दी जाती है। और यदि मुख्य आवश्यकता के ऊपर आने पर बाधा बनती है वे फिर आगे आकर प्रेरकों के मध्य बाधा बनती है।

- जिस आवश्यकता पर संतुष्टि देर से होती है और वे अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरक बन जाते है। आवश्यकता के स्तर पर ही संतुष्टि का आनन्द निर्भर करता है।

प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

3. रो ने व्यवसायों को कितने संगठनों में बॉटा?

....

4. जो आवश्यकतायें कम संतुष्ट हो पाती है वे क्या करती है?

....

8.5 हॉलैण्ड की व्यावसायिक व्यक्तित्व एवं कार्य वातावरण का सिद्धान्त–

हालैण्ड का यह सिद्धान्त पूरी तरह से उसके मिलिटरी में परिचय साक्षात्कार के रूप में प्राप्त अनुभव से प्रभावित है। उसके अनुसार व्यक्ति अपने कार्य पर्यावरण एवं व्यक्तित्व के कारण ही विभाजित किये जा सकते हैं। इस सिद्धान्त के माध्यम से उसने यह खोजने का प्रयास किया कि व्यक्ति की व्यावसायिक समस्याओं को सुलझाने का सुलभ कार्य किया जा सकता है।

इस सिद्धान्त में बहुत ही साधारण, व्यवहारिक एवं मापिक आयाम हैं। यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि व्यावसायिक रूचि व्यक्तित्व का एक पहलू है अतः व्यक्तित्व गुण विद्यालय विषयों के महत्व देने, पाठ्येत्तर क्रियाकलापों के आयोजन, आदतों व कार्यो तथा वृत्तिक रूचि आदि व्यक्तित्व प्रदर्शन के ही भाग है।

प्रकृति–यह सिद्धान्त प्रकृति में संरचनात्मक एवं अंतक्रियात्मक है। उनके अनुसार–

- किसी विशेष वृत्ति का चयन व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति/प्रदर्शन है जो अचानक नही वरन् अवसर मुख्य भूमिका निभाता है।
- किसी एक वृत्तिक विकास समूह में सामान्य व्यक्तित्व एवं समान इतिहास तथा समान व्यक्तित्व विकास होता है।
- एक ही जैसी व्यक्तित्व की विशेषताओं के कारण वे समस्या एवं विशेष परिस्थिति में एक जैसी प्रतिक्रिया करते है।
- व्यावसायिक लब्धि, स्थिरता एवं संतुष्टि व्यक्तित्व एवं वृत्तिक वातावरण के मध्य अन्तर्सम्बन्ध पर निर्भर करता है।

मान्यताएँ–यह सिद्धान्त इन बातों पर निर्भर करता है–

उद्योगी एवं परम्परागत। जिस विधि से व्यक्ति अपनी सम्बन्ध वातावरण से बनाता है वही उसका प्रकार तय कर देता है।

- इसी प्रकार छहः प्रकार के वातावरण होते हैं– यथार्थ, अन्वेषणात्मक, कलात्मक, सामाजिक, उद्यमी एवं परम्परागत। वास्तव में ये वातावरण मनुष्य के कारण ही बनते हैं। और मनुष्य अपने वातावरण के कारण वैसा व्यक्तित्व वाला बन जाता है।
- लोग ऐसे वातावरण के खोज में रहते है जहाँ पर उनके कौशल क्षमता, अभिवृत्तियों के प्रदर्शन तथा मूल्यों को संरक्षण मिले। इसका अभिप्राय है एक जैसे व्यक्तित्व वाले लोग एक साथ ही रहते है।
- व्यवहार व्यक्तित्व एवं वातावरण के परिणामस्वरूप ही सुनिश्चित होते है।

छह वातावरण प्रतिमान–हॉलैण्ड वास्तव रूप में विश्वास करते थे कि व्यक्ति इनमें से किन्ही एक का सदस्य हो जाता है।

1) यथार्थवादी वातावरण–यह वातावरण व्यक्ति को अपने तरीके से परिस्थितियों का आंकलन कर अधिक से अधिक लाभ एवं धन कमाने के लिये प्रेरित करता है।

2) अन्वेषणात्मक वातावरण–यह वातावरण व्यक्ति को वातावरण में अपने अवलोकन, अन्वेषण, सैद्धान्तीकरण करते हुये उपस्थित परिस्थिति को आंकलन कर पद एवं प्रतिष्ठा दिलवाता है।

3) कलात्मक वातावरण–यह वातावरण व्यक्ति को कलात्मक एवं सृजनात्मक मूल्यों की उत्पत्ति हेतु प्रोत्साहित करता है।

4) सामाजिक वातावरण–यह वातावरण किसी व्यक्ति को सामाजिक क्रियाओं को करने एवं उनसे सम्बन्धित अपनी प्राथमिकताओं के निर्धारण हेतु व्यक्ति को प्रेरित करता है।

5) उद्यमी वातावरण–यह वातावरण व्यक्ति को चुनौतियाँ लेते हुये कार्य करने एवं नवीन गतिविधियों में संलग्न रहने तथा मूल्यों के निर्धारण हेतु अभिप्रेरित करता है।

6) परम्परागत वातावरण–यह वातावरण जो कि प्राप्त आंकड़ों, सूचनाओं पर आश्रित होता है सम्पूर्ण गतिविधि व्यक्ति के इन विद्यमान सत्यों के प्रति अविश्वास के इर्द–गिर्द घूमता है।

वृत्तिक चयन प्रथम एवं द्वितीय मान्यताओं के समन्वयन के रूप में–जिस व्यक्ति का अनुस्थापन जिस तरह के वातावरण एवं व्यक्तित्व में हुआ उसे उसी प्रकार के वृत्ति चयन में सुलभता होती है वहीं दूसरी ओर यदि व्यक्ति का अनुस्थापन एक से अधिक वातावरण में हो गया है तो वह किसी एक को चुनने में भ्रमित होगा। वही उसे समायोजित होने में भी कठिनाई होगी। यदि किसी एक क्षेत्र का अनुस्थापन अच्छी तरह से हो जाये तो उस प्रकृति के वृत्ति में उसका निर्णय विकास एवं समायोजन अच्छी प्रकार से होगा।

निर्देशन के आधार–हॉलैण्ड ने लोगों के व्यक्तित्व एवं वातावरण की विभिन्नता को जानने हेतु एक ''सेल्फ डायरेक्टड सर्च इन्वेन्टरी'' बनायी है जिसमें आकलन छह

आयामों में होता है। अन्त में व्यक्ति के वास्तविक एवं प्रभावी अनुस्थापन की पहचान कर उसे वैसे ही वृत्ति चयन हेतु निर्देशन देना चाहिए।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

5. हॉलैण्ड सिद्धान्त की मुख्य बात क्या है?

....

6. हॉलैण्ड ने कौन से छह वातावरण प्रतिमान बताये है?

....

8.6 गिंजबर्ग का सिद्धान्त

गिंजबर्ग ने वृत्तिक विकास की अवस्थाओं को सावधानी पूर्वक विभाजित किया।

गिंजबर्ग को अपनी प्रारम्भिक शोध से चार वस्तुनिष्ठ चर प्राप्त हुये जो कि वास्तविक वृत्तिक चयन के लिये उत्तरदायी होते है।

- पृथक चर वास्तविक कारक के रूप में माना गया जो कि व्यक्ति विशेष को विविध वातावरण में भी एक विशेष व्यवसाय चयन हेतु अभिप्रेरित करता है।
- शिक्षा की व्यापकता भी व्यवसाय चयन पर प्रभाव डालती है।
- व्यक्तित्व एवं भावात्मक संरचना भी व्यक्ति के व्यावसायिक चयन को प्रभावित करती है।
- व्यक्तिगत मूल्य भी वृत्तिक चयन को प्रभावित करते हैं।

गिंजबर्ग के अनुसार वृत्तिक चयन प्रक्रिया की मुख्य अवस्थायें–

1) **फैन्टेसी पीरियड/कल्पनावस्था**–इस अवस्था में बालक अपनी खेल एवं कार्य की रूचि के आधार पर विभिन्न व्यवसायों को चुनता है जो बार–बार बदलता रहता है। उन्हें वह आनन्द के लिये करता है।

अनुमान अवस्था–यह अवस्था 11 से 18 वर्ष के बीच मानी जाती है जिसे अनेक उप अवस्थाओं में बॉटा गया है।

1– **रूचि अवस्था**–यह अवस्था 1 से 12 वर्ष की आयु के मध्य आती है जब बच्चा वृत्ति चयन की दिशा को समझने का प्रयास करने लगता है। इसे हम वह शीशा की आयु कह सकते है जिसमें बच्चा क्या चाहता है क्या नहीं चाहता उसमें अन्तर करना जान जाता है इस पर किशोरावस्था में हो रहे शारीरिक व मानसिक परिवर्तनों का भी प्रभाव पड़ता है।

2) **क्षमता अवस्था**–इस आयु में बालक 12–14 वर्ष की आयु में पहुँचता है। इसमें बालक अपने क्षमता को किसी व्यवस्था या वृत्ति के अनुरूप रखकर समझने का

प्रयास करने लगता है।

3) मूल्य अवस्था–यह अवस्था 15 से 16 वर्ष की आयु में आती है। इस समय तक बालक अपने वृत्तिक चयन मे विविधता लाने का प्रयास करने लगता है। बच्चा अपने मूल्यों एवं मानवता को सार्थक रखते हुये व्यवसाय चयन की ओर उन्मुख होता है। इस अवस्था में बालक अपने जीवन का सबसे अधिक समय व्यवसाय चुनने में लगाता है और इसके साथ ही वह इस बात पर सचेत हो जाता है कि अब उसे कोई एक व्यवसाय चुन लेना चाहिये।

4) परिवर्तन अवस्था–इस आयु तक आते–आते अनुमान अवस्था समाप्ति की ओर होती है इस समय तक परिपक्वता आ जाती है। यहॉ पर आने के पश्चात् व्यवसाय चयन की अनिवार्यता अधिक समझ में आने लगती है। इसमें बालक विभिन्न व्यवसायों के आर्थिक परिप्रेक्ष्य को भी समझने लगता है।

वास्तविक अवस्था–यह आयु 18 वर्ष की आयु के पश्चात् व्यवसाय प्राप्त करने तक चलता रहता है इसमें अनेक प्रकार की विशिष्टता किसी व्यवसाय विशेष में प्रशिक्षण लेने से आती है। यह फिर तीन अवस्थाओं में विभाजित किया गया है।

1) अन्वेषण काल–यह अवस्था पूर्व में निर्धारित व्यावसायिक लक्ष्यों एवं नवीन लक्ष्यों के मध्य एक दीवार की तरह होती है। वैसे व्यक्ति अपनी कॉलेज जीवन को स्वतन्त्रता पूर्वक जीता है परन्तु फिर भी वह अपने जीवन मे वास्तविक वृत्ति चयन की सोच पर भी कायम रहता है।

2) ठोसीकरण–इस अवस्था में विद्यार्थी अन्तिम वृत्ति चयन की ओर उन्मुख हो जाता है और वो इसे अपना लक्ष्य मानकर उस बिन्दु पर ठोस होने लगता है। इस अवस्था में भी किसी भी मुख्य कारण से विद्यार्थी अपने वृत्ति चयन को बदल देता है।

3) विशेषीकरण अवस्था–यह वह अवस्था है जिसमें विद्यार्थी एक विशेष वृत्ति के लिये अपने आपको तैयार करने का निश्चय कर लेता है।

जिंजबर्ग के सिद्धान्त का सामान्य प्रत्यय–इस सिद्धान्त ने धीरे–धीरे उन सभी अवस्थाओं का वर्णन किया है जिसमें व्यक्ति विशेष वास्तविक वृत्तिक चयन की ओर उन्मुख हो जाता है। दूसरा इस सिद्धान्त में बालक की क्षमता को बढ़ने व पहचानने की शक्ति के साथ वृत्तिक चयन प्रक्रिया को विवेचना व संकल्पना की गयी है। एक मुख्य बात इस सिद्धान्त में यह भी है कि व्यवसाय चयन में व्यक्तित्व के दो प्रकार–कार्य प्रधान एवं आनन्द प्रधान बताये है और यही व्यक्ति के वृत्ति चयन को प्रभावित करते हैं।

मार्गदर्शन की विधि–गिंजबर्ग के अनुसार जीवन के विविध चरणों में हो रहे वृत्तिक विकास के साथ ही उसके अनुरूप निर्देशन देने से ही सकारात्मक परिणाम निकलेगा। शिक्षकों एवं अभिभावकों को विविध वृत्ति चयन के चरणों की विशेषताओं के अनुसार ही विद्यार्थी को सहयोग देना चाहिये।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

7. वृत्तिक चयन को प्रभावित करने वाले चार चर कौन से है?

....

8.7 वृत्तिक अध्ययन विधियाँ

औद्योगिक विकास की गति को देखते हुए भारतीय समाज में कई प्रकार के व्यवसायों के अवसर उभर रहे हैं। इंजीनियरिंग, टेक्नोलॉजी, सूचना प्रौद्योगिकी, उद्योग, वाणिज्य, प्रबन्ध व्यवस्था, चिकित्सा एवं सामान्य जन सेवाओं के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के कुशलता प्राप्त सुप्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकताएं दिन–प्रतिदिन बढ़ रही हैं। इन विशिष्ट तथा सामान्य दोनों अनुक्षेत्रों में किस प्रकार के व्यवसाय प्राप्त हैं, उनमें कैसी प्रतिभा एवं कार्य–निपुणता अपेक्षित है, इनके बारे में वैज्ञानिक विवरण उपलब्ध कराने की बड़ी जरूरत है। हमारे विश्वविद्यालयों के मनोविज्ञान विभागों तथा युवा सहायता से जुड़ी सेवाओं एवं रोजगार केन्द्रों की यह सीधी जिम्मेदारी बन जाती है कि वे समय–समय पर भारतीय परिस्थितियों में विकसित व्यवसाय के विविध अवसरों पर सर्वेक्षण करते रहें तथा उनके लिए निर्धारित योग्यता–स्तरों तथा अपेक्षित कशुलताओं के बारे में विस्तारपूर्वक जानकारियां विवरण–पुस्तिकाओं के माध्यम से देने की कोशिश करें।

व्यवसायों के लिये उपलब्ध अवसरों का पता लगाने हेतु राज्य स्तरों पर कुछ गिने–चुने रोजगार–निदेशालयों की स्थापना भी की गई है। इस सन्दर्भ में 'व्यावसायिक शिक्षा' के कार्यक्रमों पर ध्यान दिया जा रहा है। किन्तु जैसा कि मानवीय संसाधन मंत्रालय द्वारा प्रकाशित 'प्रोग्राम आफ ऐक्शन' (1986 ई0) में कहा गया था, 'विविध क्षेत्रों की प्रबन्ध व्यवस्था अलग अलग रूप में कार्यरत है तथा उनमें राष्ट्रीय क्षेत्रीय या राज्य स्तरों पर शायद ही किसी प्रकार का समन्वय उपलब्ध है।' (अनुदित) व्यवसायों की अध्ययन विधियों में मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं–साक्षात्कार विधि, प्रेक्षण विधि, सर्वेक्षण विधि तथा केस–अध्ययन विधि। साक्षात्कार विधि के तहत विभिन्न उद्यमों के प्रबन्धकों तथा उद्योगपतियों से मिलकर व्यवसायों की नई सम्भावनाओं, वर्तमान स्थितियों तथा उनमें अपेक्षित कर्मचारियों आदि का जायजा लिया जाता है। प्रेक्षण विधि के अन्तर्गत विविध व्यवसायों में कार्य करने वाले भिन्न स्तरों के व्यवसाय कर्मियों की कार्य पद्धित को देखकर उनमें अपेक्षित प्रबन्ध कुशलताओं तथा वास्तविक रूप में की जाने वाली संक्रियाओं का अध्ययन अभीष्ट होता है। सर्वेक्षण विधि द्वारा विभिन्न राज्यों तथा अंचलों में उपलब्ध उद्यमों, उनकी परिवर्तित परिस्थितियों तथा उनकी विकासशील सम्भावनाओं का पता लगाया जाता है जिससे व्यावसायिक शिक्षा सम्बन्धी नीतियों को वस्तुनिष्ठ आधार प्रदान किया जा सकें। केस अध्ययन विधि के माध्यम से विशिष्ट व्यवसायों तथा

यावसायिक संकुलों (इन्डस्ट्रिअल काम्पलेक्स) का गहराई में अध्ययन किया जाता है जेससे उनकी समस्याओं तथा उनकी जटिलताओं की पैमाइश सही ढंग से हो सकें।

वृत्तिक के अध्ययन में अपेक्षित सावधानियाँ

व्यवसायों की नित्य बढ़ती हुई सूची एवं उनके बारे में प्रस्तुत विज्ञापनों तथा विवरणों पर विशेष दृष्टि रखनी चाहिए जिससे उनके बारे में सही ढंग से सूचनायें संकलित करने में मदद मिल सके।

1. व्यवसायों में अपेक्षित कौशलों एवं रोजगार हेतु निर्धारित अर्हता एवं अन्य शर्तों को अत्यन्त विशुद्धतापूर्वक व्यक्त करना आवश्यक है।
2. व्यवसायों के विभिन्न स्तरों पर प्रोन्नति एवं बोनस आदि की सुविधाओं के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेना चाहिए।
3. आवश्यकता पड़ने पर व्यवसाय में लगे कर्मचायिों तथा उनके प्रबन्धकों की राय जानने हेतु व्यवसाय सम्बन्धित मतावली (ओपिनियनेअर), प्रश्नावली (क्वेश्चनेयर) या साक्षात्कार आदि का प्रयोग करना चाहिये।
4. व्यवसायों के अध्ययन में वैज्ञानिकता एंव विश्वसनीयता लाने की दृष्टि से कई अभिकरणों को समन्वित रूप में प्रयास करना चाहिये।

वृत्तिक चयन–

व्यवसायों का चुनाव कई कारक तत्वों पर निर्भर होता है। यहाँ स्मरण रखना होगा कि जैसे–जैसे सामाजिक व्यवस्था बदलती गई तथा उसकी संरचना में जटिलता आती गई, गतिशील समाज की संरचना में व्यक्ति द्वारा अपने व्यवसायों के चुनने की प्रक्रिया में भी तब्दीली होती गई। भारतीय समाज में यह विशेषता रही है कि पिता के व्यवसाय के आधार पर पुत्र अपने व्यवसाय का चुनाव प्रायः करता रहा है। किन्तु विगत 50 वर्षो में इस दृष्टि से भारी सामाजिक परिवर्तन दिखाई पड़ता है। अब पूरे सामाजिक एवं व्यावसायिक पर्यावरण का जादुई प्रभाव व्यक्ति की आकांक्षा एवं उसके प्रेरणा स्रोतों को तुरन्त बदल देता है।

फोर्ड तथा **बाक्स** ने व्यावसायिक चयन में प्रयोजन पक्ष को विशेष महत्व दिया है। उनकी दृष्टि में अब इस बात पर आम सहमति है कि "व्यावसायिक चुनाव की घटना को एक प्रकार की विवेकपूण्र प्रक्रिया माननी होगी जिसके अन्तर्गत व्यक्ति अपने द्वारा चाहे जाने वाले लक्ष्यों तथा उन्हें प्राप्त करने की समभावनाओं को तौलता है।"[1] फोर्ड ने बाद में चलकर जार्ज होमन्स के साथ इस सम्बन्ध में दो आधारभूत प्रतिज्ञप्तियाँ बनाई जो इस प्रकार हैं–

वृत्तिक चयन को प्रभावित करने वाले तत्व

पी0एम0ब्लाऊ तथा उनके अन्य सहयोगियों ने इस सन्दर्भ में किये गये शोधों के तहत यह पाया कि व्यक्ति के व्यवसाय चयन को प्रभावित करने में दो प्रकार के कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं। **प्रथम**, व्यक्ति के वरीयता अधिक्रमों का जिनमें

उसके द्वारा विभिन्न विकल्पों के जरिये मिलने वाले लाभों या पुरस्कारों का मूल्यांकन शामिल है। व्यक्ति जिस तरह की सुविधाओं, जीवन मूल्यों तथा स्थितियों एवं स्थानों को प्राप्त करने का स्वप्न संजोता है, वह जिस प्रकार के जीवन स्तर की कल्पना करता है, इससे उसकी व्यवसाय चयन की प्रक्रिया घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित है। हां, इतना अवश्य है कि हमारे समाज की विषम परिस्थिति को देखते हुये यह कह सकना सम्भव नही है कि हर युवा को उसके स्वप्न के अनुकूल रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता है। **द्वितीय**, प्रत्येक विकल्प को प्राप्त करने सम्बन्धी व्यक्ति की प्रत्याशा जिससे तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी उद्यम (व्यवसाय) विशेष को प्राप्त कर सकने में कितना आश्वस्त महसूस करता है वह आसानी से किसमें प्रवेश पा सकता है, ये तत्व उसके व्यवसाय चयन को सद्यः प्रभावित करते हैं। भारतीय सन्दर्भ में यह प्रायः देखा गया है कि निम्न मध्य परिवारों के बच्चे हर सुलभ व्यवसाय में घुसने की कोशिश करते रहते हैं।

व्यवसाय चयन की प्रक्रिया व्यक्ति के परिवार के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर, उसके अभिभावकों की शैक्षिक पृष्ठभूमि तथा शहरी ग्रामीण पर्यावरण की सांस्कृतिक चेतना से भी प्रबल रूप में प्रभावित रहती है। हमारे यहां यह तत्व अधिक संगत प्रतीत होता है। यद्यपि इस बात को समर्थन प्रदान करने हेतु शोध–साक्षियां का अवलम्बन सम्भव नही है, फिर भी अपने अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न एवं शिक्षित परिवारों के बच्चे प्रायः सफेद–पोश व्यवसायों की ओर अधिक आकर्षित होते हैं, जबकि निम्न स्तरीय परिवार वाले बच्चे हाथ के काम वाले धन्धों का चुनाव प्रायः कच्ची उम्र में ही जीविकोपार्जन में मदद की दृष्टि से कर लेते हैं।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

8. वृत्तिक अध्ययन की आवश्यकता क्यों हुयी ?

....

9. वृत्तिक अध्ययन में किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

....

8.8 स्थानन तथा अनुवर्तन

व्यवसाय–चयन के बाद उपयुक्त रोजगार में प्रवेश दिलाने का कार्य निर्देशन की जिस विशिष्ट सेवा के तहत सम्पन्न होता है उसे स्थानन (प्लेसमेन्ट) का नाम दिया जाता है। इस सम्बन्ध मे विशेष विवरण चौथे अध्याय में दिया जा चुका है। वैसे निर्देशन के अतिरिक्त शिक्षा एवं प्रशिक्षण की अनेक ऐसी संस्थायें हैं जिनमें 'स्थानन–कार्यालय'

कायम किये गये हैं तथा जिनके माध्यम से सेवार्थी को उचित प्रकार के रोजगार दिलाने की व्यवस्था है।

रोजगार में प्रविष्ट हो जाने पर व्यक्ति की उसमें समंजन की मात्रा तथा समंजन की विशेष आवश्यकतायें क्या हैं, इसका मूल्यांकन करने की दृष्टि से एक अन्य प्रकार की महत्वपूर्ण सेवा का प्रावधान किया जाता है जिसे अनुवर्तन (फॉलोअप) के नाम से पुकारा जाता है। इसके तहत व्यक्ति की रोजगार में उपलब्धि, सहयोग भावना, सामंजस्य एवं सन्तुष्टि आदि का पता लगाया जाता है। इस बारे में विस्तारपूर्वक विवरण चौथे अध्याय में उपलब्ध कराया गया है। अनुवर्तन का उपयोग स्थानन की प्रभाविता के मूल्यांकन तथा इस बारे में अपेक्षित प्रतिपुष्टि प्रदान करने की दृष्टि से प्रायः किया जाता है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, भारतीय सन्दर्भों में रोजगार की समस्या दिन–प्रतिदिन विकट रूप धारण करती जा रही है। इधर शिक्षित बेरोजगारी में परिमाणात्मक दृष्टि से भारी वृद्धि हुई है। नई शिक्षा नीति के तहत डिग्री को जांब से वियोजित करने की पहल इस परिप्रेक्ष्य में कुछ सटीक तो लगती है, किन्तु हमारी शैक्षिक एवं नियोजन की परिस्थितियां इतनी विषम बन चुकी है कि इसे एक सतही सुक्ति की संज्ञा दी जा सकती है। इस प्रकार 'स्थानन' तथा 'अनुवर्तन' दोनों ही व्यवस्थाएं हमारे यहां अपने व्यावहारिक पक्षों में अत्यन्त दुर्बल एवं अप्रभावी साबित हुई है। जहां 'स्थानन' में वस्तुनिष्ठता का अभाव होने के फलस्वरूप नियोक्ताओं द्वारा आपत्तिजनक तथा अवांछनीय तरीकों के अपनाये जाने की आम शिकायतें मिलती हैं, वहां अनुवर्तन में उद्देश्यहीनता, औपचारिकता–निर्वाह तथा रस्म–अदायगी का अभियोग आसानी से लगाया जा सकता है। इन दोनों ही सेवाओं को अर्थपूर्ण बनाने के लिये यह अपेक्षित है कि भारतीय शिक्षा व्यवस्थाओं तथा उनसे सम्बन्धित कार्य जगत तथा व्यवसाय के अवसरों मे संगति लाई जाये तथा 'शिक्षित बेरोजगार' एवं 'अल्प रोजगार' जैसी असन्तुलित विकास की बढ़ती हुई प्रवृत्ति का पर्याप्त समाधान ढूँढ़ा जाए।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

10. स्थानन किस सेवा को कहते है?

....

8.9 कार्य विश्लेषण

जे0डी0हेकेट ने भी कार्य विश्लेषण के बारे में इसी तरह का स्पष्टीकरण दिया है। उनके अनुसार "इस विधि के अन्तर्गत कार्य (जॉब) के आवश्यक अंशो का निर्धारण होता है तथा कर्मचारी के उन गुणों का पता लगाया जाता है।" दूसरे शब्दों में,

कार्य–विश्लेषण के तहत 'कार्य' तथा 'कर्मचारी' दोनों का अध्ययन महत्वपूर्ण होता है। टेड तथा मेटकाफ ने कार्य–विश्लेषण को वैज्ञानिक प्रक्रिया का परिसूचक माना है। उनके मतानुसार, "कार्य–विश्लेषण एक वैज्ञानिक अध्ययन है। इसमें कार्य से सम्बन्धित उन सभी तथ्यों के बारे में विवरण प्रस्तुत किया जाता है जो इसकी (कार्य की) विषय–वस्तु तथा उसे प्रभावित करने वाले कारक तत्वों पर प्रकाश डालते हैं।" विश्लेषण से उपयुक्त व्यवसाय चुने जाने की सम्भावना बढ़ती है तथा व्यवसाय–चयन की प्रक्रिया में एक ठोस वस्तुनिष्ठ आधार का समावेश होता है।

कार्य–विश्लेषण के उद्देश्य

कार्य–विश्लेषण का प्रयोग कई क्षेत्रों में होता है। निर्देशन तथा उपबोधन के अतिरिक्त इसे प्रशिक्षण के कार्यक्रमों में कुशलता लाने की दृष्टि से अधिक अपनाया गया है। मैंने ने कार्य–विश्लेषण के चार लक्ष्यों का स्पष्टतः उल्लेख किया है। वे हैं–

प्रथम, कार्य करने की विधियों में सुधार लाने की दृष्टि से।

द्वितीय, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा के लिये कार्य–विश्लेषण जिससे इन सेवाओं को उद्देश्यमुखी बनाया जा सकें।

तृतीय, कर्मचारियों के कुशल एवं प्रभावी प्रशिक्षण के लिये कार्य–विश्लेषण जिसका लक्ष्य प्रशिखण–कार्यक्रमों को मितव्ययी एवं चुस्त बनाना है।

चतुर्थ, सेवाओं (नौकरियों) के चुनाव, उनमें स्थानान्तरण, प्रोन्नति एवं सम्यक, स्थानन हेतु कार्य–विश्लेशण जिसके माध्यम से उपयुक्त व्यक्ति को उपयुक्त स्थान दिलाना मुख्य मुद्दा होता है।

कार्य–विश्लेषण का अनुप्रयोग

1. कार्य की श्रेणी तथा वर्गीकरण के निर्धारण हेतु।
2. वेतन निर्धारण तथा उसके मानकीकरण की दृष्टि से।
3. अन्य विवरण सम्बन्धी व्यवसाय के लिए।
4. कार्य में अपेक्षित कर्त्तव्यों तथा दायित्यों का स्पष्टीकरण प्रदान करने हेतु।
5. स्थानान्तरण तथा प्रोन्नति की स्थितियों में प्रयोग हेतु।
6. उचित मांगों का अभियोजन करने की दृष्टि से।
7. कर्मचारियों तथा प्रबन्धकों में विभिन्न स्तरों के सर्वसाधारण अवबोध विकसित करना।
8. प्रोन्नति का परिभाषीकरण एवं स्वरूप निर्धारण।
9. सम्भावित दुर्धटनाओं की खोज।
10. दोष–युक्त कार्यविधियों की ओर संकेत करना।
11. उपकरणों की देखभाल के लिए।
12. समय तथा गति के अध्ययन हेतु।

13. वरिष्ठ अधिकारियों की सीमाओं का निरूपण करने हेतु।

14. वैयक्तिक योग्यता स्तर की ओर संकेत करने के लिए।

15. व्यक्तिगत असफलता के कारणों का निदान करना।

16. शिक्षा तथा प्रशिक्षण की परिस्थितियों में अनुप्रयोग हेतु।

कार्य विश्लेषण के विविध अनुप्रयोगों को देखते हुए यह कहना सम्भव है कि इसके प्रशिक्षण के माध्यम से प्रशिक्षण–व्यवस्थाओं, व्यवसाय संस्थानों तथा सामाजिक प्रतिष्ठानों की कार्य–कुशलताओं, कार्य–पद्धतियों तथा उनकी निष्पादन क्षमाताओं में अपेक्षित सुधार लाने में मदद मिलती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

11. कार्य विश्लेषण क्या हैं?

....

12. कार्य विश्लेषण का मूल उद्देश्य क्या है?

....

8.10 कार्य–विश्लेषण का महत्व एवं विधियाँ

अब तक कार्य–विश्लेषण की कई विधियां प्रयुक्त हुई है। उनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं–

1. वैयक्तिक मनोलेखन विधि।
2. प्रश्नावली विधि।
3. कार्य मनोलेखन विधि।
4. परीक्षण द्वारा कार्य–विश्लेषण।
5. क्रिया द्वारा कार्य–विश्लेषण।
6. समय तथा गति का अध्ययन।
7. कौशल विश्लेषण।

आगे इनके बारे में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत हैं–

1. वैयक्तिक मनोलेख विधि– इसके तहत सर्वप्रथम व्यवसाय के तथाकथित सफल व्यक्तियों के गुणों की सूची बनाई जाती है। सफल व्यक्ति के पारिवारिक इतिहास, व्यक्तिगत विकास, स्मृति, भाषा कुशलता आदि पर विचार करते हुए उसकी मानसिक प्रक्रियाओं तथा मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का विश्लेषण किया जाता है। विश्लेषण की पूरी प्रक्रिया में साक्षात्कार, प्रेक्षण तथा परीक्षण आदि का प्रयोग होता है तथा

खास–खास व्यक्तियों की विशेषताओं को चित्रित करने वाले मनोलेख (साइको–ग्राफ) निर्मित किये जाते हैं। इस प्रकार व्यवसाय में चयन हेतु ऐसे मनोलेखों की सहायता ली जाती है। इस सम्बन्ध में विशेष सावधानी के प्रति आगाह करते हुए वाइटेल्स ने कहा है कि, "किसी कार्य में सफलता प्राप्त करने की दृष्टि से आवश्यक विशेषकों के निध ारण हेतु यह अपेक्षित है कि व्यक्ति पर न ध्यान देकर कार्य में निहित उन संक्रियाओं का अध्ययन किया जाये जिसे करने में वह (व्यक्ति) प्रवृत्त है।"

2. प्रश्नावली विधि– व्यवसाय से सम्बन्धित कार्यों, दायित्वों एवं जरूरतों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिये प्रश्नावली विधि को सबसे अधिक उपयोगी समझा जाता है। कार्य विश्लेषण हेतु प्रश्नावली विधि के प्रयोग का विशेष श्रेय उपमैने को दिया जाता है जिन्होंने अपनी प्रश्नावली को विविध व्यक्तियों, कर्मचारियों के संगठनों तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण में लगे लोगों को दिया। इसके तहत 121 व्यवसायों में कार्य करने वाले व्यक्तियों का अध्ययन किया गया। इसमें पूछे गये।

उलरिच ने ऐसी प्रश्नावली को निर्मित किया जिसके अनुप्रयोग से उच्च व्यवसायों के लिए अपेक्षित विशेषताओं तथा आवश्यक गुणों का मापन किया जा सकें। इसमें प्रयुक्त प्रश्नों को चार वर्गों में रखा गया–भौतिक अभिक्षमता, मनोभौतिक अभिक्षमता, मानसिक अभिक्षमता तथा अनुकूलनशीलता।

यहां ध्यान देना होगा कि प्रश्नावली विधि की मुख्य सीमाओं में इसका आत्मनिष्ठ होना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके माध्यम से विशिष्ट गुणों की सूचना सही रूप में होना सम्भव नही है। साथ ही, उत्तरदाता कर्मचारियों द्वारा प्रदत्त उत्तरों को पूर्णतया शुद्ध उत्तर नही माना जा सकता।

3. कार्य मनोलेखन विधि– व्यावसायिक योग्यताओं एवं अपेक्षाओं का वैज्ञानिक अध्ययन करने की दृष्टि से तीन बातों पर ध्यान देना पड़ता है। **प्रथम,** विशिष्ट मानसिक योग्यताओं का वर्गीकरण जिसमें मानकीकृत परीक्षाओं का अनुप्रयोग होता है। **द्वितीय,** रेटिंग की मानक तकनीकी का अनुप्रयोग जिसमें कुछ विशेष बिन्दुओं पर जाब के लिए अपेक्षित गुणों का निर्धारण होता है। **तृतीय** प्रशिक्षित प्रेक्षकों द्वारा कार्य (जॉब) में निहित क्रियाओं का प्रत्यक्ष रूप से जांच जिसमें यह पूरी कोशिश होती है कि कार्य की संक्रियाओं का विस्तृत विवरण प्राप्त कर लिया जायें।

4. परीक्षण द्वारा कार्य विश्लेषण— **लिंक** ने इस सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण परीक्षाओं का गठन किया है। परीक्षाओं के निर्माण से पूर्व उन्होंने कार्यों का विश्लेषण किया और ऐसे परीक्षणों का चयन किया जो कार्य से सम्बन्धित योग्यता का मापन करते थे। इसके बाद इन चुने हुए परीक्षणों को ऐसे कर्मचारियों को दिया गया जो कार्य में सबसे अधिक सफल समझे जाते थे। जिन परीक्षाओं में सर्वाधिक अंक आये उनको उस कार्य की योग्यता का मापन करने के लिए चुन लिया गया। इस प्रकार प्रत्येक कार्य के लिए एक परीक्षण माला प्रस्तुत की गई और इसकी सहायता से नये कर्मचारियों की चयन प्रक्रिया में मदद ली गई। बाद में **प्रो0 कार्नर** तथा **हल** आदि ने भी कार्य विश्लेषण के सन्दर्भ में परीक्षणों का अनुप्रयोग किया है।

5. क्रिया द्वारा कार्य विश्लेषण–इस विधि का प्रयोग **चार्टर्स** तथा **हिटले** ने सचिवीय कार्यों में निहित विशेषताओं तथा जिम्मेवारियों के विश्लेषण हेतु किया। कुछ समय बाद **स्ट्रांग** तथा **उरबैक** ने प्रेस में छपाई करने वाले कर्मचारियों का अध्ययन किया और यह देखा कि उन्हें प्रायः बीस से लेकर तीस प्रकार की क्रियायें करनी पड़ती है। इसी प्रकार **किट्सन** ने प्रूफ पढ़ने में प्रूफ रीडर की आंखो की गतियों का अध्ययन किया।

6. समय तथा गति का अध्ययन– गिलब्रेथ को इस विधि का जन्मदाता कहा जाये तो इसमें कोई अत्युक्ति नही होगी। उन्होंने गति अध्ययन के तहत कार्य में निहित क्रियाओं की छोटी से छोटी इकाइयों का नमूना मालूम किया तथा शरीरिक गतियों का विश्लेषण किया। गिलब्रेथ ने सर्वप्रथम अपनी पत्नी के साथ सामान्य प्रेक्षण तथा विराम घड़ी की मदद से समय तथा गति का अध्ययन किया। बाद में चलकर स्वचालित कैमरे का प्रयोग किया गया। इसमें व्यक्ति द्वारा छोटे से छोटे कार्य में लगे समय को अंकित करने तथा प्रक्रम चार्ट निर्मित करने की कोशिश होती है।

7. कौशल विश्लेषण– इसे समय तथा गति के अध्ययन का ही एक विस्तृत रूप माना जा सकता है। इसमें समय तथा गति का अध्ययन कार्य की परिस्थितियों में पाई जाने वाली मनोवैज्ञानिक योगयताओं को दृष्टिगत रखकर किया जाता है। इस विधि का अनुप्रयोग **फेयर चाइल्ड** ने मानसिक व्यापार से सम्बन्धित व्यक्तियों की प्रवीणता का कौशल विश्लेषण करने हेतु किया। बाद में अधिकांश कौशल प्रधान व्यवसायों के अध्ययन के सिलसिले में इसका प्रयोग किया गया है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

13. कार्य विश्लेषण की कौन–कौन सी विधियाँ हैं और कौन सी विधि तुम्हें सबसे अधिक उपयुक्त लगती है?

....

8.11 कार्य–विवरण

इसके तहत सामान्यत उन बातों पर ध्यान दिया जाता है जो कार्यकर्ता या कर्मचारी से अपेक्षित है तथा उसे जिन परिस्थितियों में कार्य करना पड़ता है। **ओटिस** तथा **लेंकार्ट** के अनुसार, 'कार्य–विवरण (जॉब–डिस्क्रिप्शन) के अन्तर्गत उन तथ्यों को संकलित किया जाता है जो कार्य के क्या कैसे तथा क्यों पक्षों पर प्रकाश डालते हैं।' कुछ प्रतिष्ठानों तथा व्यापारिक फर्मो मे इन तथ्यों से सम्बन्धित विवरण सूक्ष्म एवं संक्षिप्त रूप में दिये जाते हैं तथा कतिपय अन्य में इसके बारे मे विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण उपलब्ध होते हैं।

कार्य–विवरण द्वारा कार्य की सामाजिक, भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों, सन्दर्भों तथा सीमाओं का उल्लेख किया जाता है जिससे कार्य के स्थल एवं अन्य भौतिक पर्यावरणजन्य विशेषताओं, स्वच्छता एवं सामान्य स्वास्थ्य की दशाओं, उसमें सह–कर्मियों के सांस्कृतिक कार्य में निहित खतरों तथा उनके लिए **अपेक्षित** सावधानियों का पता चलता है। कार्य में क्या होता है? किस प्रकार के कार्यकर्ता **उसमें** भर्ती किये जाते हैं, कार्य की विशेष शर्तें तथा सुविधाएं क्या हैं, आदि के बारे में निश्चित एवं स्पष्ट जानकारी इस प्रकार के विवरण द्वारा प्राप्त हो जाती है।

आवश्यकता

कार्य विवरण की आवश्यकता कई दृष्टियों से होती है। **निर्देशन–कर्मियों** तथा उपबोधकों को इसी विशेष रूप में जरूरत पड़ती है। **पहला**, इसमें कार्य को भली प्रकार समझने में मदद मिलती है। जिससे निर्देशनकर्मी उचित प्रकार के निर्देशन देने के प्रति प्रवृत्त हो जाते हैं। **दूसरा,** इसमे कार्य के चयन, उसके लिए अपेक्षित प्रशिक्षण तथा व्यवस्थाओं के सम्बन्ध में जानकारी बढ़ती है। **तीसरा,** निर्देशन की प्रक्रिया में सेवार्थी का विश्वास जागृत करने की दृष्टि से भी कार्य–विवरण उपयोगी प्रमाणित होता है। **चौथा,** जॉब के सम्बन्ध में प्रारम्भिक परिचय कराने के लिए भी कार्य विवरण महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

अपेक्षित सूचनायें

कार्य विवरण हेतु प्रायः जिस सूचनाओं एवं तथ्यों के बारे में स्पष्टीकरण की जरूरत होती हैं, वे इस प्रकार हैं–

(1) व्यवसाय के अवसर

(2) व्यवसाय की प्रकृति

(3) व्यवसाय की अपेक्षाएं

(4) फर्म या संस्थान

(5) कार्य–स्थल एवं भौतिक पर्यावरण

(6) सह–कर्मी तथा अन्य अधिकारी

(7) वेतन

(8) भावी सम्भावनाएं

(9) अवकाश एवं छुट्टियां

कार्य विवरण के स्तर

कार्य विवरण को उसके तहत दिये जाने वाले ब्यौरों के अनुसार तीन स्तरों (अवस्थाओं) में रखा जा सकता है। प्रथम, कार्य की पहचान जिसमें कार्य का नाम, वह विभाग जिससे यह सम्बद्ध है, जॉब वर्गीकरण तथा कोड संख्या आदि का ब्यौरा प्रस्तुत किया जाता है। हमारे यहां रोजगार केन्द्रों में दो प्रकार की वर्गीकरण विधियां प्रचलित

हैं। पहला उद्यमों का राष्ट्रीय वर्गीकरण जिसे संक्षेप में एन0सी0ओ0 के नाम से पुकारा जाता है। दूसरा, श्रम का औद्योगिक वर्गीकरण जिसे संक्षेप में आई0सी0एल0 कहा जाता है। अधिकतर रोजगार केन्द्र एन0सी0ओ0 कोड का ही अनुसरण करते है। इसके अनुसार उद्यमों (व्यवसायों) को निम्नलिखित वर्गों में बांटा जाता हैं–

व्यवसायिक कोड	व्यवसाय का विवरण
0	व्यवसायिक, तकनीकी
1	प्रशासनिक, कार्यकारी
2	क्लासिकी तथा सम्बन्धित पेशे
3	सेवक
4	कृषक, मछुआ
5	खनन तथा खुदाई में कार्य करने वाला
6	परिवहन कार्यकर्ता
7 तथा 8	दस्तकार तथा उत्पादन–प्रक्रिया से जुड़े कार्यकर्ता
9	सेवाओ, क्रीड़ा तथा मनोविनोद से सम्बन्ध कार्यकर्ता
10	अप्रशिक्षित (अकुशल) कार्यकर्ता

पहले स्तर पर सम्पन्न कार्य विवरण में उपर्युक्त वर्गीकरण के अनुसार व्यवसाय की श्रेणी तय की जाती है।

द्वितीय, कार्य–संक्षेप जिसमें जॉब से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण कार्य विवरण सार रूप में प्रस्तुत होते हैं। इसमें कार्य का क्षे? तथा उनमें निहित जिम्मेवारियों का वर्णन होता है। इसे प्रस्तुत करने के लिए एक विशेष प्रकार का प्रारूप तैयार किया जाता है जिससे कार्य के सम्बन्ध में स्पष्ट एवं शुद्ध जानकारी दी जा सकें। कार्य–संक्षेप बनाते समय निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये–

(1) कार्य के बारे में दिया गया विवरण संक्षिप्त एवं सही–सही ढंग से दिया जायें।

(2) कार्य का ब्यौरा प्रस्तुत करने हेतु शब्दों का चयन सावधानीपूर्वक करना चाहिये।

(3) कार्य का उद्देश्य पूरी स्पष्टता के साथ अंकित करना चाहिये।

(4) कार्य में निहित महत्वपूर्ण संक्रियाओं तथा प्रकार्यों का सही एवं स्पष्ट यप से उल्लेख होना चाहिये।

(5) कार्य के तहत होने वाले पर्यवेक्षण तथा मूल्यांकन के बारे में स्पष्ट रूप से उल्लनेख कर देना चाहिये जिससे कार्यकर्ता को अपनी सही स्थिति का पूर्वाभास मिल जाये।

तृतीय, निष्पादित कार्य जिसमें कार्य से सम्बन्धित महत्वपूर्ण कामों का ब्यौरा दिया जाता है। यह कार्य के बारे में अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत एंव सोदाहरण विवरण उपलब्ध कराने का अत्युत्तम तरीका है।

कार्य विवरण के उपयोग

जॉब से सम्बन्धित विशेष गुणों तथा प्रकार्यों को प्रकासश में लाना कार्य–विवरण का मुख्य ध्येय होता है जिससे संगठन, प्रबन्ध एवं परस्पर सम्बन्धों के बारे में कठिनाइयों उत्पन्न न हो सकें। इसके तहत जिन प्रमुख विशेषताओं का विवरण देने पर बल दिया जाता है, वे निम्नलिखत हैं–

(1) कार्यकर्ता की शारीरिक दशायें जिसमें जॉब के लिये अपेक्षित स्वास्थ्य दशा, कद, वजन, पेशीय गति, शक्ति तथा शारीरिक बनावट आदि सम्बन्धी ब्यौरा दिये जाते हैं।

(2) संवेदी प्रकारता जिसमें जॉब के लिये आवश्यक संवेदनात्मक क्षमता, जैसे–सुनना, देखना, स्पर्श आदि के बारे में विवरण दिया जाता है।

(3) प्रत्यक्षात्मक क्षमता जिसमें प्रत्यक्षीकरण विषयक गुणों या विशेषताओं का विशेष रूप से उल्लेख किया जाता है।

(4) बौद्धिक योग्यता जिसमें जॉब के लिये कुशल एवं सफल निष्पादन को दृष्टिगत रखकर अपेक्षित न्यूनतम बौद्धिक–योग्यता स्तर के बारे में बताया जाता है। इसके लिये प्रायः बुद्धिलब्धि का उपयोग किया जाता रहा है।

(5) शैक्षिक निष्पत्ति जिसमें कार्यकर्ता की शैक्षिक उपलब्धियों, उनमें अर्जित स्तरों तथा प्रवेश हेतु न्यूनतम शैक्षिक योग्यता का विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इससे केवल निर्देशन कर्मी या उपबोधक को ही मदद नही मिलती बल्कि सेवार्थी (व्यक्ति) भी लाभान्वित होता है।

(6) रूचि स्वरूप जिसमें जॉब की सफलता हेतु आवश्यक रूचियों का उल्लेख होता है। उदाहरणार्थ, जो व्यक्ति 'लाइफ इन्श्योरेन्स' का कार्य करना चाहते हैं उनमें सामाजिक कल्याण के अलावा व्यापारिक मामलों में भी पर्याप्त दिलचस्पी होनी चाहिए। इसी तरह जो मिस्त्री का कार्य करना चाहता है उसे यांत्रिक क्षेत्रों में भी रूचि प्रदर्शित करनी चाहिए।

(7) अभिक्षमता जिसमें जॉब में सफल अभियोजन (समंजन) हेतु आवश्यक अभिक्षमता या विशिष्ट योग्यता का उल्लेख अपेक्षित है।

(8) सामाजिक अभियोजन जिसमें व्यवसायिक सफलता के लिये अपेक्षित सामाजिक समंजन के स्तरों तथा सामाजिक सम्बन्धों का ब्यौरा प्रस्तुत किया जाता है।

(9) सांवेगिक दशाएं जिसमें जॉब के लिए अपेक्षित महत्वपूर्ण सांवेगिक विशेषताओं, यथा–धैर्य, सन्तुलन, जोखिम उठाने का सामर्थ्य, परिपक्वता एवं आवेश पर नियत्रंण आदि का उल्लेख विशेषतौर से होता है।

कार्य विवरण के लिए अपेक्षित शैली

'कार्य–विवरण' के लिये जिस शैली की आवश्यकता होती है उसमें विशेष गुण निम्नलिचित हैं–

(1) विवरण के लिये प्रयुक्त वाक्य छोटे एवं स्पष्ट होने चाहिये। वाक्यों में एकार्थक शब्दों का ही प्रयोग अपेक्षित है।

(2) अनावश्यक रूप में आलंकारिक शैली का अनुप्रयोग वर्जित है। जहां तक सम्भव हो, केवल वर्तमान काल का ही प्रयोग आवश्यक है।

(3) जॉब के लिये अपेक्षित कामों का विवरण विस्तारपूर्वक किन्तु विशिष्ट रूप में होना चाहिए। इसके तहत कार्य में निहित कौशलों, रूचियों तथा उद्देश्यों का ही उल्लेख होना आवश्यक है।

(4) कार्य में प्रयुक्त उपकरणों, मशीनों तथा अन्य यंत्रों का उल्लेख परमावश्यक है जिससे उन्हें ठीक ढंग से उपयोग में लाने हेतु अपेक्षित प्रशिक्षण का संकेत मिल सकें।

(5) जॉब से सम्बन्धित अन्य ऐसे ही व्यवसायों के बारे में भी सन्दर्भित विवरण दे देना चाहिए जिससे कार्यकर्ता एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में सुविधानुसार अदला–बदल कर सकें।

(6) जॉब में निहित प्रोन्नति के अवसरों तथा अन्य सुविधाओं के बारे में भी यथास्थान उचित विवरण प्रस्तुत कर देना चाहिए।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

14. कार्य विवरण क्या है?

....

15. कार्य विवरण का क्या महत्व है?

....

8.12 वृत्तिक सूचना सेवा

विभिन्न व्यवसायों तथा उनमें उपलब्ध अवसरों के बारे में व्यवस्थित, स्पष्ट एवं अद्यतन (अपटूडेट) सूचनाओं की जानकारी जिस संस्था या माध्यम से संक्रमित कराई जाती है, उसे निर्देशन की भाषा में व्यावसायिक सूचना सेवा के नाम से पुकारा जाता है। यहाँ ध्यान देना होगा कि आज के सन्दर्भों में नए–नए उद्यमों एवं व्यवसायों का प्रादुर्भाव बड़ी द्रुत गति से हो रहा है। समाज की जटिलतर व्यवस्थाओं के तहत हर तरह के सुविधाओं का विस्तार एंव उनका संकुल विकसित हो रहा है। ऐसी दशा में व्यवसायों की सूची (इन्वेन्टरी) बनाना, उनका वर्गीकरण आधुनिकतम मानदण्डों के अनुसार करना तथा उनमें रोजगार के अवसरों का जायजा अत्यन्त विशुद्ध रूप में करना व्यावसायिक सूचना सेवाओं के तहत मुख्य ध्येय होता है।

वृत्तिक सूचना सेवा की कार्य पद्धति

विदेशों में खासतौर से जापान, अमेरिका, इंगलैण्ड तथा योरोपीय राष्ट्रों में व्यावसायिक सूचना सेवा की कार्य प्रणाली अत्यन्त सुगठित, चुस्त एवं वैज्ञानिक हैं वहां समुदाय के भीतर पाये जाने वाले उद्यमों की अपटूडेड सूची हर साल प्रस्तुत की जाती है। जिससे सेवार्थी तथा निर्देशन कर्मी उनका उपयोग सूचना सेवा कार्यालयों या केन्द्रों में व्यक्तिगत रूप से जाकर कर लेते हैं। हमारे यहां अभी ऐसी व्यवस्थाएं विकसित नही

हो सकी हैं। व्यावसायिक सूचना सेवा की कार्य पद्धति में निम्नलिखत बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं–

(1) व्यवसायिक सूचना सेवाएं सरकारी तथा गैर सरकारी दोनो रूपों में उपलब्ध होती है। सरकारी तौर पर रोजगार कार्यालयो, व्यावसायिक निर्देशन के केन्द्रों, रेडियों, दूरदर्शन तथा समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं के माध्यम से आधिकारिक सूचनाएं विज्ञापित की जाती है। गैर सरकारी रूप में कई कार्यकर्ता संगठन, निजी संस्थाएं तथा व्यक्ति ऐसा कार्य प्रायः किया करते हैं।

(2) व्यावसायिक सूचनाओं के संकलन हेतु राज्यों तथा केन्द्र के विभिन्न विभागों से सम्पर्क स्थापित किया जाता है तथा उनसे रोजगार सम्बन्धी विवरण प्राप्त किय जाते हैं। इन विवरणों के आधार पर 'व्यावसायिक बुलेटिन' प्रस्तुत की जाती है।

(3) व्यावसायिक सूचनाओं को सही एवं व्यवस्थित परिप्रेक्ष्य प्रदान करने हेतु अनेक व्यावसायिक समुदायों तथा उनसे सम्बद्ध कार्यकर्ताओं एवं विशेषज्ञों के सम्मेलन तथा उनकी कार्य–गोष्ठियां आयोजित की जाती है। उनके तहत व्यावसायिक सूचनाओं सम्बन्धी विवरण को प्रायः अन्तिम प्रारूप देने की कोशिश होती है।

(4) व्यावसायिक सूचनाओं को प्रकाशित करने की व्यवस्था उन्हें समुचित रूप में संचयन का प्रबन्ध तथा उनके विज्ञापन आदि को दृष्टिगत रखकर विशेष प्रकार की पत्र पत्रिकाओं, आडियों एवं वीडियों टेप तथा कम्प्यूटर की सहायता अपेक्षित है।

(5) व्यावसायिक सूचनाओं के प्रसार हेतु उचित मनोवृत्ति (माइण्ड–सेट) विकसित करने की चेष्टा होनी चाहिये। इस दृष्टि से भिन्न भिन्न व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में कार्यरत विशेषज्ञों, प्रबन्ध कर्मियों तथा निर्देशकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

(6) व्यावसायिक सूचनाओं की विश्वसनीयता एवं विशुद्धता पर विशेष ध्यान अपेक्षित है। इसके लिये अनेक रोजगार कार्यालयों, व्यावसायिक निदेशालयों तथा प्रशिक्षण संस्थानों से सम्पर्क बनाना परमावश्यक है।

व्यावसायिक वर्गीकरण की प्रकारता

'व्यावसायिक वर्गीकरण' अब अत्यन्त लोकप्रिय होता जा रहा है। इससे कार्य–जगत की पूरी पैमाइश एवं तस्वीर निर्मित करने में सहायता प्राप्त होती है तथा सेवार्थी (छात्र) को एक ही स्थान पर अपेक्षित सूचनायें कुछ व्यवसायों के बारे में मिल जाती हैं जिससे उसे व्यवसायों के चयन में सुविधा रहती है। आगे 'व्यावसायिक वर्गीकरण' की कतिपय अति प्रचलित प्रणालियों का उल्लेख किया जा रहा है–

1. सामाजिक आर्थिक वर्गीकरण

इस प्रकार के वर्गीकरण में सामाजिक स्तरीकरण तथा आर्थिक मानदण्ड को महत्वपूर्ण माना जाता है। यह पर्याप्त जटिल एवं कठिन तरीका है। इसके अन्तर्गत कार्यकर्ता की आय उसकी प्रतिष्ठा, उसके कौशल–स्तर तथा उच्च निम्न स्थान को दृष्टिगत रखकर व्यवसाय के बड़े या छोटे होने सम्बन्धी निर्धारण किये जाते हैं

व्यवसायों के इस प्रकार के वर्गीकरण को एडवर्ड, हॉल, वार्नर तथा कापलो

आदि ने बहुत लोकप्रिय बनाया है।

2. बौद्धिक विभेदों पर आधारित वर्गीकरण

कई मनोवैज्ञानिकों ने व्यवसाय के लिये अपेक्षित बौद्धिक क्षमता के अनुसार व्यवसायों का वर्गीकरण किया है। वॉर द्वारा प्रस्तुत व्यावसायिक वर्गीकरण इसका मुख्य नमूना है। इसकी प्रमुख सीमा यह है कि एक वर्ग के व्यवसाय में समान बुद्धि स्तर अपेक्षित होते हुए भी वह दूसरे व्यवसाय की प्रकृति एवं उसमें निहित कार्यों की दृष्टि से अत्यन्त भिन्न हो सकता है।

3. रूचि एवं व्यक्तित्व पर आधारित वर्गीकरण

व्यवसाय में नियुक्त व्यक्तियों की रूचि एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं के आधार पर व्यवसायों के वर्गीकरण करने के प्रयास किये गये हैं। ई0के0 स्ट्रांग ने रूचियों के अनुसार उद्यमों के निम्नलिखत प्रकार बताये हैं–

(अ) जीव विज्ञान से सम्बन्धित व्यवसाय

(ब) भौतिक विज्ञान से समबन्धित व्यवसाय

(स) अव–वृत्तिक तकनीकी व्यवसाय

(द) सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित व्यवसाय

(य) व्यापारिक कार्यों से सम्बन्धित व्यवसाय

(र) व्यापारिक सम्पर्कों से सम्बन्धित व्यवसाय

(ल) साहित्यिक कानून सम्बन्धी व्यवसाय

कई शोधों पर आधारित एवं व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी वर्गीकरण की विधि यों को आलपोर्ट तथ वर्नन, थर्स्टन एवं क्रूडर आदि ने समर्थन दिया है। उनके अनुसार निमनलिखित 'व्यावसायिक परिवार' महत्वपूर्ण हैं–

(अ) वैज्ञानिक

(ब) सामाजिक कल्याण

(स) साहित्यिक

(द) भौतिक

(य) लिपिकीय

(र) सम्पर्क केन्द्रित

(ल) कलात्मक

(व) संगीत से सम्बन्धित

व्यवसायों के कई अन्य वर्गीकरण के तहत व्यक्तित्व के विशेषज्ञों को आधार बनाया गया है। इनमें अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी तथा उभयमुखी या अन्य वर्गीकरण अति चर्चित है।

4. परिश्रम व कार्य की स्थिति के अनुसार वर्गीकरण

यह वर्गीकरण उद्योगों की भौतिक स्थिति एवं उनमें अपेक्षित साहस (जीवट) के अनुसार किया जाता है।

(अ) शारीरिक

(ब) सामाजिक एवं व्यक्तिगत सेवा

(स) प्रभावोत्पादक व्यापार

(द) सरकारी उद्योग

(य) गणित तथा भौतिक विज्ञान

(र) जीव विज्ञान

(ल) मानविकी

(व) कला

इसी प्रकार द्वि–विमात्क वर्गीकरण भी प्रायः किये गये हैं। इनमें से एक स्तर का तथा दूसरा क्षेत्र का परिसूचक होता है। इस दृष्टि से निम्नलिखित छः प्रकार अति चर्चित हैं–

(अ) वृत्तिक एवं प्रबन्धकीय (उच्च स्तरीय)

(ब) वृत्तिक एवं प्रबन्धकीय (नियमित)

(स) अर्द्ध–वृत्तिक एवं निम्न प्रबन्धकीय

(द) कुशलता पर निर्भर तथा अनुरक्षण से सम्बन्धित

(य) अर्द्ध–कुशलता पर निर्भर तथा अनुरक्षण से सम्बन्धित

(र) अकुशल एवं अनुरक्षण

इसके अतिरिक्त त्रि–विमात्मक वर्गीकरण भी विकसित किये गये है जिनमें व्यवसाय के स्तर, क्षेत्र एवं जीवट को महत्व दिया गया है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

16. वृत्तिक सूचना सेवा क्या है?

....

8.13 रोजगार अवसर सूचना सेवा

किसी भी देश की अर्थ व्यवस्था के सुनियोजित विकास तथा उसमें व्यवस्थित

निर्देशन की सेवाओं एवं मानवीय संसाधनों के समुचित उपयोग को उपयुक्त दिशा एवं गति प्रदान करने की दृष्टि से देश के भीतर उपलब्ध रोजगार अवसर (इम्प्लायमेंट मार्केट) बेराजगारी की समस्या तथा गठित एवं अगठित क्षेत्रों में रोजगार या बेराजगारी की प्रवृत्तियों का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। इस प्रकार के अध्ययनों को ठोस स्वरूप प्रदान करने के उद्देश्य से अब रोजगार–अवसरों से सम्बन्धित सूचना सेवाओं का गठन किया गया है। भारतीय सन्दर्भ में ऐसी सेवायें एक व्यवस्थित प्रयास की कड़ी के रूप में विकासात्मक क्रियाओं पर नजर रखने के लिये खासतौर से कायम की गई हैं। इनके तहत रोजगार की समस्याओं का अध्ययन नियोजकों, निर्देशन–कर्मियों, शैक्षिक प्रशासकों तथा तकनीकी तन्त्रियों को लाभ पहुंचाने की दृष्टि से किया जाता हैं ये सेवायें आमतौर से राज्य के रोजगार–केन्द्रों के निदेशालयों द्वारा श्रम तथा रोजगार मंत्रालय के तहत 'डाइरेक्टर जनरल ऑफ इम्प्लायमेंट एण्ड ट्रेनिंग' पर्यवेक्षण में आयोजित की जाती है। इनके अन्तर्गत 'संगठित सार्वजनिक क्षेत्रों' में नियुक्त कर्मचारियों के अलावा योग्यता एवं जीवनी आदि विषयक (बायोडाटा) सूचनायें, संकलित की जाती है। इन संस्थाओं से इस प्रकार की सूचनाओं के साथ अन्य महत्वपूर्ण तथ्य हर दूसरे वर्ष प्राप्त करने की कोशिश होती है।

उद्देश्य तथा कार्यक्षेत्र

रोजगार अवसर सम्बन्धी सूचनाओं को संकलित करना, उन्हें नवीनतम (अपटूडेट) रूप में प्रस्तुत करना तथा निर्देशन–कर्मियों, प्रशिक्षण संस्थानों तथा युवाओं को सुलभ कराने की दृष्टि से उपयोगी पत्र पत्रिकाओं, बुलेटिनों तथा अन्य प्रचार एवं प्रसार माध्यमों का सहारा लेना ऐसी सूचना सेवाओं का मुख्य ध्येय है। इसे 'रोजगारों' के बारे में बुनियादी आधार सामग्री प्राप्त करने का प्रमुख स्रोत माना जाता है।

हमारे यहां **'रोजगार अवसर सूचना'** की बुनियाद शिवा राव कमेटी की संस्तुतियों में देखी जा सकती है। हमें ध्यान देना होगा कि भारतीय परिस्थितियों में 'श्रम केन्द्रों' के प्रकाशनों के अलालवा 'रोजगार अवसर सूचनायें' विशेष प्रकार की पत्रिकाओं के माध्यम से विज्ञापित होती है। ये सूचनायें पूर्व रूप मे चल रही रोजगार सेवाओं के प्रभावी परिपूरक की तरह प्रयुक्त होती है।

ये सेवायें अपने कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत कृषि को छोड़कर सभी प्रतिष्ठानों को शामिल करती हैं। इनके द्वारा रोजगार सम्बन्धी सूचनाओं को हर तीसरे माह संकलित करने की व्यवस्था है तथा ये निम्नलिखित क्षेत्रों से सम्बन्धित होती हैं–

(1) रोजगार की मात्रा।

(2) रिक्त स्थान।

(3) वे रिक्त स्थान जो विज्ञापित हैं तथा जिन्हें रोजगार कार्यालयों द्वारा भरा गया है।

(4) वे उद्यम (व्यवसाय) जिनमें कार्यकर्ताओं या कर्मचारियों की कमी है।

वृत्तिक रोजगार सूचना सम्बन्धी प्रतिवेदन

रोजगार सूचनाओं के विश्लेषण के आधार पर प्रायः प्रतिवेदन (रिपोर्ट) प्रस्तुत किये जाते हैं जिन्हें जनपद, राज्य तथा राष्ट्रीय स्तरों पर तैयार किया जाता है। उनका विवरण इस प्रकार है–

(1) जनपद स्तर– जिसमें रोजगार सूचनाओं से सम्बन्धित आंचलिक या क्षेत्रीय प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाता है। यह रोजगार एवं बेराजगारी विषयक प्रवृत्तियों पर रोशनी डालता है। इसमें कर्मचारियों की मांग तथा मानवीय शक्ति की कमियों वाले अनुक्षेत्रों के सम्बन्ध में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत होते है। इस प्रतिवेदन के विभिन्न अनुभागों में रोजगार–अवसरों में हुये परिवर्तनों को स्पष्ट किया जाता है।

(2) राज्य स्तर– जो प्रायः रोजगार समीक्षा, मानव शक्ति की कमियों, सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों के प्रतिष्ठानों में कर्मचारियों के व्यावसायिक स्वरूपों तथा औद्योगिक क्षेत्रों एवं चुने हुये व्यवसायों के तहत रोजगार सम्बन्धी तदर्थ (एडहॉक) प्रतिवेदन के रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं।

(3) राष्ट्रीय स्तर– जिसमें त्रैमासिक रोजगार समीक्षा, सर्वजनिक क्षेत्र में रोजगार सम्बन्धी अखिल भारतीय प्रतिवेदन पूरे भारत में 'मानवीय शक्ति' की कमियों के बारे में रिपोर्ट तथा अधिस्नातकों के रोजगार के बार में किये जाने वाले सर्वेक्षण शामिल हैं।

इन तीनों स्तरों पर उपलब्ध होने वाले प्रतिवेदन नियोक्ताओं तथा उन संगठनों एवं प्रशिक्षण की संस्थाओं तथा अन्य सम्बन्धित अधिकारियों को नियमित रूप से वितरित किये जाते हैं। इन प्रतिवेदनों में प्रस्तुत रोजगार सूचनायें 'इण्डियन लेबर जर्नल' 'मन्थली एबस्ट्रेक्ट ऑफ स्टैटिस्टिक्स' तथा जर्नल ऑफ स्टेट स्टेस्टिकल ब्यूरो द्वारा प्रकाशित होती रहती हैं।

रोजगार सूचना सेवाओं के गुण

रोजगार सूचना सेवाओं के बहुत से लाभ हैं। उनमें से कतिपय निम्नलिखित हैं–

(1) रोजगार सम्बन्धी सूचनाओं से नियोजन का कार्य सरल बन जाता है जिससे प्रशिक्षण आयोजित करने वाली संस्थाओं, प्रबन्ध संस्थानों तथा अन्य ऐसे प्रतिष्ठानों को अपनी भावी योजनायें निर्मित करने में मदद मिलती है।

(2) नियोक्ताओं को रोजगार मार्केट का पता चल जाता है जिससे वे अपने यहां भर्ती की नीतियों को तदनुकूल ढंग से परिवर्तित करने में सफल होते हैं।

(3) नए उद्योगपतियों तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों को इस प्रकार की सूचनाओं द्वारा अपने व्यापरिक सम्बन्धों को बनाने तथा नवीन योजनाओं को प्रस्तावित करने का ठोस आधार मिल जाता है।

(4) 'रोजगार सूचनाओं' की जानकारी से हमारे सैकड़ों ऐसे युवा प्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित होते है जिन्हें रोजगार सम्बन्धी बातें नही मालूम हो पाती तथा जो ग्रामीण

अंचलों व दूर दराज के गांवों या पहाड़ियों में रहते हैं।

(5) इन सूचनाओं का विशेष उपयोग हमारे कालेज तथा विश्वविद्यालय रोजगार उन्मुख शिक्षा योजनाओं के विकास हेतु कर सकते हैं। इनसे मांग तथा पूर्ति की सही स्थिति का मूल्यांकन करने में सरलता होती है।

(6) प्रबुद्ध अभिभावक तथा निर्देशन–कार्यकर्ता इन सूचनाओं के आधार पर अपने परामर्श कार्यों को सजग एवं ठोस स्वरूप दे सकते हैं।

रोजगार सूचना सेवाओं के दोष

भारतीय सन्दर्भ में रोजगार सूचना सेवाओं की गतिविधियों, उनके प्रभाव एवं छवि को देखते हुये अग्रलिखित दोष विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं–

(1) रोजगार सूचनाओं की विश्वसनीयता एवं शुद्धता के बारे में प्रायः आपत्तियां उठाई जाती है। हमारे यहां इन सूचनाओं को संकलित करने की विधियों में अनेक ऐसे दोष हैं जो व्यवस्था की शिथिलता से प्रत्यक्षतः जुड़े हुए है। राज्य तथा केन्द्र सरकार में दोषपूर्ण हो जाते है जिन्हें ऐसी सूचनाओं को एकत्र करने का न तो प्रशिक्षण प्राप्त होता है और न वे इस ओर अपेक्षित रूचि रखते हैं।

(2) रोजगार सूचना सेवाओं की व्यापकता या पूर्णता को भी विवाद का विषय बनाया गया है। इन सेवाओं द्वारा विज्ञापित सूचनायें सभी रोजगारों को नही स्पर्श कर पाती जिसे उनमें अधूरेपन का दोष देखा जा सकता है।

(3) रोजगार सूचनाओं को संकलित करने के ढंग इतने पुराने तथा औपचारिकताओं से भरे होते है कि उन्हें समय पर प्राप्त करने में विशेष कठिनाइयां उपस्थित होती हैं। सूचनाओं सम्बन्धी प्रपत्रों (प्रोफार्मा) को बदलने की ओर कोई विशेष रूचि नही ली गई है।

(4) रोजगार सम्बन्धी सूचनओं को सतत नवीन रखने की दृष्टि से विश्वविद्यालयों द्वारा अनुसन्धान एवं सर्वेक्षण कार्य प्रायःकम ही किये जाते हैं जिससे अनेक रोजगारों के बारे में तब जानकारी मिलती है जब नियुक्तियां हो जाती है।

(5) कैरियर शिक्षकों, निर्देशन कर्मियों तथा व्यावसायिक सूचनाओं के प्रसार से सम्बन्धित अन्य कार्यकर्ताओं को इन्हें सही ढंग से संकलित एवं विज्ञापित करने के बारे में समुचित प्रशिक्षण का अभाव है जिससे इन सेवाओं की छवि ठीक नही बन सकी है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

17. व्यवसायों के वितरण पर सबसे अधिक किसका प्रभाव पड़ा?

....

18. वृत्तिक सूचना सेवा के प्रमुख क्या गुण होने चाहिए?

....

8.14 सारांश

व्यवसायों का चयन तथा विविध उद्यमों की विशेषताओं का अध्ययन भारत जैसे विकासशील देश के लिये एक चुनौतीपूर्ण अभियान माना जा सकता है। हमे ज्ञात है कि व्यावसायिक एवं शैक्षिक निर्देशन की प्रक्रियाओं में व्यक्ति तथ व्यावसायिक जगत दोनों के सम्बन्ध में अपेक्षित जानकारी विकसित करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है इन समुदाय में युवाओं को सही ढंग के व्यवसाय (रोजगार) अपनाने के प्रति चेष्टा रहती है। किन्तु इसे वस्तुनिष्ठ एवं प्रभावी बनाने की दृष्टि से व्यवसायों की चयन प्रक्रिया तथा व्यवसायों की सामान्य एवं विशिष्ट प्रकृति के विश्लेषण एवं मूल्यांकन को वास्तविक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना परमावश्यक है।

व्यवसायों का चुनाव व्यक्ति अपनी अभिक्षमता, रूचि एवं पृष्ठभूमि के अनुसार कर सकें, इसके लिए कार्य–विश्लेषण (जॉब–एनेलिसिस) तथा कार्य–विवरण (जॉब–डिरिक्रप्शन) की पद्धतियों का अनुप्रयोग लाभदायक प्रमाणित होता है। ऐसी प्रक्रियाओं के माध्यम से व्यक्ति तथा उसके लिये उपयुक्त कार्य (जॉब) का मिलान आसान हो जाता है। इस दृष्टि से व्यावसायिक सूचनाओं का संकलन उनका सम्यक प्रदर्शन एवं प्रसाद सही व्यावसायिक चेतना विकसित करने हेतु प्रभावी होता है। इस परिप्रेक्ष्य में रोजगार सूचना सेवाओं की विशेष भूमिका सहज की आंकी जा सकती है। यह कहने की आवश्यकता नही है कि व्यावसायिक चयन को प्रभावित करने वाले अनेक महत्वपूर्ण कारक होते हुए भी इसमें अभिभावक, शिक्षक, निर्देशनकर्मी एवं उपबोधक अपना विशिष्ट सहयोग प्रदान करते हैं जिससे विवेक सम्मत 'चुनाव' की ओर युवाओं को प्रवृत्त किया जाता है।

8.15 अभ्यास प्रश्न

1. कक्षा 8, 9, 10 के विद्यार्थियों में वृत्तिक चयन की प्रवृत्ति आधार एवं परिस्थितियों को जानने हेतु एक सर्वेक्षण कीजिए और एक रिपोर्ट तैयार कीजिए?

8.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. इस अवस्था में बालक अपने भविष्य के कार्यों की सम्भावना व्यक्त करता है। और अनुमान करता है।
2. इस अवस्था में व्यक्ति अपने व्यवसाय में एक अच्छी प्रस्थिति एवं विकास के साथ समायोजन करने का प्रयास करता हैं।
3. आठ समूहों में।
4. वे आवश्यकताएं जो कम संतुष्ट हो पाती है वह व्यक्ति को असंतुलित व्यवहार वाला एवं उत्तेजना से परिपूर्ण कर देती है।
5. यह सिद्धान्त प्रकृति में संरचनात्मक एवं अन्र्तक्रियात्मक है।

6. यथार्थवादी, अन्वेषणात्मक, कलात्मक, सामाजिक, उद्यमी और परम्परागत।
7. वातावरण, वंशानुक्रम, शिक्षा, प्रेरणा एवं अभिक्षमता।
8. अनेक व्यवसायिक अवसरों के कारण।
9. अन्वेष्णात्मक दृष्टिकोण, अर्हता, पूरी जानकारी।
10. उपर्युक्त व्यवसाय में प्रवेश दिलाने का कार्य।
11. निर्धारित कार्य के विविध पक्षों का शुद्ध अध्ययन।
12. कार्य करने की विधियों में सुधार लाना।
13. व्यक्तिक मनोलेखन, प्रश्नावली, कार्य मनोलेखन।
14. किसी कार्य को दिये जाने हेतु दिये गये विवरण।
15. कार्य के विशेष गुण को जानकर ही प्रार्थी उसे करने के लिए प्रवृत्त होगा।
16. व्यवसाय की सूची, वर्गीकरण, रोजगार के अवसरों तात्कालिक विवरण ही वृत्तिक सूचना सेवा है।
17. जनसंख्या, औद्योगिकीकरण, भूमण्डलीकरण एवं पाश्चात्य संस्कृति के प्रति लगाव।
18. सरल, सुनियोजित, सम्पूर्ण एवं विश्वसनीय होना चाहिए।

8.17 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Jayaswal, Guidance and Counselling, Prakashan Kendra, Lucknow.

Kochhar, S.K. (1958). Educational Guidance & Counselling.

Ramachandra, C. Reading for Career Teachers, NCERT, New Delhi.

Manual for Guidance Counsellor, NCERT, New Delhi.

Occupational Information in Guidance, NCERT, New Delhi.

Readings of Career Teachers, NCERT, New Delhi.

खण्ड

3

परामर्श की प्रकृति

इकाई-9 परामर्श एवं स्वरूप	5
इकाई-10 जन-सम्पर्क तथा निर्देशन कार्यक्रम	13
इकाई-11 परामर्श की प्रक्रिया	21
इकाई-12 परामर्शदाता की विशेषतायें	31

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव — **कुलपति - अध्यक्ष**

डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल — वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक

डॉ0 ए0 के0 सिंह — कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0 पी0 गुप्ता — निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रो0 राम शकल पाण्डेय — पूर्व आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रो0 हरिकेश सिंह — आचार्य शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

परिमापक

प्रो0 एस0 पी0 गुप्ता — निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक

डॉ0 सरोज पाण्डेय — एसोसियेट प्रोफेसर, एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली

लेखक

डॉ0 सुषमा पाण्डेय — वरिष्ठ प्रवक्ता, शिक्षाशास्त्र विभाग, दी0 द0 उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खण्ड-3 : परिचय

खण्ड-3 में परामर्श की प्रवृत्ति पर विस्तार से चर्चा की गई है। इस खण्ड में परामर्श के स्वरूप, प्रक्रिया, विशेषताओं तथा निर्देशन कार्यक्रम पर चर्चा की गई है। निर्देशन के अन्तर्गत परामर्श एक आयोजित विशिष्ट सेवा है। परामर्श एक सहयोगी प्रक्रिया है। इसमें परामर्शदाता साक्षात्कार एवं प्रेक्षण के माध्यम से सेवार्थी के निकट जाता है उसे उसकी शक्ति व सीमाओं के बारे में सही बोध कराता है। इसकी अपनी विशेषतायें हैं जिसके विषय में आप इस इकाई में विस्तार से जानेंगे।

इकाई-10 में जन सम्पर्क तथा निर्देशन कार्यक्रम पर चर्चा की गई है। जनसम्पर्क निर्देशन कार्यक्रम का आवश्यक पक्ष है जिसके अभाव में निर्देशन कार्यक्रम का संचालन कठिन है। जनसम्पर्क एवं निर्देशन कार्यक्रम एक-दूसरे के पूरक हैं। एक सफल परामर्शदाता सफल जनसम्पर्क स्थापित करके ही सफलता प्राप्त करता है। इस इकाई में आपने जनसम्पर्क के क्षेत्र एवं उसके साधनों के विषय में विस्तार से पढ़ा जो आपके लिए रोचक होगी।

इकाई-11 में विस्तार से परामर्श की प्रक्रिया समझायी गई है। परामर्श प्रक्रिया निर्देशन का व्यवहारिक पक्ष है इसके संचालन में सावधानी के साथ उद्‌देश्यपूर्णता की आवश्यकता होती है। सम्पूर्ण परामर्श प्रक्रिया निश्चित सिद्धान्तों को लेकर संचालित की जाती हैं । इन सिद्धान्तों के अभाव में परामर्श प्रक्रिया के उचित स्वरूप की संकल्पना नहीं की जा सकती। इस इकाई में आपने परामर्श प्रक्रिया के विषय में बहुत ही व्यापक ज्ञान प्राप्त किया जो आपके लिए लाभप्रद होगा।

इकाई-12 परामर्श की विशेषताओं से सम्बन्धित है। सम्पूर्ण परामर्श प्रक्रिया परामर्शदाता के व्यक्तिक व व्यावसायिक गुण पर निर्भर करती है इसीलिये उसके व्यक्तित्व एवं व्यावसायिक तैयारी पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इस इकाई में इन्हीं पक्षों पर पूरा ध्यान केन्द्रित किया गया है।

MAED-103
शैक्षिक निर्देशन व परामर्श

खण्ड–01 निर्देशन की अवधारणा एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

इकाई–01 निर्देशन का स्वरूप एवं आवश्यकता

इकाई–02 निर्देशन के प्रतिमान

इकाई–03 निर्देशन का ऐतिहासिक विकास

इकाई–04 निर्देशन के सिद्धान्त एवं तकनीकी

खण्ड–02 निर्देशन के प्रकार

इकाई–05 शैक्षिक निर्देशन

इकाई–06 व्यावसायिक निर्देशन

इकाई–07 वैयक्तिक निर्देशन

इकाई–08 कैरियर निर्देशन व स्थापन्न

खण्ड –03 परामर्श की प्रकृति

इकाई–09 परामर्श का स्वरूप

इकाई–10 जन–सम्पर्क तथा निर्देशन कार्यक्रम

इकाई–11 परामर्श की प्रक्रिया

इकाई–12 परामर्शदाता की विशेषतायें

खण्ड–04 परामर्श के प्रकार एवं परीक्षण

इकाई–13 परामर्श के विविध रूप

इकाई–14 वैयक्तिक एवं सामूहिक परामर्श

इकाई–15 निर्देशन में परीक्षणों का उपयोग

इकाई–16 विशेष समूहों के लिये निर्देशन

इकाई–9 परामर्श का स्वरूप

संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 परामर्श

9.4 परामर्श की परिभाषायें

9.5 परामर्श की विशेषतायें

9.6 परामर्श की अवधारणा

9.7 सारांश

9.8 अभ्यास के प्रश्न

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना

निर्देशन सेवा में परामर्श अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं प्राचीन है यह दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। निर्देशन बहुत ही व्यापक प्रक्रिया है। परामर्श अपेक्षाकृत कम व्यापकता रखने वाला है। परामर्श एक ऐसी सेवा है जिसे निर्देशन के विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण उपाय के रूप में उपकल्पित किया जाता है। इस इकाई में हम इसके सम्प्रत्यय एवं अवधारणा के विषय में विस्तार से पढ़ेंगे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- परामर्श की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
- परामर्श की कतिपय परिभाषा बता सकेंगे।
- परामर्श प्रक्रिया की विशेषतायें बता सकेंगे।

9.3 परामर्श

किसी भी समाज में परामर्श देने और परामर्श प्राप्त करने की परम्परा उसके गठन से ही आरम्भ हो जाती है। चाहे दो विकल्पों में एक चयन की समस्या हो, किसी भी प्रकार के भ्रम की स्थिति हो अथवा मानसिक तनाव हो, परामर्श आवश्यक और अपरिहार्य हो जाता है। परामर्श में कम से कम दो व्यक्तियों की लिप्तता अवश्य होती है, एक परामर्शक या परामर्श दाता और

दूसरा परामर्श प्राप्त करने वाला। सामूहिक परामर्श प्रायः अर्थहीन होता है, यद्यपि आजकल इसको काफी मान्यता प्राप्त हो रही है। सामूहिक परामर्श में विचार–विमर्श हो सकता है, समस्याओं के सामान्य समाधान निकाले जा सकते हैं, समस्याओं के पक्ष तथा विपक्ष पर विचार हो सकता है किन्तु वास्तविक परामर्श अथवा निर्देशन प्राप्त करने की समस्या सर्वथा व्यक्तिगत होती है। व्यक्ति अपनी निजी समस्याओं के समाधान के लिए परामर्श चाहता है। व्यक्तिगत समस्या शारीरिक, मानसिक, व्यवसाय सम्बन्धी तथा समाज सम्बन्धी हो सकती है जिसके लिए उसे परामर्शक की आवश्यकता होती है। परामर्श मूलतः पारस्परिक होता है। इसका आधार परम्परा विश्वास है। व्यक्ति परामर्श उसी से लेता है जिसमें उसका विश्वास होता है और यदि परामर्शक सच्चा, ईमानदार और सन्निष्ठ है तो वह उसी व्यक्ति को परामर्श देता है जिसे वह समझता है कि वह परामर्श को स्वीकार करेगा और यथा सम्भव इसका पालन करेगा। व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में प्रमुख योगदान करने वाले विख्यात लेखक **ई0 डब्ल्यू0 मायर्स** ने लिखा है कि परामर्श देना एक महान कला है इस प्रकार परामर्शक को बहुत ही सावधानी तथा सतर्कता से परामर्श देना चाहिए। परामर्शक को अनुभवी, सुधी, सजग और परिपक्व होना चाहिए जिसका लाभ प्रत्याशी को मिल सके।

समाज–गठन के आरम्भिक दिनों में परामर्श न तो व्यवस्थित था और न वैज्ञानिक। इसकी कोई प्रक्रिया नही थी। इसका कोई स्वरूप भी नही था। परामर्शक परामर्श देने के पूर्व किसी प्रकार की तैयारी भी नही करता था और न किसी निश्चित लक्ष्य को ध्यान में रख कर परामर्शेच्छु परामर्श की आकांक्षा करता था। समय के अनुसार परामर्श का स्वरूप भी बदलता गया। विभिन्न शास्त्रों एवं विज्ञानों, में नवीन अवधारणा, प्रक्रिया तथा व्यवस्था का समावेश हुआ। परामर्श भी उससे अछूता नहीं रहा है। अतः परामर्श–प्रक्रिया की व्याख्या करने के पूर्व इसकी अवधारणा, परिभाषा तथा स्वरूप का विवेचन आवश्यक है।

9.4 परामर्श की परिभाषायें

परामर्श शब्द एक प्राचीन शब्द है फलतः इसकी अनेक परिभाषायें हैं।

राबिन्सन के अनुसार–'परामर्श शब्दो व्यक्तियों के सम्पर्क में उन सभी स्थितियों का समावेश करता है जिसमें एक व्यक्ति को उसके स्वयं के एवं पर्यावरण के बोध अपेक्षाकृत प्रभावी समायोजन प्राप्त करने में सहायता की जाती है।'

कार्ल रोजर्स ने परामर्श को आत्मबोध की प्रक्रिया में सहायक बताते हुये लिखा है कि–'परामर्श एक निर्धारित [illegible] से स्वीकृत ऐसा सम्बन्ध है जो परामर्श प्रार्थी को, स्वयं को समझने में पर्याप्त सहायता

देता है जिससे वह अपने नवीन जीवन के प्रकाशन हेतु निर्णय ले सकें।

- हैरमिन के अनुसार–परामर्श मनोपचारात्मक सम्बन्ध है जिसमें एक प्रार्थी एक सलाहकार से प्रत्यक्ष सहायता प्राप्त करता है या नकारात्मक भावनाओं को कम करने का अवसर और व्यक्तित्व में सकारात्मक वृद्धि के लिये मार्ग प्रशस्त होता है।
- मायर्स ने लिखा है–परामर्श से अभिप्राय दो व्यक्तियों के बीच सम्बन्ध है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को एक विशेष प्रकार की सहायता करता है।
- विलि एवं एण्ड्र ने कहा कि परामर्श पारस्परिक रूप से सीखने की प्रक्रिया है। इसमें दो व्यक्ति सम्मिलित होते है सहायता प्राप्त करने वाला और दूसरा प्रशिक्षित व्यक्ति जो प्रथम व्यक्ति की सहायता इस प्रकार करता है कि उसका अधिकतम विकास हो सकें।
- काम्बस ने परामर्श को पूरी तरह से परामर्श प्रार्थी केन्द्रित माना है।
- ब्रीवर ने परामर्श को बातचीत करना, विचार–विमर्श करना तथा मित्रतापूर्वक वार्तालाप करना बताया है। वही जोन्स के अनुसार परामर्श प्रक्रिया में समस्त तत्वों को एकत्रित किया जाता है जिसमें छात्रों के समस्त अनुभवों का अध्ययन किया जाता है।

छात्रों की योग्यताओं को एक विशेष परिस्थिति के अनुसार देखा जाता है–

इरिक्सन ने लिखा कि–'परामर्श साक्षात्कार व्यक्ति से व्यक्ति का सम्बन्ध है जिसमें एक व्यक्ति अपनी समस्याओं तथा आवश्यकताओं के साथ दूसरे व्यक्ति के पास सहायतार्थ जाता है।

स्ट्रैंग के अनुसार –"परामर्श प्रक्रिया एक सम्मिलित प्रयास है। छात्र की जिम्मेदारी अपने आपकों जिम्मेदारी समझने की चेष्टा करना तथा उस मार्ग का पता लगाना है जिस पर उसे आना है तथा जैसे ही समस्या उत्पन्न हो उसके समाधान हेतु आत्मविश्वास जगाना है।" विभिन्न परिभाषाओं से परामर्श के निम्न तत्वों के सम्मिलित होने का आभास मिलता है।

- दो व्यक्तियों में पारस्परिक सम्बन्ध आवश्यक है।
- परामर्शदाता व प्रार्थी के मध्य विचार–विमर्श के अनेक साधन हो सकते हैं।
- प्रत्येक परामर्शदाता अपना काम पूर्णज्ञान से करता है।
- परामर्श प्रार्थी की भावनाओं के अनुसार परामर्श का स्वरूप परिवर्तित होता है।
- प्रत्येक परामर्श साक्षात्कार–निर्मित होता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. परामर्श को इरिक्सन ने क्या माना है?

....

2. परामर्श किसके बीच संचालित होता है?

....

3. परामर्श को परामर्श प्रार्थी केन्द्रित किसने बताया है?

....

9.5 परामर्श की विशेषताएँ

परामर्श की जो व्याख्या ऊपर की गयी है उससे कुछ ऐसे बिन्दु उभर कर आते हैं जो परामर्श की विशेषताओं की ओर इंगित करते है। इनमें से कुछ की चर्चा यहाँ समीचीन लगती है।

1. परामर्श मूलतः समस्यापरक होता है।
2. यह दो व्यक्तियों के मध्य वार्तालाप का एक स्वरूप है।
3. परामर्श का मूल परस्पर विश्वास है।
4. परामर्शक परामर्शेच्छु को उसके हित में सहायता प्रदान करता है।
5. मैत्रीपूर्ण अथवा सौहार्दपूर्ण वातावरण में परामर्श अधिक सफल होता है।
6. जे0 ए0 केलर कहता है कि परामर्श का सम्बन्ध अधिगम से होता है। जिस प्रकार अधिगम से व्यक्ति के आचरण में परिमार्जन होता है उसी प्रकार परामर्श से भी व्यक्ति के आचरण में परिमार्जन होता है।
7. परामर्श सम्पूर्ण निर्देशन प्रक्रिया का एक सशक्त अंश है।
8. परामर्श का स्वरूप प्रजातान्त्रिक होता है। परामर्शेच्छु परामर्शक के सम्मुख अपने विचार रखने में स्वतन्त्र रहता है।
9. परामर्श का आधार प्रायः व्यावसायिक होता है। विलियम कॉटिल ने परामर्श की निम्नलिखित विशेषताओं की चर्चा की हैं–

   I. दो व्यक्तियों के मध्य परस्पर सम्बन्ध आवश्यक है।

   II. परामर्शक एवम् परामर्शेच्छु के मध्य वार्तालाप के अनेक स्रोत हो सकते हैं।

   III. परामर्शक पूर्ण जानकारी के साथ परामर्श देता हैं।

   IV. परामर्शेच्छु की रूचि को देखते हुए परामश की प्रकृति में

परिवर्तन सम्भव होता है।

V. प्रत्येक परामर्श में साक्षात्कार आवश्यक है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4. परामर्श मूलतः किस पर आधारित होता हैं?

....

5. यह कैसे वातावरण में संचालित होता है?

....

6. परामर्श का स्वरूप कैसा होता है?

....

7. परामर्श का उद्देश्य क्या होता है?

....

9.6 परामर्श की अवधारणायें

परामर्श की विशेषतायें आप जान चुके हैं। परामर्श की सफलता इसकी मूलभूत अवधारणा से ही सम्बन्धित है। ए0जे0 जोन्स ने चार मूलभूत धारणाओं को ही इसकी सफलता के लिये आवश्यक बताया है।

1. परामर्श प्रक्रिया को संचालित करने हेतु वातावरण का अनुकूलन इसके अतिरिक्त वातावरण में गोपनीयता भी होनी चाहिये जिससे कि प्रार्थी सहज अनुभव करें और सूचनायें प्रदान करें।
2. परामर्श की प्रक्रिया में जब तक विद्यार्थी स्वयं इच्छा से भाग नहीं लेता, सफल नहीं हो पाता है। प्रार्थी की स्वयं की इच्छा उसे पूरा सहयोग प्रदान करने हेतु प्रेरित करती है।
3. परामर्शदाता के लिये आवश्यक है वह उपयुक्त प्रशिक्षण अनुभव व व्यक्तिगत दृष्टिकोण वाला हो इसके साथ ही वह इस प्रक्रिया के प्रति रूचि रखने वाला और समर्पित हो जिससे वह प्रार्थी के साथ सहजता पूर्वक सम्बन्ध स्थापित कर निर्धारित उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करते हुये समस्या समाधान करने में सहायता दें।
4. परामर्श ऐसा सम्बन्ध प्रदान करें जो तात्कालिक व दीर्घकालिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। परामर्श उस समय उपलब्ध हो जब उसकी आवश्यकता हो।

ऑलपोर्ट ने परामर्श की दो अवधारणा दी है–

1. व्यक्ति व्यवहार को सीखता है वह सुधार के योग्य होता है। परामर्श व्यक्ति में परिवर्तन का उत्तरदायित्व लेता है और उसमें परिवर्तनों के आधार पर समायोजन करने की क्षमता उत्पन्न करता है।
2. परामर्श अधिगम परिस्थिति है जिसमें व्यक्ति जीवन में समायोजन करने की नयी–नयी विधियों को सीखता है।

विलियम्स ने परामर्श की ये अवधारणायें दी है–

- परामर्श की सफलता विद्यार्थी के स्वेच्छा से चुनने पर निर्भर है।
- अब परामर्श प्रार्थी स्वयं को समझने के लिये लिया सकता है।
- परामर्श का उद्देश्य और इसके उपयोग में आने वाले साधन व्यक्ति के विकास में या इस दिशा में व्यक्ति की सहायता करेंगे।

3. परामर्श प्राप्त करने वाले प्रार्थी का सम्मान और मर्यादा का परामर्शदाता द्वारा आदर होना चाहिए।

शास्टार्म तथा ब्रामेर ने परामर्श की अवधारणा स्पष्ट करते हुए लिखा कि ''परामर्श दो व्यक्तियों के मध्य घटित होने वाला एक उद्देश्ययुक्त पारस्परिक सम्बन्ध है जिसमें एक प्रशिक्षित व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अथवा उसके वातावरण को परिवर्तित होने में सहायता प्रदान करता है।'' निश्चित है कि परामर्शक अनुभवयुक्त तथा परामर्श की प्रक्रिया से अवगत रहता है। उसकी श्रेष्ठता परामर्शेच्छु अथवा सेवार्थी पर स्वतः सिद्ध होती है। इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए सन् 1954 ई0 में वेलबर्ग ने परामर्श एवं साक्षात्कार में समानता सिद्ध करने का प्रयास किया और कहा कि परामर्श एक प्रकार का साक्षात्कार ही है जिसमें सेवार्थी को ऐसी सहायता दी जाती है कि वह अपने को अधिक से अधिक ढंग से समझ सके और अपनी कठिनाइयों से समायोजन स्थापित कर सके। साक्षात्कार की धारणा को अधिक बल प्रदान करते हुए रूथ स्ट्रैंग ने लिखा है कि ''परामर्श एक आमने–सामने का सम्बन्ध है जिसमें परामर्शक एवं परामर्शेच्छु दोनों का विकास होता है।'' इसी अवधारणा को अत्यन्त सरल शब्दों में व्यक्त करते हुए ई0 डब्ल्यू0 मायर्स ने कहा कि ''परामर्श का तात्पर्य दो व्यक्तियों के अन्तःसम्बन्ध से है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को विशेष सहायता प्रदान करता है।'' मायर्स ने परामर्श के प्रत्यय को व्यापक बनाने का प्रयास किया है जिसका निहितार्थ यह है कि न मात्र व्यवसाय के लिए वरन् जीवन की किसी भी समस्या के समाधान हेतु जो वैचारिक सहायता दी जाती है वह परामर्श होती है। विली तथा ऐंड्रिव ने परामर्श को एक पारस्परिक

अधिगम की प्रक्रिया माना है जिसमें दो व्यक्ति सम्मिलित रहते हैं। एक वह जिसको सहायता की आवश्यकता होती है और दूसरा वह जो व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित होता है और पहले व्यक्ति (सेवार्थी) को दिशा निर्देशित करता है ताकि वह अपना अधिकतम विकास कर सके और अपने वातावरण को सम्पन्न बना सके। सम्पूर्ण परामर्श प्रक्रिया को आरबंकिल ने तीन बिन्दुओं पर विभक्त किया है और प्रायः विद्वानों ने इसे स्वीकार भी कर लिया हैं–

(अ) परामर्श दो व्यक्तियों के मध्य चलने वाली प्रक्रिया है।

(ब) परामर्श का मुख्य उद्देश्य सेवार्थी को उसकी समस्याओं को स्वतन्त्र रूप से समाधान खोजने में सहायता प्रदान करना है।

(स) परामर्श एक व्यवसाय–परक क्रिया है जो व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा सम्पादित की जाती है। इस प्रकार परामर्श दो व्यक्तियों के मध्य चलने वाली एक सोद्देश्य प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से सहायता की आकांक्षा करता है और दूसरा व्यक्ति अपने ज्ञान एवं अनुभव का लाभ प्रदान करके उसकी सहायता करता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

8. परामर्श के लिये कैसे वातावरण की आवश्यकता होती है और क्यो?

....

9. परामर्श की सफलता किस पर निर्भर करती है?

....

10. परामर्श के प्रति अवधारणा में क्या परिवर्तन हुआ?

....

....

9.7 सारांश

निर्देशन के अन्तर्गत परामर्श एक आयोजित विशिष्ट सेवा है। परामर्श एक सहयोगी प्रक्रिया है। इसमें परामर्शदाता साक्षात्कार एवं प्रेक्षण के माध्यम से सेवार्थी के निकट जाता है उसे उसकी शक्ति व सीमाओं के बारे में सही

बोध कराता है। इसकी अपनी विशेषतायें है जिसके विषय में आपने इस इकाई में विस्तार से जाना। यह इकाई आपके लिये ज्ञानप्रद रही होगी।

9.8 अभ्यास के प्रश्न

"परामर्श' से तुम्हारा क्या अभिप्राय है? यह निर्देशन से कैसे अलग है? इसको इंगित कीजिये?

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. व्यक्ति का व्यक्ति से सम्बन्ध।
2. परामर्शदाता व परामर्श प्रार्थी के मध्य।
3. काम्ब्स ने।
4. समस्या पर।
5. समस्या समाधान।
6. शान्त व गोपनीय।
7. लोकतान्त्रिक।
8. समस्या समाधान में प्रार्थी का सहयोग।
9. सहज व लोकतान्त्रिक वातावरण की आवश्यकता होती है जिससे प्रार्थी सहज होकर अपनी बात कह सके।
10. परामर्श अब समस्या उत्पन्न होने पर ही नही अपने आपकी समझने के लिये भी लिया जाता है।

9.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Jones, A.J. (1963). Principles of Guidance & Pupil Personnel Work, New York.
2. Myres, G.E. (1941). Principles and Techniques of Guidance, New York.
3. Sharma, R.A. Fundaments of Guidance and Counselling.
4. Dr. Ramakant Dubey (2006). Bases of Educational and Vocational Guidance.

इकाई–10 जन–सम्पर्क तथा निर्देशन–कार्यक्रम

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 जनसम्पर्क के क्षेत्र

10.4 सम्पर्क स्थापन के क्षेत्र

10.5 अन्य व्यक्तियों के साथ सम्पर्क स्थापन

10.6 जनसम्पर्क के साधन

10.7 सारांश

10.8 अभ्यास के प्रश्न

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.1 प्रस्तावना

'निर्देशन–कार्यक्रम एक जटिल प्रक्रिया है। निर्देशन–कार्यक्रमों के संचालन हेतु काफी समय, सूचनाओं तथा सूझ–बूझ के अतिरिक्त श्रम और साधनों की आवश्यकता पड़ती है। विद्यालय के निर्देशन कर्मचारी अपने कार्यो को बिना किसी अध्यापक, प्रशासन तथा अभिभावकों के सहयोग से सम्पादित नहीं कर सकते हैं। इनके सहयोग के अभाव में बालक का सही अध्ययन नहीं किया जा सकता। सफल निर्देशन के लिए निर्देशन कार्यकर्त्ताओं को कक्षाध्यापक, विषयाध्यापक, विद्यालय अधिकारी तथा स्थानीय समुदाय और अभिभावकों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है अतः निर्देशन कार्यकर्त्ताओं को इन व्यक्तियों के साथ सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। जन–सम्पर्क के द्वारा ही स्थानीय समुदाय और अभिभावक विद्यालय की छात्र–कल्याण से सम्बन्धित अनेक क्रियाओं का ज्ञानबोध करते है। इस इकाई में हम निर्देशन कार्यक्रम में जनसम्पर्क के महत्त्व एवं प्रविधि के विषय में विस्तार से पढ़ेगें।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. निर्देशन कार्यक्रम में जनसम्पर्क के विविध क्षेत्रों को इंगित कर सकेंगे।
2. सम्पर्क स्थापन के क्षेत्रों की व्याख्या कर सकेंगे।
3. जनसम्पर्क के साधनों की विवेचना कर सकेंगे।

10.3 जन–सम्पर्क के क्षेत्र–

जन–सम्पर्क के तीन उद्देश्य होते हैं–ज्ञानबोध, सहानुभूति तथा सक्रिय क्रियाशीलता। विद्यालय में चल रहे निर्देशन कार्यक्रमों का बोध जनता को होना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार के ज्ञानबोध के अभाव से सम्बन्धित व्यक्ति कुछ भी सहायता व सहयोग प्रदान नहीं कर पायेंगे। ज्ञानबोध के अभाव में निर्देशन–कार्यक्रमों की आवश्कता और औचित्य का भी पता नहीं लग सकता है।

जन–सम्पर्क स्थापन कार्यक्रम के अन्तर्गत सर्वप्रथम छात्र–वर्ग का स्थान आता है। निर्देशन–कार्यकर्त्ताओं को सर्वप्रथम छात्रों के साथ जन–सम्पर्क करना चाहिए, क्योंकि छात्र ही अन्ततोगत्वा निर्देशन–कार्यक्रमों से लाभान्वित होते हैं अतः छात्रों को इस प्रकार के कार्यक्रमों का पूरा–पूरा ज्ञान होना चाहिए तभी वे लाभ उठा सकते हैं।

छात्रों के साथ सम्पर्क–स्थापन के उपरान्त अभिभावकों के साथ सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता पड़ती है। अभिभावकों के सहयोग के अभाव में निर्देशन–कार्यक्रम कभी भी सफल नहीं हो सकते हैं। अभिभावक छात्रों के सम्बन्ध में अनेक उपयोगी तथा आधारभूत तथ्य प्रदान कर परामर्शदाता के कार्य को सरल तथा उपयोगी बनाते हैं। अतः निर्देशन कार्य हेतु प्रत्येक अभिभावक के साथ सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता है।

तृतीय स्थान पर स्थानीय समुदाय के साथ सम्पर्क स्थापित करने की आवश्कता पड़ती है। स्थानीय समुदाय की प्रवृत्तियाँ, आवश्कताएँ तथा स्वभाव विद्यालय की आन्तरिक तथा बाह्म दोनों ही व्यवस्थाओं को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित करती हैं। स्थानीय समुदाय विद्यालय की सभी क्रियाओं को प्रभावित करता है, साथ ही स्थानीय समुदाय निर्देशन कार्य हेतु छात्रों तथा व्यवसायों के सम्बन्ध में अनेक उपयोगी सूचनाएँ तथा तथ्य भी प्रदान कर सकता है।

अन्त में विद्यालय से सम्बन्धित व्यक्तियों के साथ सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। विद्यालय से सम्बन्धित व्यक्तियों के अन्तर्गत हम प्रधानाचार्य, प्रशासन–वर्ग, शिक्षक–वर्ग, शारीरिक प्रशिक्षण अधिकारी, स्वास्थ्य–परीक्षण अधिकारी आदि को सम्मिलित करते हैं।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. जनसम्पर्क क्या है?

....

2. जनसम्पर्क किससे किया जाता है?

....

3. जनसम्पर्क में स्थानीय समुदाय का क्या महत्व होता है?

....

10.4 सम्पर्क–स्थापन के क्षेत्र–

जन–सम्पर्क के क्षेत्र निर्धारित हो जाने के उपरान्त यह प्रश्न उठता है कि इन लोगों के साथ किस प्रकार सम्पर्क–स्थापित किया जाय। नीचे इन चारों क्षेत्रों के साथ सम्पर्क–स्थापन के साधन तथा उपायों पर प्रकाश डाला गया है :

(1) **छात्र–वर्ग के साथ सम्पर्क–स्थापन**–परामर्शदाता को सर्वप्रथम छात्र–वर्ग के साथ सम्पर्क स्थापित करना चाहिए क्योंकि यही वह वर्ग है जिसकी अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति उसे करनी है। इस सम्पर्क के माध्यम से ही वह अपने छात्रों का अध्ययन कर पायेगा तथा छात्र भी निर्देशन–कार्यक्रम से परिचित हो सकेंगे। परिचय के अभाव में लाभान्वित होना भी संभव नहीं है। साथ ही साथ, छात्र–वर्ग विद्यालय–क्रियाओं का सबसे व्यापक प्रचार का साधन है। छात्रों के माध्यम से ही विद्यालय की प्रत्येक बात जनता में घर–घर पहुँचती हैं। छात्र शाम को घर जाकर विद्यालय की प्रत्येक क्रिया का प्रतिवेदन घर–घर पहुँचाते हैं। इसलिए परामर्शदाता को अपने कार्यो का विज्ञापन करने तथा उन्हें सफल बनाने हेतु छात्रों के साथ सम्पर्क स्थापित करना चाहिए।

(2) **अभिभावकों के साथ सम्पर्क**–अभिभावक न ही विद्यालय में कार्य ही करते हैं और न विद्यालय की सीमा में रहते हैं, फिर भी वे विद्यालय के साथ अभिन्न रूप से सम्बन्धित होते है। अभिभावकों की विद्यालय के साथ सम्बबद्धता पर्याप्त रूप से व्यक्तिगत होती है। इस उच्च सम्बद्धता के कारण ही अभिभावकों के साथ सम्पर्क स्थापित किया जाता है। प्रधानाध्यापक तथा अन्य प्रशासकगण अभिभावकों के साथ प्रशासकीय मामलों के लिए सम्पर्क स्थापित करते हैं तथा अध्यापकगण शैक्षिक मामलों के लिए सम्पर्क स्थापित करते हैं। इसी प्रकार, विद्यालय के अन्य अधिकारीगण अपने–अपने क्षेत्रों से सम्बन्धित मामलों के लिए अभिभावकों के साथ सम्पर्क स्थापित करते हैं। यहाँ पर यह सुझाव दिया जा सकता है कि विद्यालय का कोई भी अधिकारी यदि अभिभावकों के साथ सम्पर्क स्थापित करता है तो उसे चाहिए कि वह परामर्शदाता को अपने साथ अवश्य ले लें, जिससे परामर्शदाता भी उनके साथ सम्पर्क कर सके और उनको समझ सकें। सम्पर्क स्थापन के प्रमुख कारण अभिभावकों के लिए निम्नवत होते है–

(i) छात्रों के हितार्थ विद्यालय द्वारा चालू की गई अनेक क्रियाओं के सम्बन्ध में सूचना ज्ञात करना अथवा विद्यालय द्वारा बनाई गई योजनाओं के लिए सुझाव देना।

(ii) उन समस्याओं को ज्ञात करना जो विद्यालय ने छात्र में तलाश की हैं।

(iii) छात्र की सीमाओं, योग्यताओं, क्षमताओं आदि के सम्बन्ध में सूचनाएँ ज्ञात करना।

(iv) छात्रों की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विद्यालय द्वारा किए जा रहे प्रयासों को जानना।

(v) विद्यालय द्वारा प्रारम्भ किए गए विविध कार्यक्रमों के विषय में जानकारी रखना।

(vi) विद्यार्थियों एवं विद्यालय के सम्बन्ध को जानना तथा विद्यार्थियों से सम्बन्धित समस्याओं के प्रति विद्यालय को जागरूक करना।

अभिभावकों के अधिकारों के विषय में **जे0एच0रिक्स** ने लिखा है कि–"अभिभावकों को उन सभी बातों को जानने का अधिकार है जो एक विद्यालय छात्र की योग्यताओं, निष्पादन एवं समस्याओं के सम्बन्ध में जानता है।"

विद्यालय को अभिभावकों को वे सारे अधिकार देने चाहिए जिससे कि विद्यालय एवं समुदाय के मध्य एक अच्छा सम्बन्ध स्थापित हो सकें। परामर्शदाता को अभिभावकों के साथ सम्बन्ध स्थापित करते समय इन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

- छात्र से पूछ कर ही अभिभावको के साथ सम्पर्क स्थापित किया जाए।
- परामर्श सम्बन्धी सम्बन्धों को परामर्शदाता को गोपनीय रखना चाहिए क्योंकि विद्यार्थी अनेक ऐसी समस्याओं को परामर्शदाता के समक्ष रख देते है, जिन्हें वे अपने अभिभावकों से नही कहना चाहते। परामर्शदाता को चाहिए कि वे यह बाते अभिभावकों को ना बताए।
- परामर्शदाता को सभी आवश्यक तथ्य अभिभावकों के सम्मुख सरलता से प्रकट करना चाहिए। तकनीकि भाषा प्रयोग ना करके सरल भाषा अपनाये जिससे कि अभिभावक समझ सकें।
- अभिभावक की मनोदशा को समझ कर ही उनके बच्चों से सम्बन्धित सूचनाएं उन्हे दी जाए जिससे कि वे उसे स्वीकार कर सकें।
- निराशाजनक सूचनाओं को प्रदान करने पर अभिभावकों की प्रतिक्रिया की आलोचना नही करनी चाहिए।
- परामर्शदाता को बालक के लिए कोई भी सेवा प्रारम्भ करने से पहले अभिभावक से स्वीकृति ले लेनी चाहिए।

3. **शिक्षकों के साथ सम्पर्क**–जनसम्पर्क स्थापन के कार्यक्रम में शिक्षकों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं क्योंकि शिक्षक, शिक्षार्थी के अत्यन्त निकट होते है और उन्हें शिक्षार्थी से सम्बन्धित सभी आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त होती है। शिक्षकों से सहयोग प्राप्त करना कठिन है परन्तु परामर्शदाता के लिए शिक्षकों से सहयोग लेना अत्यन्त आवश्यक होता है। **सी0एच0 पैटर्सन** के अनुसार–कोई भी निर्देशन सम्बन्धी कार्यक्रम शिक्षकों के स्वीकृति एवं सहयोग के बिना असफल हो जाता है। परामर्शदाता को शिक्षकों से सहयोग लेते समय इन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

- परामर्शदाता को शिक्षकों से छात्र के सम्बन्ध में अनौपचारिक ढ़ंग से सरल बातचीत करनी चाहिए और छात्र से सम्बन्धित सुझाव शिक्षक के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए।
- छात्र के सम्बन्ध में सुझाव व सूचना प्राप्त करने हेतु परामर्शदाता को शीघ्रता एवं तत्परता से काम लेना चाहिए।
- शिक्षकों के प्रति सदैव सकारात्मक एवं सम्मानजनक रवैया अपनाना चाहिए।

- छात्र से सम्बन्धित गोपनीय तथ्य शिक्षकों के समक्ष नही रखना चाहिए।
- शिक्षकों से जानकारी प्राप्त करने हेतु वह शिक्षकों की गोष्ठी का आयोजन भी कर सकता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4. परामर्शदाता को गोपनीयता किससे बनायी रखनी चाहिए?

....

5. किससे सहयोग लेना कठिन होता है?

....

6. अभिभावकों को क्या अधिकार है?

....

10.5 अन्य व्यक्तियों के साथ सम्पर्क

परामर्शदाता को विद्यार्थी, शिक्षक, अभिभावक एवं समुदाय के अतिरिक्त भी कुछ व्यक्तियों से सम्पर्क करना पड़ता है। जिसका उल्लेख हम नीचे कर रहे हैं–

1. **विद्यालय प्रशासक**–विद्यालय में प्रशासक की स्थिति बहुत ही मजबूत होती है उसकी इच्छा के बिना विद्यालय में किसी भी प्रकार का संचालन कठिन होता है। अतः यह आवश्यक होता है कि परामर्शदाता सम्पर्क स्थापित करके निर्देशन कार्यक्रमों की उपयोगिता, स्वभाव एवं आवश्यकताओं से उसे परिचित करायें। इसके साथ ही यह प्रयास करें कि प्रशासक निर्देशन कार्यक्रम के प्रति नवीन एवं उदार दर्षष्टिकोण अपनायें। परामर्शदाता का यह प्रयास ही उसे विद्यालय में सफल निर्देशन कार्यक्रम के संचालन हेतु प्रशासक की रूचि एवं सहयोग उत्पन्न करवा सकता है।
2. **विद्यालय मनोविज्ञानवेत्ता**–मनोविज्ञान मन का विज्ञान है और मनोविज्ञानवेत्ता मनोभावों को समझने की क्षमता रखता है। कई मामलों में निर्देशन क्रिया–कलाप के दौरान परामर्शदाता अनेक स्थलों पर मनोविज्ञान के व्यावहारिक ज्ञान के अभाव में कठिनाई का अनुभव करता है। तब परामर्शदाता मनोविज्ञानवेत्ता का सलाह लेता है और उससे व्यक्तिगत, सामाजिक, शैक्षिक, शारीरिक एवं व्यवहारजनित समस्याओं के सम्बन्ध में बातचीत कर सकता है।
3. **विद्यालय समाज कार्यकर्ता**–यह पद अनेक देशों में विद्यालयों में स्थापित है जो कि 1500 से 2000 बालकों के मध्य एक कार्यकर्ता के रूप में दिया गया है। इन कार्यकर्ताओं का कार्य क्षेत्र विशेष रूप में बच्चों से सम्बन्धित विविध समस्याओं जैसे–बाल अपराध एवं कुसमायोजन से निजात पाने हेतु कार्य करना है। इसीलिए इन्हें बच्चों से सम्बन्धित अनेक आवश्यक तथ्यों की जानकारी होती है। जिनका उपयोग परामर्शदाता निर्देशन कार्यक्रम के दौरान कर सकते है।

4. **विद्यालय की नर्स एवं डॉक्टर**—भारत के सभी विद्यालयों में अपनी डिस्पेन्सरी की स्थापना अभी नही हो पायी है। बड़े विद्यालयों में नर्स तथा डॉक्टर की नियुक्ति की व्यवस्था है जिनकी नियुक्ति के प्रमुख कारण होते हैं—
   - रोगों के रोकथाम हेतु।
   - विद्यालय के शिक्षक एवं कर्मचारियों को स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करने हेतु।
   - सुरक्षित एवं स्वास्थ्यवर्धक वातावरण के निर्माण हेतु।
   - स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं के निदान हेतु।
   - स्वास्थ्य सम्बन्धी परामर्श हेतु।

परामर्शदाता जब निर्देशन कार्यक्रम का संचालन करता है तो उसे विद्यार्थी की क्षमताओं, सीमाओं, दुर्बलताओं एवं मनोशारीरिक विशेषताओं का ध्यान रखना पड़ता है जिसके लिए उसे नर्स या डाक्टर से सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है जो कि विद्यार्थी से सम्बन्धित उपरोक्त सभी क्षेत्रों में आवश्यक सूचनाएँ प्रदान कर सकें।

बोध प्रश्न—

टिप्पणी—क— नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख— इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

7. परामर्शदाता को विद्यालय प्रशासन का सहयोग क्यों लेना पड़ता है?

....

8. परामर्शदाता को मनोविज्ञानवेत्ता का सहयोग कब लेना पड़ता है?

....

9. नर्स तथा डाक्टर एवं परामर्शदाता के कार्य में क्या समानता है?

....

10.6 जनसम्पर्क के साधन

ऊपर आप जनसम्पर्क के क्षेत्र एवं सम्पर्क स्थापन के विविध क्षेत्रों के विषय में पढ़ चुके हैं। अब हम यह जानेंगे कि परामर्शदाता जन सम्पर्क हेतु किन साधनों का प्रयोग करता है। साधन वास्तव में वे माध्यम है जिनका उपयोग करके परामर्शदाता जनसम्पर्क करता है । इनमें से कुछ साधनों की हम चर्चा करेंगे —

1. **अभिभावक दिवस**—विद्यालय में अभिभावक दिवस इसलिए मनाया जाता है कि अभिभावकों को बुलाकर विद्यालय की विविध क्रिया—कलापों, सेवाओं एवं प्रगति से उन्हें अवगत कराया जाय। इसके आयोजन पर परामर्शदाता ना केवल परामर्श सम्बन्धी सेवाओं से अभिभावकों को परिचित कराता है वरन् वह बालकों से सम्बन्धित विविध सूचनाओं को भी अभिभावकों से आसानी से प्राप्त कर लेता है। अभिभावक दिवस के दिन अभिभावक अधिकांशतः विद्यालय में

आने के लिए बाध्य हो जाते हैं। इससे परामर्शदाता को आसानी से सहयोग मिल जाता है।

2. **कैरियर मेला**—वर्ष में एक या दो बार कैरियर मेला का आयोजन किया जा सकता है जिसमें विविध व्यवसायों, उद्योगों एवं अन्य क्षेत्रों से सम्बन्धित सफल एवं सुनियोजित सूचनाएँ विद्यार्थियों को देने के साथ–साथ अपनी समस्याओं एवं शंकाओं को लेकर उपस्थित होते है। जिससे कि परामर्शदाता को अनेक सूचनाओं के साथ सहयोग मिल जाता है।

3. **शिक्षक मीटिंग**—परामर्शदाता विद्यालय प्रशासक की अनुमति से शिक्षक एवं विद्यालय के अन्य अधिकारियों के साथ बैठक की व्यवस्था करवा सकता है। जिसमें कि छात्रों से सम्बन्धित विविध पक्षों पर बातचीत की जा सकती है और परामर्शदाता को बड़े ही वस्तुनिष्ठ रूप में तथ्यों को प्रकट करने एवं ग्रहण करने का अवसर मिल जाता है।

4. **छात्र–दिवस**—छात्र दिवस का आयोजन करके परामर्शदाता छात्रों एवं उनके अभिभावकों के साथ शिक्षकों को एक ही मंच पर ला सकता है जिससे कि इन तीनों का आपस में सम्पर्क स्थापित हो, साथ ही परामर्शदाता को निर्देशन प्रक्रिया में इन तीनों का सम्वेत सहयोग भी प्राप्त हो सकता है।

5. **सूचना पत्रिका**—परामर्शदाता परामर्श तथा व्यक्तिगत सेवाओं से सम्बन्धित वार्षिक या छमाही छोटी सी सूचना पट्टिका भी प्रकाशित कर सकता है जिसके माध्यम से वह विद्यार्थियों एवं अभिभावकों के मध्य निर्देशन कार्यक्रम के प्रति जागरूकता ला सकता है।

6. **व्यक्तिगत सम्पर्क**—परामर्शदाता निर्देशन कार्यक्रम में अभिभावकों को व्यक्तिगत रूप में आमंत्रित कर सकता है तथा आवश्यकता पड़ने पर उनके घर जाकर उनसे सम्पर्क स्थापित कर आवश्यक सूचनाएँ ग्रहण कर सकता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

10. अभिभावक दिवस क्यों मनाया जाता है?

....

11. कैरियर मेला का आयोजन क्यों महत्वपूर्ण होता है?

....

10.7 सारांश

जनसम्पर्क निर्देशन कार्यक्रम का आवश्यक पक्ष है जिसके अभाव में **निर्देशन**

कार्यक्रम का संचालन कठिन है जनसम्पर्क एवं निदेशन कायक्रम एक–दूसर क पूरक हैं। एक सफल परामर्शदाता सफल जनसम्पर्क स्थापित करके ही सफलता प्राप्त करता है। इस इकाई आपने जनसम्पर्क के क्षेत्र एवं उसके साधनों के विषय में विस्तार से पढ़ा जो आपके लिए रोचक रहा होगा।

10.8 अभ्यास के प्रश्न

1. निर्देशन कार्यक्रम में जनसम्पर्क की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए उसके विविध क्षेत्र एवं साधनों की विवेचना कीजिए?

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. आवश्यक लोगों से परामर्श हेतु उपयोगी सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए किया गया सम्पर्क।
2. छात्र, अभिभावक, समुदाय एवं शिक्षक।
3. बच्चा उसी समुदाय में रहता है जिसके कारण समुदाय उसके विषय में अनेक जानकारी रखता है।
4. शिक्षक व अभिभावक।
5. शिक्षकों से।
6. अपने बच्चों से सम्बन्धित विद्यालय की सभी गतिविधियों को जानने का।
7. विद्यालय प्रशासक की इच्छा एवं निर्देश के बिना निर्देशन कार्यक्रम का संचालन कठिन होता है।
8. जब मनोविज्ञान का व्यवहारिक ज्ञान परामर्शदाता को ना हो।
9. दोनों व्यक्तिगत सेवाएँ हैं।
10. अभिभावकों से मिलकर विद्यार्थियों की उपलब्धि शिक्षण, अधिगम से सम्बन्धित समस्याओं को जानने हेतु।
11. इस मेले में विविध उद्योगों से सम्बन्धित अनेक सफल सुसमायोजित लोगों से मिलने का अवसर विद्यार्थियों को दिया जाता है जिससे कि वे अपने लिए उपयोगी कैरियर का चुनाव कर सके।

10.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. वर्मा एवं उपाध्याय (1996): शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन, रवि मुद्रणालय, आगरा–2, 1996

2- Sarita & Tomar Monika (2005). Guidance & Counselling, Shri Publishers & Distributers New Delhi-110002, 2005

इकाई–11 परामर्श की प्रक्रिया

संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 परामर्श की आवश्यकता

11.4 परामर्श प्रक्रिया के अंग

11.5 परामर्श प्रक्रिया के चरण

11.6 परामर्श प्रक्रिया के लक्ष्य

11.7 परामर्श प्रक्रिया के सिद्धान्त

11.8 परामर्श प्रक्रिया में ध्यान देने योग्य बातें

11.9 सारांश

11.10 अभ्यास के प्रश्न

11.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.1 प्रस्तावना

परामर्श निर्देशन कार्यक्रम का एक आवश्यक अंग एवं सहयोगी प्रक्रिया है। परामर्श के अवधारणा, विशेषताओं एवं परिभाषाओं को आप पूर्व की इकाई में पढ़ चुके है। परामर्श की एक निश्चित प्रक्रिया होती है और इस प्रक्रिया के संचालन में ही परामर्श की सफलता निहित होती है। इस इकाई में हम परामर्श प्रक्रिया के विषय में विस्तार से पढ़ेंगे।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- परामर्श के विविध सोपान को स्पष्ट कर सकेंगे।
- परामर्श प्रक्रिया में ध्यान देने योग्य बातों की विवेचना कर सकेंगे।
- परामर्श प्रक्रिया के चरणों की व्याख्या कर सकेंगे।
- परामर्श प्रक्रिया के सिद्धान्त एवं उद्देश्य बता सकेंगे।

11.3 परामर्श प्रक्रिया की आवश्यकता

मिस ब्रेगडन ने इन परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर परामर्श की आवश्यकता को इंगित किया है–

- वह परिस्थिति जब कि व्यक्ति न केवल सही सूचनायें चाहता है वरन् अपने व्यक्तिगत समस्याओं का भी समाधान चाहता है।
- जब विद्यार्थी अपने से अधिक बुद्धिमान श्रोता चाहता है जिससे वह अपनी समस्याओं का समाधान और भविष्य के लिये परामर्श व सुझाव चाहता हो।
- जब परामर्शदाता ऐसी सुविधाओं का आकलन करता है जो विद्यार्थियों की समस्याओं को सुलझाने में सहायक होती है पर विद्यार्थी उनका आकलन नही कर पाते है।
- जब विद्यार्थी को समस्या हो पर उसे इस समस्या का आभास न हो रहा हो तो उसे इस अवस्था का आभास दिलाने के लिये परामर्श प्रक्रिया संचालित की जाती है।
- जब बच्चों को समस्या की जानकारी हो परन्तु उसे समझने, परिभाषित करने और समाधान करने में वह अपने को असमर्थ पाते हों या वह आकस्मिक तनाव के कारण इसे सुलझा नहीं पाते हैं।
- जब बच्चे कुसमायोजन के प्रभाव में हो और इसके लिये निदान व उपचार की आवश्यकता हो।
- जब जीवन के किसी पक्ष में हो रहे बदलाव को समझने में बच्चे/व्यक्ति अपने को असमर्थ पाते है।
- समाज के ढाँचे में बदलाव के साथ मनुष्य की भूमिका में जबरदस्त बदलाव तथा परिवर्तन ने उसके सामने समायोजन की समस्या खड़ी कर दी है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. विद्यार्थी परामर्श के लिए कैसे व्यक्ति को चुनना पसन्द करता है?

....

2. बच्चा कुसमायोजन का शिकार होने पर किसकी मदद लेना चाहता है?

....

3. समाज के ढ़ाँचे में हो रहे बदलाव का व्यक्ति के जीवन में क्या प्रभाव पड़ा है?

....

11.4 परामर्श की प्रक्रिया के अंग

परामर्श प्रक्रिया में अनेक तत्व सम्मिलित होते है। विलियम कोटल ने परामर्श में सात तत्वों के सम्मिलित होने की आवश्यकता बतायी है जो कि निम्नवत है–

- दो व्यक्तियों में परस्पर सम्बन्ध आवश्यक है।
- परामर्शदाता व परामर्श प्रार्थी के मध्य विचार–विमर्श के अनेक साधन हो सकते हैं।
- प्रत्येक परामर्शदाता अपना कार्य पूरे लगन से करे ।
- परामर्श प्रार्थी की भावनाओं के अनुसार प्रक्रिया के स्वरूप में परिवर्तन हो।
- प्रत्येक परामर्शदाता अपना ज्ञान पूरे ज्ञान से करता है।
- परामर्शदाता की भावनाओं के अनुसार परामर्श के स्वरूप में परिवर्तन हो।
- प्रत्येक परामर्श साक्षात्कार निर्मित होता है।

परामर्श प्रक्रिया में शिक्षार्थी एक प्रशिक्षित व्यक्ति के साथ कुछ विशिष्ट उद्देश्यों को स्थापित करने के लिये कार्य करता है तथा ऐसे व्यवहारों को सीखता है जिसका अर्जन उद्देश्यों तक पहुँचने के लिये आवश्यक है। इसके लिए निम्न मान्यतायें आवश्यक है।

- परामर्शदाता प्रशिक्षित व अनुभवी होना चाहिये।
- परामर्श के लिये उचित वातावरण होना चाहिए।
- परामर्श द्वारा व्यक्ति की वर्तमान व भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिये।
- **संघर्षमय अवस्था का आभास**–यह वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति अपने को उपस्थित समस्या के प्रति जागरूक हो जाता है और वह उस परिस्थिति से निकलने के लिये संघर्ष करता है और फिर उसके समक्ष वह परिस्थिति भी आती है कि वह अपनी समस्या किसके समक्ष रखे।

1. **अचेतन की स्वीकृति**–इस अवस्था में वह परिस्थिति जब अचेतन मन की स्वीकृति परामर्श के लिये हो जाती है और व्यक्ति अन्दर से अपनी समस्या के समाधान हेतु दूसरे से परामर्श लेने को तैयार हो जाता है।
2. **दमन की भूमिका**–अपने आपको परामर्श के लिये तैयार करने के साथ भी अपनी भावनाओं के दमन की स्थिति बनी रहती है। व्यक्ति अपनी भावनाओं को प्रदर्शित करने में हिचकिचाहट का अनुभव करता है।
3. **परनिर्भरता एवं हस्तान्तरण**–इस समय तक प्रार्थी अपनी समस्याओं के साथ उसके समाधान हेतु परामर्शदाता पर आश्रित हो जाता है और फिर वह सूचनाओं का हस्तान्तरण करने के लिये तैयार हो जाता है।
4. **अन्तर्दृष्टि की उपलब्धि**–इसके पश्चात् परामर्शदाता व प्रार्थी को प्राप्त सूचनाओं के आधार पर अन्तर्दृष्टि का अनुभव होता है।
5. **उचित संवेगो पर बल**–आपसी वार्ता से प्राप्त अनुभव से उचित संवेगों पर बल

दिया जाता है।

6. **स्वीकारात्मक अभिरूचि**—इसके पश्चात् प्रार्थी स्वीकार करते हुये परामर्श का आवश्यक अंग बन जाता है।

परामर्श प्रक्रिया के तत्व—परामर्श की सम्पूर्ण प्रक्रिया के प्रमुख तीन अंग है। इसके तीन प्रमुख अंग परामर्शदाता, परामर्श प्रार्थी एवं लक्ष्य। लक्ष्य ही तो वह केन्द्र बिन्दु है जिसके चारों ओर पूरी परामर्श प्रक्रिया संचालित होती है। लक्ष्यों का निर्धारण शिक्षार्थी के वातावरण, आवश्यकताओं व समाज को ध्यान में रखकर किया जाता है। शिक्षार्थी की रूचि, आवश्यकताओं एवं अभिक्षमता को महत्व दिया जाये।

वास्तव में परामर्श त्रिध्रुवीय प्रक्रिया है। इसमें परामर्शदाता व परामर्शप्रार्थी दोनों ही लक्ष्य को पाने का प्रयास करते है।

बोध प्रश्न—

टिप्पणी—क— नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख— इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4. परामर्श का महत्वपूर्ण अंग कौन हैं?

....

5. परनिर्भरता व हस्तान्तरण की परिस्थिति कब आती है?

....

6. स्वीकारात्मक अभिरूचि प्रार्थी में कब जागृत होती है?

....

11.5 परामर्श प्रक्रिया के चरण

परामर्श प्रक्रिया में परामर्शदाता व प्रार्थी समस्या समाधान हेतु लक्ष्य निर्धारित करके एक चरणबद्ध तरीके से आगे बढ़ते है। विलियम एवं डारले ने परामर्श प्रक्रिया के निम्न चरण उल्लिखित किये हैं—

- **विश्लेषण**—इस चरण में विविध तरीकों से प्रार्थी से सम्बन्धित सूचनायें एकत्र की जाती हैं जिससे कि प्रार्थी को पूरी तरह से जाना जा सके।
- **संश्लेषण**—इस चरण में प्राप्त सूचनाओं को व्यवस्थित तरीके से रखा जाता है।
- **प्राक्कथन**—व्यवस्थित आंकड़ों के आधार पर समस्या को एक समग्रता के रूप में देखा जाता है।
- **परामर्श**—इसमें परामर्शदाता व प्रार्थी दोनों मिलकर समायोजन के लिये प्रयास करते हैं। इसमें परामर्शदाता व प्रार्थी मिलकर समस्या समाधान हेतु भविष्य की ओर कदम बढ़ाते हैं।

- **अनुवर्ती सेवायें**—इस चरण में संचालित परामर्श के विविध चरणों के प्रयासों का मूल्यांकन किया जाता है। इसके अतिरिक्त इस बात पर भी बल दिया जाता है कि प्रार्थी भविष्य में किन समस्याओं को सुलझाने का प्रयास कर पायेगा।

रोजर के द्वारा विविध चरणों को इस प्रकार से व्याख्यायित किया गया।

1. एक व्यक्ति एक आकस्मिक निर्णय लेते हुये सहायता के लिये आता है।
2. परामर्श दाता यह स्थिति उत्पन्न करता है कि प्रार्थी अपनी समस्या को समझे और समाधान करने की दक्षता उत्पन्न कर ले।
3. परामर्शदाता स्वतन्त्र प्रतिक्रिया को प्रोत्साहित करता है यह स्वतन्त्र प्रतिक्रिया किसी समस्या के सन्दर्भ में ही होगी। यह उत्तेजना व सजगता उत्पन्न करेगी। प्रार्थी को यह बताने का प्रयास नही किया जाता कि वह सही है या गलत। परामर्शदाता प्रार्थी को वैसा ही स्वीकार कर लेता है जैसा वह है।
4. परामर्शदाता नकारात्मक प्रतिक्रिया को भी स्वीकृति देता है और उनमें विविधता लाने का प्रयास करता है।
5. इसके पश्चात् अप्रत्याशित सत्य ऊपर आता है जो कि नकारात्मक प्रतिक्रिया के पश्चात् उद्भव होता है।
6. परामर्शदाता सकारात्मक अनुभवों का विश्लेषण कर स्वीकृति देता है।
7. फिर स्वानुभव व आत्मज्ञान का उद्भव होता है।

बोध प्रश्न—

टिप्पणी—क— नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख— इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

7. परामर्शदाता किसके प्रतिक्रियाओं को सकारात्मक सहयोग देता है?

....

8. अनुवर्ती सेवाओं की क्या आवश्कता होती है?

....

11.6 परामर्श प्रक्रिया का लक्ष्य

परामर्श प्रक्रिया का लक्ष्य सर्वथा प्रार्थी को पूर्ण सहयोग एवं सक्षम बनाना होता है। परन्तु परामर्श की प्रकृति के अनुसार लक्ष्यों को परिभाषित अलग से किया जाता है। ब्याय एवं जी0 जे0 पाहन ने प्रार्थी केन्द्रित परामर्श की प्रकृति पर विचार दिया कि विशिष्ट रूप से माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी को "अधिक परिपक्व एवं स्वयं क्रियाशील बनने, विधेयात्मक एवं रचनात्मक दिशा की ओर अग्रसर होने में सहायता प्रदान करने तथा

अधिकाधिक परिपक्व ढंग से विचार–विमर्श में सहायता प्रदान करना परामर्श प्रक्रिय। का लक्ष्य है।"

सामान्य नैदानिक परामर्श पर विचार–विमर्श प्रकट करते हुये **ब्वाय एवं पाइन** ने लिखा कि– यह "प्रार्थी को अधिक अच्छा करने में सहायता देने अर्थात् प्रार्थी को स्वयं के महत्व को स्वीकार करने, वास्तविक 'स्व' एवं आदर्श 'स्व' के बीच के अन्तर को मिटाने में सहायता देने तथा स्वयं की व्यक्तिगत समस्याओं में अपेक्षाकृत सफलतापूर्वक विचार करने में सहायता प्रदान करने से सम्बन्धित है।"

अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संघ ने दूसरी ओर परामर्श के तीन उद्देश्य बताये–

- प्रार्थी को इस योग्य बनाना कि वह स्वयं के अभिप्रेरकों, आत्म दृष्टिकोणों व क्षमताओं को यर्थाथ रूप में स्वीकार कर ले।
- प्रार्थी को सामाजिक, आर्थिक एवं व्यावसायिक वातावरण के साथ तर्कयुक्त सामंजस्य स्थापित करने में सहयोग देना।
- व्यक्तिगत विभिन्नताओं के प्रति समाज को जागरूक करना जिससे कि रोजगार व सामाजिक सम्बन्धों में भी प्रश्रय मिले।

इसके आधार पर परामर्श के तीन उद्देश्य मुख्य रूप से स्पष्ट हुये–

1. आत्मज्ञान / आत्मविश्लेषण–परामर्शदाता प्रार्थी को दक्षता उत्पन्न करने में सहायता देता है कि सेवार्थी स्वयं का मूल्यांकन कर सके। स्वयं की क्षमता, योग्यता एवं रूचि को वास्तविक रूप में जानने के लिये ही परामर्श की आवश्यकता होती है और परामर्श का यही लक्ष्य होता है कि वह प्रार्थी को आत्मविश्लेषण के लायक बना दें।

लियोना टायलर ने लिखा कि–"परामर्श को एक सहायक प्रक्रिया के रूप में समझा जाना चाहिये जिसका उद्देश्य व्यक्ति को परिवर्तित करना नही है वरन् उसके उन स्रोतों के उपयोग में सक्षम बनाना है जो उसके पास इस जीवन का सामना करने हेतु उपलब्ध है। तब परामर्श से इस उपलब्धि की अपेक्षा करेंगे कि प्रार्थी स्वयं रचनात्मक कार्य करने लगे।"

2. आत्म स्वीकृति–परामर्श का दूसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य है प्रार्थी को स्वयं को स्वीकृत करने में सहयोग देना है। आत्म स्वीकृति का अभिप्राय अपने प्रति आदरभाव रखते हुये उचित दृष्टिकोण का निर्माण करना है। आत्म स्वीकृति की अवस्था तब आती है जबकि प्रार्थी अपनी सीमाओं, कमियों व योग्यताओं के विषय में उचित ज्ञान पा जाता है। आत्मविश्लेषण के पश्चात् आत्मस्वीकृति व्यक्ति को हताशा व निराशा से बचाती है।

3. सामाजिक सामंजस्य–परामर्श प्रक्रिया का एक प्रमुख लक्ष्य व्यक्ति का समाज एवं वातावरण से सामंजस्य बैठाना भी है। प्रार्थी समायोजन न कर पाने के कारण समस्याग्रस्त होता है। सामाजिक जीवन व आवश्यकताओं को समझना एवं उसके अनुकूल स्वयं को ढालने की दक्षता उत्पन्न करना परामर्श का ही कार्य है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

9. आत्मज्ञान कब होता है?

....

10. आत्मस्वीकृति क्यों आवश्यक है?

....

11. व्यक्ति के लिये सामाजिक सामंजस्य क्यों आवश्यक है?

....

11.7 परामर्श प्रक्रिया के सिद्धान्त

परामर्श की सम्पूर्ण प्रक्रिया एक निश्चित सिद्धान्त पर आधारित है। मैकेनियल और शैफ्टल ने इन सिद्धान्तों की चर्चा की है–

- **स्वीकृति का सिद्धान्त–**इस सिद्धान्त के अनुसार प्रार्थी के पूरे व्यक्तित्व को समझा जाता है और उसके अधिकारों का पूरा सम्मान किया जाता है और प्रार्थी के भावनाओं को स्वीकार कर सही दिशा दी जाती है।
- **सम्मान का सिद्धान्त–**इसमें प्रार्थी के विचारों, भावनाओं व समस्याओं को स्वीकृति दी जाती है और उसे पूरा आदर दिया जाता है।
- **उपयुक्तता का सिद्धान्त–**परामर्श में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि प्रार्थी को ऐसा अनुभव हो जाये कि परामर्श प्रक्रिया पूरी तरह से उसके लिये उपयुक्त है।
- **सहसम्बन्ध का सिद्धान्त–**परामर्श प्रक्रिया में परामर्शदाता प्रार्थी के विचारों व भावनाओं के साथ सहसम्बन्ध बनाने का प्रयास करता है और उसके साथ तारतम्यता बनाकर चलता है।
- **सोद्देश्यता का सिद्धान्त–**सम्पूर्ण परामर्श प्रक्रिया सोद्देश्य होती है।
- **लोकतन्त्रीय आदर्शो का सिद्धान्त–**सम्पूर्ण परामर्श प्रक्रिया, लोकतान्त्रिक आदर्शो से संचालित होती है इसमें व्यक्तिगत भिन्नताओं को सम्मान करते हुये सभी के व्यक्तित्व का आदर किया जाता है और प्रार्थी को महत्व देते हुये उसे निर्णय लेने के योग्य बनाया जाता है।
- **लचीलेपन का सिद्धान्त–**परामर्श प्रक्रिया लचीली होती है वह प्रार्थी की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित की जाती है और उसका सम्पूर्ण स्वरूप प्रार्थी के हित पर निर्धारित होता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

12. परामर्श प्रक्रिया के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्त बताइए?

....

13. परामर्श प्रक्रिया लचीली क्यों होनी चाहिए?

....

11.8 परामर्श प्रक्रिया में ध्यान देने योग्य बातें

परामर्श प्रक्रिया उद्देश्यों पर आधारित होती है। इसका संचालन बहुत ही सावधानीपूर्वक करना पड़ता है। अन्यथा उद्देश्यों की प्राप्ति में कठिनाई आती है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि परामर्श की प्रक्रिया निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए सावधानी पूर्वक संचालित की जाए–

- परामर्श बहुत ही शांत एवं अनुकूल वातावरण में संचालित होनी चाहिए।
- परामर्श के लिए परामर्श प्रार्थी स्वयं उत्साहित हो एवं प्रतिभाग के लिए तैयार हो।
- परामर्श प्रक्रिया के संचालन हेतु यह प्रयास किया जाए कि विश्वसनीय सूचनायें एकत्र हो जिससे कि विश्लेषण कर उचित मार्गदर्शन दिया जा सके।
- प्रक्रिया में प्रार्थी को अपनी बात रखने का पूरा अवसर दिया जाना चाहिए। जिससे कि उचित एवं अवसरानुकूल जानकारियाँ मिल सकें।
- परामर्श प्रक्रिया परामर्श प्रार्थी को मानसिक रूप से पूरी तरह से तैयार करके ही प्रारम्भ की जाए।
- परामर्श प्रक्रिया बहुत ही सहज वातावरण एवं प्रकृति के साथ प्रारम्भ की जानी चाहिए जिससे कि प्रार्थी अपने आप को पूरी तरह से सहज अनुभव कर सकें।
- परामर्श प्रक्रिया परामर्श दाता को प्रार्थी के साथ पूरी तरह से सामंजस्य बिठाकर ही संचालित करना चाहिए जिससे कि प्रार्थी को अपनी गति से तथ्यों को समझने में सहायता मिले।
- परामर्श प्रक्रिया में यह आवश्यक है कि परामर्शदाता का दृष्टिकोण सकारात्मक हो जिससे कि प्रार्थी की सोच एवं समझ सकारात्मक मार्ग की ओर ही जाए।
- परामर्श प्रक्रिया में कुछ आवश्यक तथ्यों की गोपनीयता बनायी रखी जानी

चाहिए जिससे कि प्रार्थी उन तथ्यों को भी परामर्श के समय रखने में सरलता का अनुभव करें।

- इस प्रक्रिया में यह आवश्यक होता है कि प्राप्त तथ्यों का पर्याप्त एवं सही विश्लेषण करने के पश्चात् ही उनका संश्लेषण करके सही निष्कर्ष की ओर पहुँचा जाए।
- परामर्श प्रक्रिया में यदि आवश्यक हो तो परामर्श प्रार्थी से सम्बन्धित लोगों से अवश्य ही सम्बन्ध स्थापित किया जाए जिससे कि पूर्ण जानकारी मिल सकें।
- समस्या से सम्बन्धित पूर्ण तथ्यों के जानकारी के पश्चात् ही परामर्श की प्रक्रिया प्रारम्भ की जाए।
- परामर्शदाता को यह ध्यान में रखना चाहिए कि वह अपने किसी भी विचार एवं प्रतिक्रिया को प्रार्थी को मानने के लिए बाध्य ना करें। वह प्रार्थी को स्वतन्त्रता दे कि वह परामर्शदाता की विचारों एवं प्रतिक्रिया से सहमत या असहमत हो सकता है।

इन बिन्दुओं को ध्यान में रखकर यदि परामर्श प्रक्रिया संचालित की जाती है तो अवश्य ही वह लक्ष्योन्मुखी होगी।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

14. परामर्शदाता परामर्श प्रार्थी को किस बात की स्वतन्त्रता दे?

....

15. परामर्श प्रक्रिया के लिए वातावरण कैसा होना चाहिए?

....

11.9 सारांश

परामर्श प्रक्रिया निर्देशन का व्यावहारिक पक्ष है। इसके संचालन में सावधानी के साथ उद्देश्यपूर्णता की आवश्यकता होती है। सम्पूर्ण परामर्श प्रक्रिया निश्चित सिद्धान्तों को लेकर संचालित की जाती है। इन सिद्धान्तों के अभाव में परामर्श प्रक्रिया के उचित स्वरूप की संकल्पना नहीं की जा सकती। इस इकाई में आपने परामर्श प्रक्रिया के विषय में बहुत ही व्यापक ज्ञान प्राप्त किया जो आपके लिए लाभप्रद होगा।

11.10 अभ्यास के प्रश्न

1. परामर्श प्रक्रिया के उद्देश्य, लक्ष्य, स्वरूप एवं सिद्धान्तों की विस्तार से विवेचना कीजिए?

11.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. अधिक समझदार व्यक्ति के पास।
2. परामर्शदाता।
3. कुसमायोजन।
4. प्रार्थी।
5. जब प्रार्थी अपनी समस्याओं के समाधान के लिए परामर्शदाता पर आश्रित हो जाता है।
6. जब प्रार्थी को यह विश्वास हो जाता है कि परामर्शदाता उसकी समस्या का उचित निदान निकालने में उसकी सहायता करेगा।
7. प्रार्थी के।
8. इन सेवाओं से परामर्श के विविध चरणों एवं प्रयासों का मूल्यांकन किया जाता है और इस बात पर भी बल दिया जाता है कि भविष्य में और किस तरह के प्रयासों की जरूरत है।
9. अपने आप को पूरी तरह से समझने में सक्षम होने के पश्चात्।
10. हताशा एवं निराशा से बचाने के लिए।
11. क्योंकि व्यक्ति को हर समय समाज में रहना पड़ता है।
12. स्वीकृति, सम्मान, उपयुक्तता, सहसम्बन्ध एवं सोद्देश्यता।
13. जिससे कि प्रार्थी की आवश्यकता के अनुसार उसमें परिवर्तन किया जा सकें।
14. बात न मानने की।
15. सहज एवं शान्त वातावरण।

11.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Perin, H, Mehta & Hoshing, P. Mehta. (1960). The History of the Guidance Movement in India.
2. Pal., S.K. (1968). Guidance in Many Lands.
3. रमाकान्त दुबे, :शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के आधार, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
4. Burt. C.(1955). The Historical Development of the Child Guidance Movement in Education.
5. Kumari S.& Tomar M. (2005). Guidance and Counceling, Shree Publishers and Distibuters New Delhi.

संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 परामर्शदाता की प्रकृति एवं गुण

12.4 परामर्शदाता के कार्य

12.5 परामर्शदाता का प्रशिक्षण एवं तैयारी

12.6 परामर्शदाता के प्रशिक्षण में आवश्यक तत्त्व

12.7 परामर्शदाता के नैतिक सिद्धान्त

12.8 सारांश

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.1 प्रस्तावना

किसी भी समाज में परामर्श द्रेने व प्राप्त करने की परम्परा उसके गठन से ही आरम्भ हो जाती है। किसी निश्चित लक्ष्य को ध्यान में रखकर परामर्श की प्रक्रिया संचालित की जाती है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के संचालन का दायित्व परामर्शदाता पर होता है। उसकी कुशलता परामर्श प्रक्रिया की सफलता को निर्धारित कर देती है। परामर्श की सम्पूर्ण प्रक्रिया, परामर्शदाता के कार्य, व्यक्तित्व, गुणों, प्रशिक्षण व व्यवसाय के प्रति निष्ठा पर निर्भर करती है। इस इकाई में हम परामर्शदाता की प्रकृति व गुणों के विषय में विस्तार से पढ़ेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- परामर्शदाता की प्रकृति व उसके कार्यों की विवेचना कर सकेंगे,
- परामर्शदाता के प्रभावशाली होने हेतु आवश्यक गुणों का वर्णन कर सकेंगे।

12.3 परामर्शदाता की प्रकृति

आज हम परामर्श प्रक्रिया को जिस रूप में देखते हैं यह पूर्व में ऐसी नही थी परन्तु बदलते परिस्थितियों के साथ परामर्श का स्वरूप बदल गया और आकस्मिक सलाह ने एक सेवा का रूप ले लिया। पूर्व में परामर्शदाता के स्थान पर निर्देशन विशेषज्ञ शब्द प्रचलित था। उन्नीसवीं सदी कें तीसरें व चौथे दशक के मध्य परामर्शदाता शब्द

का प्रयोग होना प्रारम्भ हुआ। **डी0डबल्यू0 लीफियर** ने परामर्शदाता शब्द के प्रयोग हेतु सुझाव दिया और दोनों शब्दों का अन्तर करते हुये लिखा कि "शिक्षक एवं परामर्शदाता दोनों शब्दों का प्रयोग प्रायः अदल–बदल कर एक ही अर्थ मे किया जाता है किन्तु एक साधारण अन्तर है। परामर्शदाता वह है जो अपने समय या अधिकांश समय निर्देशन कार्य में संलग्न रहता है किन्तु उससे विपरीत अध्यापक समय निकालकर सीमित समय में ही निर्देशन का कार्य करता है।"

ए0जे0जोन्स ने अपनी पुस्तक "प्रिन्सिपल ऑफ गाइडेन्स" में लिखा कि जो परामर्श देने का कार्य करता है वही परामर्शदाता है इसका तात्पर्य यह है कि परामर्शदाता का कार्य पूर्ण कालिक जबकि शिक्षक का निर्देशन का दायित्व अंशकालिक होता है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने परामर्शदाताओं के कुछ गुण गिनायें हैं जो कि निम्नवत् हैं। इसमें केयर ने उच्च कोटि के परामर्शदाता के निम्न गुणों की चर्चा की है–

- **आकर्षक व्यक्तित्व :– केलर** के अनुसार अच्छे परामर्शदाता का व्यक्तित्व आकर्षक होता है और वह परामर्शप्रार्थियों को आकर्षित करते है और उसमें प्रभावित होकर परामर्शप्रार्थी अपना उचित सहयोग परामर्श में देता है। परामर्शदाता की भूमिका अध्यापक की तरह की होती है। जिसके प्रभावशाली व्यक्तित्व से विद्यार्थी प्रभावित होता है।

- **उच्च कोटि की बुद्धि :–** परामर्शदाता को एक कुशल एवं परिपक्व बुद्धि वाला व्यक्ति होना चाहिए जो अपने ज्ञान एवं अनुभव का उचित स्थान पर प्रयोग कर सके।

- **विषय की पूरी जानकारी :–** प्रभावशाली एवं सफल परामर्शदाता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह निर्देशन की पूरी जानकारी रखे। इसके अतिरिक्त परामर्शदाता को परिस्थितियों परिवेश व परामर्श विधियों की पूरी जानकारी होनी चाहिये।

- **विशिष्ट कौशल :–** परामर्शदाता को परामर्श के विशिष्ट कौशल की जानकारी होनी चाहिये। उसके बिना वह परामर्श प्रक्रिया को संचालित नही कर सकता है। उसके पास साक्षात्कार नियोजन, सूचनायें एकत्र करना, मापन आदि कार्य करने का कौशल होना चाहिए।

- **वैयक्तिक गुण :–** परामर्शदाता को विविध व्यक्तित्व एवं गुण वाले तथा विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त परामर्शप्रार्थियों से मिलना पड़ता है। अतः उसे धैर्यवान, संयमी, सहिष्णु, आशावादी, वस्तुनिष्ठ एवं सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए।

- **परामर्शप्रार्थी की स्वतंत्रता पर विश्वास :–** सफल परामर्शदाता परामर्शप्रार्थी की स्वतंत्रता को महत्व देता है। वह **प्रत्याशी** को अपने विचारों की अभिव्यक्ति हेतु प्रोत्साहित करता है। वह परामर्शप्रार्थी को अपने सुझाव स्वीकारने व अस्वीकारने की स्वतंत्रता देता है।

- **नैतिक आचरण :–** परामर्शदाता को उच्च नैतिकता एवं आदर्शों का आचरण करने वाला होना चाहिये। उसकी नैतिकता ही परामर्शप्रार्थी को अपनी समस्या व्यक्त

करने के लिये प्रोत्साहित करती है। गोपनीयता की रक्षा करना परामर्शदाता का प्रथम कर्तव्य है।

- **लचीलापन :–** परामर्शदाता को कठोर एवं परम्परावादी नही होना चाहिये। बदलती परिस्थितियों के अनुसार उसे समायोजन करते हुये उचित निर्देशन विधियों का प्रयोग करना चाहिये। विचारों की परिवर्तनशीलता उसके आचरण में होना चाहिये।

2. **रोजर्स तथा वैलेन के अनुसार :–** इनके अनुसार सम्पूर्ण परामर्श प्रक्रिया में परामर्शप्रार्थी मुख्य होता है। अतः उसकी आवश्यकता, समस्याओं एवं हितों को ओर ध्यान देते हुये परामर्शदाता में निम्न गुणों को होना चाहिए–

- **व्यक्ति की समायोजन क्षमता मे विश्वास –** सभी व्यक्तियों में अनुकूलन की क्षमता और पर्याप्त समायोजन की क्षमता विद्यमान रहती है। आधुनिक परामर्शदाता व्यक्ति की इस क्षमता मे विश्वास करता है।

- **समग्र व्यक्तित्त्व के लिये आदर :–** एक सफल परामर्शदाता परामश प्राथी की सम्पूर्ण व्यक्तित्व का आदर करते हुये उसके विकास मे पूरा सहयोग देने का प्रयास करता है। वह प्रार्थी के व्यक्तित्व में आ रही समस्त विकृतियों पर ध्यान देते हुये उनसे निजात पाने में प्रार्थी को पूर्ण सहयोग करके दिशा प्रदान करता है।

- **स्वंय की क्षमता को स्वीकार कर स्वयं का आदर करने में प्रार्थी को सहयोग :–** प्रार्थी परामर्शदाता की बौद्धिक क्षमता व नैतिकता स्तर को ध्यान में रखते हुये अपनी समस्त गोपनीय समस्याओं से परामर्शदाता को अवगत कराता है और परामर्शदाता उसी के आधार पर प्रार्थी को आत्मबोध कराने में सहयोग करता है। आर0रोजर्स एवं जे0एल0वैलन के अनुसार परामर्शदाता के समग्र व्यवहार का लक्ष्य प्रार्थी को स्वयं को समझने में सहायता करना है।

- **प्रार्थी के मतैक्य के प्रति सहिष्णुता :–** सफल परामर्शदाता को प्रार्थी के स्वतंत्रता को स्वीकार करते हुये उसके मतैक्य के प्रति भी स्वीकृति का दृष्टिकोण रखना चाहिये। उसका महत्वपूर्ण कार्य प्रार्थी को अपने विवेक से निर्णय लेने में सहायता प्रदान करना है।

3. **स्टीफ्लेर एवं स्टीवर्ड के अनुसार :–** इन्होंने परामर्शदाता में मुख्य रूप से निम्न गुणों की संकल्पना की है। इनके अनुसार परामर्शदाता में निम्नगुण अनिवार्य रूप से होने चाहिये–

- **नैतिक व्यवहार :–** परामर्शदाता को नैतिक एवं उच्च आदर्शों से परिपूर्ण व्यवहार वाला होना चाहिये। यही व्यवहार उसे दूसरों का विश्वास जीवन में जीतने के लायक बनाता है।

- **स्वीकृति :–** परामश प्रक्रिया में प्रार्थी के व्यक्तित्व का ही सफल निर्देशन प्रक्रिया का आधार है। इसीलिये यह आवश्यक है कि प्रार्थी के विचारों, मतभेदों एवं दृष्टिकोण को स्वीकार कर परामर्शदाता उसके व्यक्तित्व को स्वीकृति दें।

- **लचीलापन :–** परामर्श की प्रक्रिया एक ऐसी जटिल प्रक्रिया है जिसमें परामर्शदाता को 'प्रार्थी' के व्यवहारों, विचारों व भावनाओं के अनुरूप स्वयं को निर्देशित करना होता है। यह तभी सम्भव है जब परामर्शदाता में लचीलापन हो। अपनी इसी विशेषता के बल पर परामर्शदाता प्रार्थी से सहयोगपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर सकता है।

- **संवेदनशीलता :–** परामर्शदाता का एक अन्य आवयक गुण है ईमानदारी तथा अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक होना। परामर्श की प्रक्रिया में परामर्शदाता की भूमिका तभी निष्पक्ष होगी जब वह अपने कार्य के प्रति ईमानदार, समर्पित व जागरूक होगा।

- **रोयबर का मत :–** परामर्शदाता की विभिन्न विशेषताओं को अलग–अलग मनोवैज्ञानिकों ने बताया। **ई0सी0रोयबर** ने मनोवैज्ञानिकों द्वारा बताई गई इन विशेषताओं को एक साथ रखकर सात वर्गों में बांटा है–

- **पारस्परिक सम्बन्ध :–** चूंकि परामर्श दो ध्रुवीय प्रक्रिया है इसकी सफलता परामर्शदाता व प्रार्थी के पारस्परिक सम्बन्धों पर आधारित है। ये सम्बन्ध विकसित करने हेतु परामर्शदाता में ये गुण होने आवश्यक हैं– दूसरों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना, प्रार्थी के दृष्टिकोण का आदर, उदारता, स्वीकृति, धैर्य, सामाजिक संवेदनशीलता, ईमानदारी, पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता, लोगों से मिलने व अपनी पहचान बनाने की क्षमता।

- **नेतृत्व :–** परामर्शदाता में नेतृत्व का गुण होना आवश्यक है, जिससे वह लोगों को प्रभावित कर अपनी ओर खींच सकें। लोग उस पर विश्वास कर, उसकी सहायता प्राप्त करने के लिए आतुर हों।

- **जीवन दर्शन :–** स्वस्थ जीवन–दर्शन, अच्छा आचरण, नागरिकता, आस्था, सौन्दर्यबोध का होना आवश्यक है।

- **स्वास्थ्य तथा बाह्य व्यक्तित्व :–** परामर्शदाता का स्वास्थ्य उत्तम, वाणी मधुर तथा व्यक्तित्त्व आकर्षक होना चाहिए। उसके अन्दर सहनशक्ति तथा स्वच्छता के गुणों का होना अनिवार्य है। उसका व्यवहार दूसरों को प्रभावित करने वाला होना चाहिए।

- **शैक्षिक पृष्ठभूमि तथा विद्वता की शक्तियां :–** सामाजिक कार्यों में रूचि, कार्यक्षमता, ज्ञान, सामाजिक संस्कार, शिक्षा या ज्ञान के प्रति झुकाव, व्यावहारिक निर्णय आदि गुण सफल परामर्श हेतु परामर्शदाता में आवश्यक है।

- **व्यक्तिगत समायोजन :–** आत्मसम्मान, आत्मविश्वास, परिपक्वता, भावात्मक स्थिरता, अपनी न्यूनताओं का ज्ञान व उनकी स्वीकृति, अनुकूलन क्षमता, अनुभवों से लाभ उठाने की क्षमता, प्रार्थी को विश्वास में ले उसके मतभेदों को दूर करने, समझाने की क्षमता आदि व्यक्तिगत समायोजन के अन्तर्गत आता है।

- **वृत्ति के प्रति समर्पित होना :–** अपने व्यवसाय के प्रति निष्ठा व समर्पण का भाव, व्यवसाय विकास हेतु कार्य, अपने व्यवसाय के प्रति उच्च दृष्टिकोण किसी भी समय आवश्यकता पड़ने पर तैयार रहना अपने क्षेत्र के (व्यवसाय) किसी भी

कार्य, संलग्न सहयोगियों की मदद, उनको प्रेरित करना, निर्देशन कार्य में रूचि लेना आदि उसके आवश्यक है।

- **भारतीय मत** :– भारतीय संस्कृति धर्म प्रधान रही है। भारतीयों पर धर्म का गहरा प्रभाव है। धर्म के सच्चे स्वरूप का पालन करते हुए व्यक्ति एक आदर्श परामर्शदाता बन सकता है। गांधी, बुद्ध, विवेकानन्द, टैगोर आदि के जीवन अनुभव, आत्म साक्षात्कार व उनके खोजे गये सत्य मानवता का पाठ पढ़ाते हैं। वे व्यक्ति की समस्याओं को दूर कर उन्हें विकास की ओर अग्रसर करने पर बल देते है। एक परामर्शदाता को धर्म के सिद्धान्तों का आदर करना चाहिए। ये मानव मूल्य एक सफल परामर्शदाता मे विद्यमान होना आवश्यक है। अपनी पुस्तक में **ए0आर0वाडिया** ने लिखा है, "अपने उच्चतम विकास में धर्म ने इस प्रकार का मनुष्य उत्पन्न किया है, जिसमें गुणों की गरिमा व्याप्त है तथा जो इतना उपरोक्त वर्णित विशेषताएं एक आदर्श परामर्शदाता के लिए आवश्यक हैं, जिन्हें अपने जीवन का अंग बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके अतिरिक्त भारतीय स्कूलों में कार्यरत अध्यापक भी एक अच्छा परामर्शदाता बन सकता है। वह अपने विद्यार्थियों के लिये समय–समय पर सही पथ–प्रदर्शक के रूप में कार्य कर सकता है।

1. अध्यापक अपने विद्यार्थियों को अच्छी तरह से जानते हैं व विद्यार्थी अध्यापक को। इस कारण विद्यार्थी अपनी समस्याओं को अच्छी तरह से अध्यापक के समक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं।
2. अध्यापक में 'विद्यार्थी' की समस्या को धैर्य से सुनने की योग्यता होनी चाहिए।
3. विद्यार्थी के साथ वार्तालाप करने व समस्या पर चिन्तन करने की योग्यता अनिवार्य है।
4. विद्यार्थियों का सहयोग प्राप्त करने की योग्यता होनी चाहिए।
5. अध्यापक, विद्यार्थियों की योग्यताओं को पहचान कर उन्हें प्रोत्साहित करें।
6. परामर्श कार्य को एक स्वयंसेवा मान कर कार्य करें। साथ ही विद्यार्थी का सम्मान करें व उसकी समस्या के प्रति संवेदनशील हों।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. परामर्शदाता की तुलना किससे की गयी है?

   ....

2. परामर्शदाता के लिए योग्यता क्या है?

   ....

3. परामर्शदाता के व्यक्तित्व में क्या गुण होने चाहिए?

   ....

12.4 परामर्शदाता के कार्य

फरामर्शदाता का कार्य व्यापक है। **जोन्स** ने परामर्शदाता की प्रकृति एवं परामर्श को दृष्टिगत रखते हुये निम्न कार्य बतायें–

- एक व्यक्ति की समस्या से सम्बन्ध सूचना की व्याख्या करना।
- प्रार्थी की समस्या को ध्यानपूर्वक सुनने, जांच करने व सलाह की प्रक्रिया का संचालन।
- समस्या के समाधान हेतु सहायक सामग्री को प्रयोग में करना।
- प्रार्थी को समस्याओं के प्रति जागृत करने का कार्य करना।
- समझ में न आ सकने वाली समस्याओं को परिभाषित करना।
- प्रार्थी को स्वयं समाधान हेतु समस्या को विश्लेषित करना।
- गम्भीर असमायोजन में सहायता करना।

परामर्शदाता द्वारा किये जाने वाले इन्हीं कार्यों के कारण **फ्रैंकलिन जे0 केलर** ने परामर्शदाता को अध्यापक के समकक्ष माना है। **स्टीवर्ड** के अनुसार परामर्शदाता के निम्नलिखित कार्य हैं –

- प्रार्थी की आवश्यकताओं एवं समस्याओं को समझना।
- प्रार्थी से सम्बन्धित सूचनाओं को एकत्र करना।
- अपनी समस्याओं को समझने में परामर्शप्रार्थी की सहायता करना।
- विद्यालय, कक्षा एवं उसके आस–पास के पर्यावरण के साथ प्रार्थी का सामंजस्य स्थापित करना।
- प्रार्थी के साथ आपसी सम्बन्ध व सम्प्रेषण स्थापित करना।
- प्रार्थी को शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाने हेतु सामाजिक समायोजन के बीच ताल–मेल बनाना।
- समूह में निर्देशन की प्रक्रिया स्थापित करना।

ई0जी0 विलियम्सन ने अपनी पुस्तक ''थ्योरिज ऑफ गाइडेन्स'' में परामर्शदाता की भूमिका को स्पष्ट करते हुये लिखा कि परामर्शदाता का कार्य है–

- **परामर्श प्रार्थी को व्यवहार परिवर्तन में सहायता देना** :–यह परामर्शदाता का कार्य है कि वह प्रार्थी को उसकी की योग्यताओं, रूचियों व विशेषताओं की जानकारी दें। उनके उपयोग व महत्व का ज्ञान कराये व स्वयं निर्णयन की क्षमता विकसित करें।
- **प्रार्थी को व्यवहार में सुधार लाने में सहयोग** :–प्रभावी परामर्श प्रार्थी व परामर्शदाता के मध्य आपसी प्रभावी संबंध पर निर्भर है। प्रार्थी को यह सहयोग

देना भी परामर्शदाता का ही कार्य है कि वह प्रार्थी को अपने में वांछित व्यवहार करने हेतु क्षमता उत्पन्न करें।

- **प्रार्थी द्वारा प्रश्नों का उत्तर पाना** :– परामर्शदाता का यह भी कार्य है कि वह प्रार्थी से अधिकतम जानकारी हेतु प्रश्नों को पूछे और जानकारी इकट्ठी करें। प्रश्न उपयोगी संक्षिप्त एवं विवेकपूर्ण होने चाहिए।
- **प्रार्थी को सूचनायें प्रदान करना** :–परामर्शदाता अपने प्रार्थी से अनेक प्रकार की सूचनायें एकत्र करता है और उन सूचनाओं का विश्लेषण करके कुछ परिणाम प्राप्त करता है। परामर्शदाता इन सूचनाओं को पुनः परामर्श प्रक्रिया में प्रार्थी को प्रदान करता है।
- **प्रार्थी के विषय में प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण** :–प्रार्थी प्रक्रिया के दौरान अनेक सूचनायें परामर्शदाता को देता है। यही सूचनायें परामर्शदाता और समस्त परामर्श प्रक्रिया को एक दिशा देती हैं। अतः परामर्शदाता का एक प्रमुख कार्य इन सूचनाओं का विश्लेषण करना भी है जिससे वह प्रार्थी को समझ सकें।
- **मानवीय व्यवहार से सम्बन्धित प्रत्यय के विषय में जानकारी देना**:–प्रार्थी सामान्य मानव प्रवृत्ति एवं व्यवहार से भी अनभिज्ञ रहता है। परामर्शदाता का यह कार्य है कि वह मानव व्यवहार एवं प्रकृति से प्रार्थी को अवगत करायें जिससे कि वह समस्या के प्रति सजग हो सके।
- **सलाह प्रदान करना** :–परामर्श प्रक्रिया का अन्त वास्तव में प्रार्थी को समस्या समाधान हेतु अपनी स्वयं की क्षमता को पहचाने की क्षमता जागृत करने का सलाह से ही होता है।
- **निर्णयन प्रक्रिया के सम्बन्ध में सूचनायें देना** :–निर्णयन की क्षमता को सही दिशा प्रदान करना परामर्श प्रक्रिया का उद्देश्य है। परामर्शदाता का यह भी कार्य है कि वह प्रार्थी को यह बतायें कि भविष्य में निर्णय कैसे लिये जायें। उसके पूर्व में लिये गये निर्णयों में कमी क्यों है।
- **प्रार्थी के सम्बन्ध में आवश्यक आंकड़े एकत्र करना** :–परामर्शदाता का सम्पूर्ण कार्य प्रार्थी से प्राप्त आंकड़ों पर निर्भर करता है। प्राप्त आंकड़ों को एकत्र करना, प्रार्थी को प्रोत्साहित करना, प्रार्थी पर विभिन्न परीक्षण प्रशासित करना सभी परामर्शदाता के प्रमुख कार्य हैं।
- **प्रार्थी के सामाजिक वातावरण के सम्बन्ध में सूचना देना** :–परामर्शदाता का एक प्रमुख कार्य है प्रार्थी को उसके सामाजिक वातावरण के विषय में जानकारी देना।
- **मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के विषय में सूचना देना** :–सभी लोगों के लिये

यह कठिन होता है कि वह मानव मात्र की व्यावहारिक परिवर्तनों को समझ सकें। परामर्शदाता का यह भी कार्य है कि वह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की जानकारी प्रार्थी को भी दें जिससे कि वह अपनी समस्याओं को सही प्रकार से समझ सकें।

- **सलाहकार के रूप में कार्य करना** :–परामर्शदाता का प्रमुख कार्य प्रार्थी को उचित सलाह देना है जिससे कि वह अपनी समस्या और उसके परिप्रेक्ष्य में अपनी समझ के प्रति उचित दृष्टिकोण विकसित कर सकें। परामर्शदाता अपनी सलाह को मनवाने हेतु प्रार्थी को प्रेरित नही करता बस निर्विकार भाव में सलाह देता है।
- **प्रार्थी का अन्य लोगों से वार्तालाप करवाना** :–प्रार्थी का अध्यापक, अभिभावक एवं समाज के अन्य लोगों से वार्तालाप की मध्यस्थता करना भी परामर्शदाता के प्रमुख कार्यो में से एक है। परामर्श प्रक्रिया की अवधि में प्रार्थी के साथ अनेक लोगों की वार्ता करायी जाती है जिसको व्यस्थित करने का कार्य परामर्शदाता को करना पड़ता है।
- **प्रार्थी के वातावरण से सम्बन्धित सूचना इकठ्ठा करना** :– परामर्शदाता का एक प्रमुख कार्य प्रार्थी से सम्बन्धित वास्तविक वातावरण से आवश्यक सूचनायें एकत्र करना है। प्रार्थी के आर्थिक सामाजिक परिस्थिति, पारिवारिक स्थिति सामाजिक एवं पारिवारिक सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त करना ही परामर्शदाता का प्रमुख कार्य है।
- **मानक आंकड़े एकत्र करना** :–परामर्शदाता का सबसे प्रमुख कार्य है मानकीकृत आंकड़ों को इकठ्ठा करना क्योंकि इन सभी के कारण ही सम्पूर्ण परामर्श प्रक्रिया की बस्तुनिष्ठता प्रभावित होती है।

मेयर्स ने परामर्शदाता का प्रमुख कार्य बताया है :–

- मीटिंग का समय निर्धारण।
- मीटिंग व्यवस्थित करना।
- मीटिंग तैयार करना।
- मीटिंग संचालित करना।
- मीटिंग का रिकार्ड तैयार करना।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4. परामर्शदाता को व्यवसाय के प्रति उचित समझ क्यों होनी चाहिए?

....

....

5. परामर्शदाता का मुख्य लक्ष्य क्या होता है?

....

....

6. परामर्शदाता को सहनशील क्यों होना चाहिए?

....

....

12.5 परामर्शदाता का प्रशिक्षण एवं तैयारी

परामर्शदाताओं की व्यावसायिक–शिक्षा का विकास हमारे देश में उस प्रकार से नही हुआ है जैसा आवश्यकतानुसार होना चाहिए। हमारे देश में ऐसी संस्थाएं कम हैं जो ऐसा प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान कर रही हैं। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अधिकांश लघु अवधि कार्यक्रम हैं, जिनमें व्यावसायिक निर्देशन व सूचनाओं को प्रदान करने पर ही बल दिया जाता है। अधिकांश शिक्षण–संस्थाओं में परामर्श कार्यक्रम निम्न प्रकार से चल रहा है :–

1. विद्यालयों और महाविद्यालयों में किसी अध्यापक को अंशकालीन या पूर्ण अवधि के लिए परामर्शदाता का अतिरिक्त कार्यभार सौंप दिया जाता है। ऐसे अध्यापक का चयन उसकी परामर्श के प्रति रूचि को देखकर किया जाता है। साथ ही उसमें विद्यार्थियों को साथ लेकर चलने की योगयता व विद्यार्थियों का विश्वास हासिल करने की क्षमता देखी जाती है ताकि वे एक सफल सलाहकार की भूमिका निभा सकें। ऐसे अध्यापकों के लिए शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन हेतु कौशल के विकास हेतु, लघु–अवधि के प्रशिक्षण कार्यक्रम महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

2. पूर्ण अवधि परामर्शदाता के रूप में कार्य करना। यह परामर्शदाता उपयुक्त प्रशिक्षण प्राप्त होता है, जिससे वह सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान करने के योग्य होता है।

3. परामर्श मे स्नातकोत्तर स्तर प्रशिक्षण सबसे उच्च प्रशिक्षण माना जाता है। इस प्रकार के उच्च प्रशिक्षण प्राप्त परामर्शदाता परामर्श कार्यक्रमों के नियोजन और प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। परन्तु भारतीय स्कूल व कालेजों में उच्च प्रशिक्षण प्राप्त परामर्शदाता को कोई अवसर नही मिलता।

अमेरिका मे निर्देशन व परामर्श कार्य में संलग्न संगठनों ने परामर्शदाताओं के प्रशिक्षण के लिए आवश्यक शर्ते निर्धारित की हैं :–

1. परामर्शदाता को किसी विश्वसनीय संस्था से स्नातक की उपाधि प्राप्त करनी चाहिए। साथ ही जिस स्तर के विद्यार्थियों के लिए परामर्श का कार्य करना है, उसी स्तर के लिए राज्य द्वारा निर्धारित योग्यताओं के अनुरूप प्रशिक्षित अध्यापक का प्रमाण–पत्र होना चाहिए।

2. परामर्शदाता को निर्देशन के महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर विस्तृत अध्ययन से युक्त उपाधि प्राप्त करनी चाहिए, जो कम से कम मास्टर उपाधि के बराबर अवश्य हो।

3. स्कूल परामर्शदाता शिक्षा कार्यक्रमों मे निम्नलिखित तत्व शामिल हों–

   अ– व्यवसायिक अध्ययन जिसमें निम्न विषय हों–

   - विकासात्मक एवं शिक्षा मनोविज्ञान।
   - परामर्श सिद्धान्त और प्रक्रियाएं।
   - शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन।
   - अनुसंधान की विधि और कार्य।
   - समूह सिद्धान्त और प्रक्रियाएं।
   - परामर्श के कानूनी और नैतिक गुण।

   ब– निरीक्षण अनुभव, से– प्रयोगशाला, इन्टर्नशिप कार्य।

   स– विद्यालय के शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक वातावरण को समझने की व्यवस्था।

4. स्कूल परामर्शदाता का शिक्षा कार्यक्रम सुनियोजित एवं विद्यार्थियों की आवश्यकतानुरूप हो।

5. स्कूल परामर्शदाता का शिक्षा कार्यक्रम औपचारिक शिक्षा की समाप्ति के साथ खत्म नही होता बल्कि यह तो परामर्श–प्रक्रिया के साथ–साथ चलता रहता है। इससे परामर्शदाता के कार्य व अनुपात में और वृद्धि होती है।

भारत में प्रशिक्षण कार्यक्रम :– भारत में परामर्शदाता प्रशिक्षण कार्यक्रम मे निम्नलिखित विषय सम्मिलित हैं–

- निर्देशन का सैद्धान्तिक ज्ञान।
- निर्देशन में मापन।
- निर्देशन में सांख्यिकी।
- परामर्श सिद्धान्त और प्रविधियां।

प्रयोगात्मक कार्य–इसमें मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग, उनका निर्माण करना व व्याख्या आदि।

वर्तमान परामर्श प्रक्रिया अत्यन्त जटिल एवं तकनीकि से परिपूर्ण है अतः अब परामर्शदाता के प्रशिक्षण एवं अनुभव पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। मेयर्स ने परामर्शदाता के प्रशिक्षण व तैयारी में निम्नलिखित गुणों को विशेष महत्त्व दिया है –

- परामर्शदाता को हाईस्कूल के शिक्षा के उद्देश्य पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियों की जानकारी अवश्य होनी चाहिये।
- विविध व्यवसायों से सम्बन्धित आवश्यक जानकारी होनी चाहिये।
- परामर्शदाता को परामर्श के सिद्धान्तों से अवगत कराया जाना चाहिये।
- परामर्शदाता के पास अच्छी शिक्षा होनी चाहिये। उसे समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, इतिहास व भूगोल की जानकारी हो।
- परामर्शदाता के पास परामर्श सेवा संचालन हेतु सम्पूर्ण ज्ञान होना चाहिये।
- वृत्तिक सूचनायें प्रदान करने हेतु योग्यता प्रदान की जाये इस सबके आधार पर परामर्शदाता के लिये शैक्षिक उपलब्धि रखने की अनिवार्यता मानी जाए।
- परास्नातक मनोविज्ञान या शिक्षा/स्नातक या एम0एड0 में निर्देशन का विशेषीकरण।
- शैक्षिक निर्देशन में डिप्लोमा।
- निर्देशन की तकनीकि, सिद्धान्त, विधियों, परीक्षण प्रशासित करने, मानसिक स्वास्थ्य एवं निर्देशन संचालन करने की दक्षता।

परामर्शदाता के लिये अनुभव–स्मिथ के अनुसार परामर्शदाता के पास निम्न अनुभव होने चाहिये–

- परामर्शदाता के पास निर्देशन कार्यक्रम संचालन की दक्षता होनी चाहिये। उसकी इस अनुभव में दक्षता होगी–
- बच्चों की समस्या को समझ सकना।
- समस्या समाधान की क्षमता।
- बच्चों के मध्य मध्यस्थता की दक्षता।
- व्यवसाय प्राप्त करने हेतु सही तरीके से प्रयास करवाने हेतु अनुभव।
- स्वच्छता एवं सुचितापूर्ण सूचना प्रदान करने की दक्षता।
- सामाजिक संसाधनों को उपयोग हेतु दक्षता।
- परामर्श प्रक्रिया का मूल्यांकन करने की कुशलता। **एडवर्ड सी रोजर्स** ने परामर्शदाता में इन विशेषताओं व दक्षताओं को उत्पन्न किये जाने पर बल दिया–
- **अन्तःसम्बन्ध स्थापित करने की कुशलता**–परामर्शदाता को इस प्रकार से तैयार करना चाहिये कि वे तत्काल आवश्यक सम्पर्क स्थापित करके सामने वाले प्रार्थी को अपनी समस्या को खुलकर कहने के लिये अभिप्रेरित करें।

- **वैयक्तिक समायोजन**—परामर्शदाता में इन गुणों को भी उत्पन्न किया जाता है जिससे कि उसका वैयक्तिक समायोजन हो सके –

अ) परिपक्वता	य) स्वयं की सीमायें जानना।
ब) भावात्मक स्थिरता	र) आलोचना सहने की क्षमता।
स) लचीलापन	ल) स्व सम्मान व स्व बल।
द) हास्य विनोद	व) स्वयं के प्रति ज्ञान।

नेतृत्व की क्षमता —परामर्शदाता में नेतृत्व की क्षमता की भी आवश्यकता होती है क्योंकि वह सम्पूर्ण निर्देशन प्रक्रिया का संचालन करता है।

व्यवसायिक लगाव—परामर्शदाता में अपने व्यवसाय के प्रति लगाव की भावना भी विकसित की जाती है जिससे कि वह अपने व्यवसाय का आदर करें और उसके लिए आवश्यक कार्य करें। इसके लिये उसमें ये गुण उत्पन्न किये जाते हैं–

- व्यावसायिक अभिवृत्ति।
- व्यावसायिक मूल्य।
- लक्ष्य के प्रति लगाव।
- शैक्षिक कार्यो के प्रति उत्कंठा एवं ईमानदारी।
- व्यावसायिक मूल्यों के प्रति गंभीर आस्था।
- व्यावसायिक विकास
- अधिक समय तक कार्य करने में सुविधा।
- परामर्श कार्य के लिए रूचि।

केलर के अनुसार उपर्युक्त सभी गुणों के साथ परामर्शदाता का व्यक्तित्व प्रभावशाली होना चाहिए।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

7. परामर्शदाता में नेतृत्व की क्षमता क्यों होनी चाहिए?

....

8. परामर्शदाता को किसका अनुभव होना चाहिए?

....

....

12.6 परामर्शदाता के नैतिक सिद्धान्त

परामर्श–प्रक्रिया को संचालित करने से पूर्व कुछ नैतिक सिद्धान्तों का पालन करना परामर्शदाता के लिए आवश्यक है। ये नैतिक सिद्धान्त परामर्शदाता का तो मार्ग–दर्शन करते ही हैं साथ ही प्रार्थी व परामर्शदाता के बीच अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के लिए नितान्त आवश्यक हैं। ई0सी0रोयबर ने परामर्शदाताओं के नैतिक अनुशासन का उल्लेख किया है–

1. **निष्ठा**– परामर्शदाता अपने प्रार्थी, विंद्यालय व समाज के प्रति उत्तरदायी होता

है।

2. **स्थित से परिचित कराना–** प्रार्थी को समस्या समाधान की प्रक्रिया में उत्पन्न होने वाली प्रत्येक स्थिति से अवगत कराना चाहिए।

3. **गोपनीयता–** परामर्शदाता, प्रार्थी द्वारा प्राप्त जानकारी को किसी अन्य व्यक्ति या अधिकारी के सम्मुख तब–तक प्रकट न करेगा जब–तक प्रार्थी की अनुमति नही प्राप्त कर लेगा।

4. **संकटकालीन उपायों की जानकारी–** खतरे की सम्भावना में परामर्शदाता उचित अधिकारी को इसकी सूचना दे अथवा आपातकालीन उपाय करे, जो आवश्यक हों।

5. **सक्षम व्यक्ति से विचार–विमर्श–** प्रार्थी के भले के लिए यदि आवश्यक हो तो परामर्शदाता अपने से अधिक अनुभवी व सक्षम व्यक्ति से विचार–विमर्श कर सकता है।

6. **निर्णय क्षमता–** प्रार्थी की समस्याओं, उससे प्राप्त सूचनाओं, अन्य अधिकरणों से सूचनायें निकलवाने, उनका उपयोग, अपने व्यवसायिक कार्यकर्त्ताओं से कार्य निकलवाने में परामर्शदाता की विवेकपूर्ण निर्णय क्षमता सहायक होती है।

7. **मनोवैज्ञानिक सूचनायें–** परामर्शदाता मनोवैज्ञानिक सूचनाओं की व्याख्या इस प्रकार करता है जो प्रार्थी व उसके अभिभावकों दोनों हेतु रचनात्मक हो सकें।

8. **अभिलेखों की उपयोगिता–** परामर्श साक्षात्कार, नोट्स, परीक्षण की व्याख्या आदि परामर्शदाता के व्यक्तिगत उपयोग के होते हैं। ये स्कूल के अभिलेख का अंग नही होते।

9. **सन्दर्भ प्रदान करना–** आवश्यकता होने पर परामर्शदाता, प्रार्थी को पूर्ण रूप से योग्य व्यक्ति या अधिकरण को सन्दर्भित करता है। यह कार्य प्रार्थी व अभिभावक की स्वीकृति पर ही करता है।

10. **अक्षमता का प्रदर्शन–** वांछनीय कारणों से यदि परामर्शदाता, प्रार्थी की सहायता करने में असमर्थ है तो वह शुरू में ही मना कर सकता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

9. परामर्शदाता के लिए कैसा प्रशिक्षण होना चाहिये?

....

10. परामर्शदाता के भी प्रशिक्षण पर क्यों जोर दिया जा रहा है?

....

11. परामर्शदाता को विद्यालय के विषयों की जानकारी क्यों होनी चाहिए?

....

12.7 परामर्शदाता के लिये प्रशिक्षण कार्यक्रम में आवश्यक तत्व

परामर्शदाताओं को तैयारी हेतु देश भर में अनेक प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जा

रहे हैं। देश में कुछ संस्थान ऐसे भी हैं जो कि इनके लिये नियमित व्यवस्थित प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित कर रहें है। परामर्शदाताओं के लिये कुछ डिप्लोमा व सर्टिफिकेट कोर्स भी संचालित है जिनका विवरण नीच दिया जा रहा है ।

- विद्यालय एवं कॉलेज स्तर पर जिस अध्यापक को निर्देशन में रूचि होती है उसे वह कार्य दिया जाता है। उसमें विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने, आकृष्ट करने एवं आत्मूल्य करने की दक्षता भी उत्पन्न होनी चाहिये। ये अध्यापक किसी भी प्रकार से निर्देशन कार्यक्रम के लिये प्रशिक्षित नही होते। इन अध्यापकों को यदि सेवा कालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं दक्षता आधारित कोई कार्यक्रम का अनुभव दिया जाये तो ये निर्देशन प्रक्रियों में उपयोगी भूमिका निभा सकते हैं।
- दूसरे चरण में नियमित परामर्शदाता के रूप में कार्य करते है। इस परामर्शदाता के पास सम्पूर्ण शिक्षा एवं प्रशिक्षण अनुभव होता है और यह विद्यार्थियों की सभी प्रकार की समस्याओं को सुलझाने में सक्षम होते हैं। ये सभी प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं उनका विश्लेषण करना जानते हैं। ये परामर्श को अपने विशेषीकृत प्रशिक्षण के लिये चयनित करते हैं।
- परामर्शदाताओं के लिये परास्नातक स्तर पर परामर्श हेतु प्रशिक्षण सबसे बड़े स्तर का प्रशिक्षण माना जाता है इसके लिये उत्कृष्ट प्रशिक्षण की अत्यधिक आवश्यकता होती है। अमेरिकन स्कूल काउन्सलर पोनिसो स्टेटमेन्ट ने परामर्शदाता के प्रशिक्षण के लिये इन स्थितियों के लिये आवश्यकता बनायी है।
- स्कूल काउन्सलर को स्नातक होना चाहिये तथा काउन्सिलिंग में परास्नातक होना चाहिये। उसके पास जहाँ वह नियुक्त हो, उसका एक परामर्श का सर्टिफिकेट अवश्य हो।
- **एक निश्चित स्तर का सर्टिफिकेट दिया जाना चाहिये और परामर्श में दो वर्ष की स्नातक शिक्षा भी हो सकती है।**
- **काउन्सलर के प्रशिखण कार्यक्रम में निम्न तत्व सम्मिलित किये जाने चाहिये।**
    1. शैक्षिक एवं विकासात्मक मनोविज्ञान।
    2. परामर्श सिद्धान्त एवं विधियाँ।
    3. शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक विधियाँ।
    4. समूह सिद्धान्त एवं विधियाँ।
    5. शोध के कार्य एवं विधि ।
    6. परामर्श एवं शिक्षा के सिद्धान्त।
    7. विधिक एवं नैतिक मूल्य।
- **परामर्शदाता की तैयारी में विशेष आवश्यकता एवं स्तर के विशेष सन्दर्भ में** मानविकी, सामाजिक विज्ञान, व्यावहारिक व जीवन विज्ञान से सम्बन्धित विद्यार्थियों के प्रति उचित दृष्टिकोण व क्षमता भी सम्मिलित किया जाना चाहिये।
- प्रयोगशाला प्रायोगिक कार्य इत्यादि में अनुभव प्रदान किया जाना चाहिय।
- अधिगम परिस्थितियों के मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक वातावरण तथा विद्यालय

पाठ्यक्रम के प्रति उचित समझ उत्पन्न करना।

- विद्यालय काउन्सलर के प्रशिक्षण कार्यक्रम पूर्ण व्यवस्थित एवं विद्यार्थियों एवं क्षेत्र विशेष की आवश्यकताओं को भी केन्द्र बिन्दु में रखकर बनाये जाने चाहिए।

गिलबर्ट रेन ने अमेरिकन पर्सनल एण्ड गाइडेन्स एसोसियशन के अनुरोध पर अपने सहयोगियों के साथ परामर्शदाताओं के प्रशिक्षण हेतु निम्न सुझाव दिये–

1. **शिक्षा विषय के दो मुख्य विषय** :– मनोविज्ञान एवं सामाजिक एवं व्यावहारिक विज्ञान के क्षेत्र मुख्य रूप से समाहित किये जायें।
2. परामर्शदाता के द्विवर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम में ये विषय सम्मिलित किये जायें:–
   - शैक्षिक दर्शन एवं विद्यालय पाठ्यक्रम हेतु विधियाँ।
   - निरीक्षित अनुभव।
3. प्रशिक्षित व्यक्ति जो प्रशिक्षणार्थियों (परामर्शदाताओं) को प्रशिक्षित करें।
4. निरीक्षित अनुभव प्रत्येक स्तर के परामर्श शिक्षा की एवार्ड के लिये आवश्यक हो।

1950 में डिवीजन ऑफ काउन्सिलिंग साइकोलॉजी ऑफ दी अमेरिकन साइकोलॉजिस्ट एसोसिएशन ने परामर्शदाताओं की तैयारी हेतु ये कदम सुझाये–

1. **व्यक्तित्व संगठन एवं विकास** :– इसमें व्यक्तित्व से सम्बन्धित विषय जैसे व्यक्तित्व के सिद्धान्त, विकास के सिद्धान्त इत्यादि सम्मिलित किये जायें।
2. **सामाजिक वातावरण का ज्ञान** :– इसमें सामाजिक संस्थाओं के सन्दर्भ में समुदाय से सम्बन्धित जानकारी सम्मिलित हो।
3. वैयक्तिक विवरण।
4. **परामर्श सिद्धान्त एवं अभ्यास।**
5. **वैयक्तिक निदान अनुभव** :– **यह अनिवार्य विषय के** रूप में परामर्शदाता प्रशिक्षण कार्यक्रम में सम्मिलित किया जाय।
6. **अनुसंधान एवं सांख्यिकी** :– यह परामर्शदाता के लिये आवश्यक नही कि वह अनुसंधान करे परन्तु उसे अनुसंधान विधियों एवं प्रकार का ज्ञान अवश्य होना चाहिये।
7. **व्यावसायिक अनुस्थापन** :– इसके अन्तर्गत परामर्शदाता को सम्पूर्ण **परामर्श कार्यक्रम का प्रशासनिक एवं संरचनात्मक ढांचा बताया जाये।**

इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुये भारत में परामर्शदाता प्रशिक्षण कार्यक्रम में निम्न विषय सम्मिलित हैं :–

- **निर्देशन के सिद्धान्त।**
- निर्देशन का मापन।
- निर्देशन में सांख्यिकी।
- परामर्श के सिद्धान्त एवं तकनीकी।
- **व्यावहारिक कार्य** :– परामर्श कार्यक्रम का संचालन इत्यादि।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

12. परामर्शदाताओं के प्रशिक्षण में मुख्य विषय के रूप में किसे रखा गया है?

....

12.8 सारांश

सम्पूर्ण परामर्श प्रक्रिया परामर्शदाता के वैयक्तिक व व्यावसायिक गुण पर निर्भर करती है इसीलिये उसके व्यक्तित्व एवं व्यावसायिक तैयारी पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। इस इकाई में इन्हीं पक्षों पर पूरा ध्यान केन्द्रित किया गया है।

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. गुरू से।
2. शिक्षाशास्त्र में एम0ए0 या एम0एड0 निर्देशन में डिप्लोमा।
3. धैर्य, सहनशील, सहृदयी, आशावान सहनशीलता, दूरदर्शिता।
4. अपने व्यवसाय से उचित समझ के कारण ही वह व्यवस्था के माँग के अनुरूप कार्य कर पायेगा।
5. प्रार्थी का सहयोग।
6. प्रार्थी के विविध समस्याओं के प्रस्तुतिकरण से होने वाले तनाव से बचने के लिए।
7. सम्पूर्ण प्रक्रिया को संचालित करने के कारण।
8. परामर्शदाता को परामर्श संचालन का पूरा ज्ञान होना चाहिए।
9. व्यावहारिक।
10. कार्य के प्रति रूचि, अनुभव, व्यवहार एवं लगन जागृत करने हेतु।
11. क्योंकि परामर्शदाता को विद्यालय में विद्यार्थियों को शैक्षिक परामर्श भी देना होता है।
12. शिक्षा मनोविज्ञान एवं शैक्षिक निर्देशन।

12.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Jones, A.J. (1963). Principles of Guidance & Pupil Personnel Work, New York.
2. Myres, G.E. (1941). Principles and Techniques of Guidance, New York.
3. Sharma, R.A., Fundamentals of Guidance and Counselling.
4. Ramakant Dubey (2006), Basses of Educational and Vocational Guidance.

खण्ड

4

परामर्श के प्रकार एवं परीक्षण

इकाई-13 5

परामर्श के विविध रूप

इकाई-14 18

वैयक्तिक एवं सामूहिक परामर्श

इकाई-15 32

निर्देशन में परीक्षणों का उपयोग

इकाई-16 50

विशेष समूहों के लिए निर्देशन

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
डॉ0 ए0 के0 सिंह	कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0 पी0 गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 राम शकल पाण्डेय	पूर्व आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 हरिकेश सिंह	आचार्य शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

परिमापक

प्रो0 एस0 पी0 गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक

डॉ0 सरोज पाण्डेय	एसोसियेट प्रोफेसर, एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली

लेखक

डॉ0 सुषमा पाण्डेय	वरिष्ठ प्रवक्ता, शिक्षाशास्त्र विभाग, दी0 द0 उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खण्ड-4 : परिचय

खण्ड–4 परामर्श के प्रकारों एवं परीक्षण से सम्बन्धित हैं।

इकाई–13 में परामर्श के विविध रूपों से सम्बन्धित हैं। परामर्श की विविध प्रविधियों ने ही ही उसके विविध रूपों को जन्म दिया और सभी प्रविधियों व रूपों का मुख्य उद्देश्य प्रार्थी का सहयोग है। सभी रूपों का विकास परिस्थितिजन्य है। इस इकाई में आपने इसके विविध रूपों के विषय में विस्तार से जानेंगे।

वैयक्तिक एवं सामूहिक परामर्श के विषय में चर्चा इकाई –14 में की गई है। वैयक्तिक एवं समूह परामर्श दोनों ही परिस्थितियों के अनुसार उपयोगी सिद्ध होते हैं परन्तु दोनों की ही परिस्थितिजन्य समस्याओं के आधार पर उपयोगिता सिद्ध होती है। आवश्यकता इस बात की है कि परामर्श के दोनों रूपों को संकेत रूप से प्रयोग किया जाय। जिससे कि बालक के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन का उत्थान हो सके। आप इस इकाई में दोनों ही प्रकार के परामर्श को विस्तार से जानेंगे यह इकाई आपके लिए लाभप्रद होगी।

इकाई–15 में आप अनेक प्रभावीकृत परीक्षणों के विषय में जानेगें। इस इकाई को पढ़कर आप यह भी जान जायेंगे कि प्रमापीकृत परीक्षण निर्देशन प्रक्रिया में अहम भूमिका निभाते हैं। यह इकाई पढ़कर आपको इनकी उपयोगिता को समझ गये होंगे।

इकाई–16 में आप जानेंगे कि विशिष्ट बालक सामान्य बालकों के समूह से अलग होते हैं । उसका कारण शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक व व्यवहारगत विशिष्टतायें होती हैं जो इन बालकों को अलग कर देती है और सामान्य परिस्थितियों में कुसमायोजित भी कर देती है। ऐसे में निर्देशन ही इन्हें सामान्य जीवन जीने योग्य बना पाता है।

MAED-103
शैक्षिक निर्देशन व परामर्श

खण्ड–01 निर्देशन की अवधारणा एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

इकाई–01 निर्देशन का स्वरूप एवं आवश्यकता

इकाई–02 निर्देशन के प्रतिमान

इकाई–03 निर्देशन का ऐतिहासिक विकास

इकाई–04 निर्देशन के सिद्धान्त एवं तकनीकी

खण्ड–02 निर्देशन के प्रकार

इकाई–05 शैक्षिक निर्देशन

इकाई–06 व्यावसायिक निर्देशन

इकाई–07 वैयक्तिक निर्देशन

इकाई–08 कैरियर निर्देशन व स्थापन्न

खण्ड –03 परामर्श की प्रकृति

इकाई–09 परामर्श का स्वरूप

इकाई–10 जन–सम्पर्क तथा निर्देशन कार्यक्रम

इकाई–11 परामर्श की प्रक्रिया

इकाई–12 परामर्शदाता की विशेषतायें

खण्ड–04 परामर्श के प्रकार एवं परीक्षण

इकाई–13 परामर्श के विविध रूप

इकाई–14 वैयक्तिक एवं सामूहिक परामर्श

इकाई–15 निर्देशन में परीक्षणों का उपयोग

इकाई–16 विशेष समूहों के लिये निर्देशन

इकाई–13 परामर्श के विविध रुप

संरचना

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 परामर्श के विविध प्रकार

13.4 निदेशात्मक परामर्श

13.5 अनिदेशात्मक परामर्श

13.6 समन्वित परामर्श

13.7 सारांश

13.8 अभ्यास प्रश्न

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.1 प्रस्तावना

परामर्श परामर्शदाता एवं परामर्श प्रार्थी के मध्य चलने वाली प्रक्रिया है जिसका मुख्य उद्देश्य परामर्श प्रार्थी को आत्मज्ञान कराना व उसे सक्षम बनाना है जिससे कि वह अपने विषय में पूरी जानकारी रखते हुये भविष्य की चुनौतियों के लिये स्वयं को तैयार कर ले। आपने पूर्व में परामर्श के स्वरूप एवं परामर्श प्रक्रिया के विषय में विस्तार से अध्ययन किया है। इस इकाई में हम परामर्श के विविध रूप के विषय में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- परामर्श के विविध रूपों को बता सकेंगे।
- इसके विविध रूपों का वर्णन कर सकेंगे।
- परामर्श के विविध रूपों के मध्य अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।

13.3 परामर्श के प्रकार

हैम्रे, ट्रैक्सलर व मोर्य ने परामर्श के चार क्षेत्र बताये हैं–

1. शैक्षिक अनुस्थापन एवं निर्देशन
2. वैयक्तिक व सामाजिक समायोजन
3. व्यावसायिक अनुस्थापन एवं निर्देशन

4. स्वास्थ्य समायोजन

परामर्श चार प्रकार के होते हैं:

1. **शैक्षिक परामर्श**— विविध प्रकार के अभिवृत्तियों, क्षमताओं तथा आदतों के साथ विद्यालयी वातावरण में समायोजित होने में सहयोग देना शैक्षिक परामर्श का कार्य है।

2. **व्यावसायिक परामर्श**—इस परामर्श का कार्य व्यक्ति को उचित व्यवसाय चुनने, उसमें समायोजित होने विकास करने एवं उसके लिये तैयारी करने हेतु सहयोग देता है।

3. **व्यक्तित्व/मनोवैज्ञानिक परामर्श**—इस परामर्श के अन्तर्गत व्यक्तिगत एवं भावानात्मक समस्याओं के निदान हेतु दिया जाने वाला सहयोग आता है। विद्यालयी जीवन में आत्मग्लानि, हताशा, अकेलापन इत्यादि ऐसी मनोवैज्ञानिक समस्यायें है जिनकें कारण विद्यालय उपलब्धि पर प्रभाव पड़ता है इसीलिये इस परामर्श को माध्यमिक एवं उच्च शिक्षण संस्थाओं में चलाये जाने हेतु प्रयास किया जा रहा है।

4. **साइको थेरेपटिक/मनोपचारात्मक परामर्श**—वाई0वी0 सीन्डर ने इस परामर्श के विशेषता को उदधृत करते हुये कहा कि यह परामर्श मुखाभिमुख मनोविज्ञान में प्रशिक्षित व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ मौखिक माध्यम से उसे भावात्मक दृष्टिकोण एवं सामाजिक कुसमायोजन एवं प्रार्थी द्वारा अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु किया जाने वाला प्रयास है।''

रूथ स्ट्रैंग के अनुसार मनोविश्लेषण एवं परामर्श दोनों अन्तः सम्बन्धित हैं। पर अब वो इस बात पर सहमत हैं कि परामर्श नैदानिक है। यह परामर्श सामाजिक कुसमायोजन के निदान में सहायक है।

क्लीनिकल/नैदानिक परामर्श—इस शब्द का प्रयोग एच0बी0 पोपिन्सकी ने किया उनके अनुसार इस परामर्श का उद्देश्य है—

- लघु क्रियाशील कुसमायोजन का निदान एवं उपचार।
- परामर्शदाता एवं प्रार्थी के मध्य मुखाभिमुख सम्बन्ध।

इस परामर्श में समस्या का विश्लेषण कर उसके निदान हेतु प्रयास किये जाते हैं। यह मनोविज्ञान की मुख्य शाखा है। इसमें उस व्यक्ति का सहयोग किया जाता है जो कि कुसमायोजन एवं आत्मप्रदर्शन की समस्या से ग्रस्त हो।

वैवाहिक परामर्श—वर्तमान में समाज के बदलते ढ़ाँचे, आर्थिक परिस्थिति एवं पाश्चात्यीकरण ने वैवाहिक सम्बन्धों को भी प्रभावित किया है। इस परामर्श में प्रार्थी को विवाह जीवन में हो रही समस्याओं के निदान हेतु सहयोग दिया जाता है।

अनुस्थापन परामर्श—इस परामर्श का मुख्य उद्देश्य प्रार्थी को मनचाहा रोजगार चुनने में सहयोग करना है जिससे उसे उसकी क्षमता इच्छा व रूचि के अनुसार व्यवसाय

मिले जिससे कि उसमें उसका बेहतर समायोजन हो सके।

इसके अतिरिक्त परामर्श के इन रूपों की चर्चा की जा सकती है–

1. **अनौपचारिक परामर्श**–यह एक आकस्मिक परामर्श है जो बिना किसी पूर्व तैयारी के दिया जाता है।

2. **सामान्य परामर्श**– इस प्रकार का परामर्श किसी ऐसे व्यक्ति से प्राप्त किया जा सकता है जो किसी न किसी पेशे में हो। इसमें भी परामर्शदाता कोई पूर्व तैयारी नहीं करता।

कुछ विद्वानों ने परामर्श के अन्य तीन प्रकारों का उल्लेख किया है यथा–

1. **निदेशात्मक परामर्श**–इस प्रकार के परामर्श में परामर्शक ही सम्पूर्ण प्रक्रिया का निर्णायक होता है। प्रत्याशी परामर्शदाता के ओदशों के अनुकूल अपने को ढालता है। इसे कभी–कभी आदेशात्मक परामर्श भी कहते हैं। इस क्रिया के मूल में परामर्शक ही रहता है।

2. **अनिदेशात्मक परामर्श**–इस प्रकार के परामर्श में परामर्शप्रार्थी का विशेष महत्व होता है। इसमें वह अपनी समस्या प्रस्तुत करने तथा समस्या के समाध ाान की प्रक्रिया में बिना किसी शंका या संकोच के परामर्शक से राय माँगता है। इसे सेवार्थी–केन्द्रित परामर्श क हैं। इसकी विशद व्याख्या आगे की जाएगी।

3. **समन्वित परामर्श**–इसमें परामर्शक न अति सक्रिय रहता है और न अति उदासीन रहता है। उसकी भूमिका अत्यन्त मधुर एवं मुलायम होती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. कौन सा परामर्श मनोवैज्ञानिक परामर्श के जैसा है?

....

3. वैवाहिक परामर्श अधिक प्रचलित क्यों है?

....

13.4 निदेशात्मक परामर्श

विलियम्सन (1950) नामक विद्वान इसका जनक माना जाता है। उसके अनुसार निदेशात्मक परामर्श में तार्किकता एवं प्रभाव दोनों को ध्यान में रखा जाता है। उसने परामर्श को एक प्रभावकारी सम्बन्ध माना है और बल दिया है कि इस में बहस, विश्लेषण, तर्क–वितर्क आदि सम्मिलित रहता है किन्तु यह परामर्श किसी भी प्रकार औपचारिक

नहीं होने पाता। इस प्रकार के परामर्श का सिद्धान्त विलियम्सन ने व्यावसायिक परामर्श से लिया और बाद में इसका समन्वयन शैक्षिक एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी निर्देशन से कर दिया।

यह परामर्श साक्षात्कार एवं प्रश्नावली पद्धति से दिया जाता है विलि एव एण्ड्र ने अपनी पुस्तक "माडर्न मेथड्स एण्ड टेक्निकस इन गाइडेंस" में निदेशात्मक परामर्श की निम्न विशेषताएँ बतायी हैं :

- परामर्शदाता अधिक योग्य, प्रशिक्षित, अनुभवी एवं ज्ञानी होता है वह अच्छा समस्या समाधान दे सकता है।
- परामर्श एक बौद्धिक प्रक्रिया है।
- परामर्श प्रार्थी पक्षपात व सूचनाओं के अभाव में समस्या निदान नहीं कर सकता।
- परामर्श का उद्देश्य समस्या समाधान अवस्था माध्यम से निर्धारित किये जाते हैं।

निदेशात्मक परामर्श की मूलभूत मान्यताएँ–

1. इस परामर्श का उद्देश्य सेवार्थी के व्यक्तित्व का अधिकतम विकास है।
2. प्रत्येक व्यक्ति की कुछ विशिष्टताएँ होती हैं। जिनका विकास समाज में रहकर ही हो सकता है।
3. परामर्श स्वैच्छिक होता है।
4. परामर्श की प्रकृति उपचारात्मक होती है। यह तभी उपलब्ध कराया जाता है जब समस्या उत्पन्न होती है।
5. परामर्श में मूल्यांकन की व्यवस्था नही होती।
6. परामर्शदाता की दृष्टि प्रार्थी की समस्याओं तथा वैयक्तिक विकास पर केन्द्रीत रहता है।
7. परामर्श प्रार्थी को सम्मान दिया जाता है।

निदेशात्मक परामर्श प्रक्रिया में निहित सोपान–

1. **विश्लेषणात्मक**–इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम व्यक्ति के मूल्यांकन हेतु परामर्शदाता व्यक्ति से सम्बन्धित सूचनाएँ एवं आँकड़े एकत्र करता है। इसके अतिरिक्त वह संकलित अभिलेख, साक्षात्कार एवं अन्य लोगों की मदद भी लेता है। प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु चिकित्सीय मनोमित्तीय एवं पार्श्वचित्र का प्रयोग किया जाता है।
2. **संश्लेषण**–विलियम्स के अनुसार प्रार्थी से सम्बन्धित आँकड़ों एवं सूचनाओं को समझते हुए उसको सारांश रूप में प्रस्तुत करने की क्रिया पर बल दिया जाता है। इसके लिए प्रत्याशी से साक्षात्कार, वार्ता एवं संगोष्ठी करके तथ्यों

को इकट्ठा किया जाता है।

4. **निदान**—परामर्शप्रार्थी की समस्याओं की पहचान इस स्तर पर की जाती है। समस्या के कारणों तक पहुँचने का भी प्रयास किया जाता है।

5. **पूर्वानुमान**—इस सोपान में प्रत्याशी की समस्याओं के सम्बन्ध में पूर्व कथन किये जाते हैं। इसका स्वरूप मूलतः परिकल्पनात्मक होता है।

6. **परामर्श**—निदेशात्मक परामर्श में प्रयुक्त प्रायः यह अन्तिम सोपान हैं जिसमें प्रत्याशी से जानकारी प्राप्त करके समस्या का समाधान किया जाता है।

7. **अनुगमन**—इस स्तर पर प्रत्याशी को दिये गये परामर्श का पुनर्व्यवस्थापन किया जाता है। विलियम्सन ने अनुगमन हेतु कई सोपानों की चर्चा की है, जैसे प्रत्याशी से सम्पर्क करना, प्रत्याशी में आत्म–विश्वास उत्पन्न करना, प्रत्याशी को निर्देशित करना कि वह अपना मार्ग स्वयं निर्धारित कर ले, उसकी समस्याओं की विशद् व्याख्या करना आदि। यदि आवश्यकता हो तो प्रत्याशी को अन्य सक्षम कार्यकर्त्ताओं के पास भी भेजा जा सकता है।

- विलियम्सन एवं डार्ले ने अपनी पुस्तक 'स्टूडेन्टस परसनेल वर्क'' में निम्न सोपानों का स्पष्ट उल्लेख किया है :
- विभिन्न विधियों तथा उपकरणों के माध्यम से आँकड़े संग्रहित कर उनका विश्लेषण करना।
- आँकड़ों का यान्त्रिक व आकृतिक संगठन कर उनका संश्लेषण करना ।
- छात्र की समस्या के कारणों को ज्ञात कर निदान ज्ञात करना।
- परामर्श या उपचार।
- मूल्यांकन या अनुगमन।

निदेशात्मक परामर्श के लाभ—

1. इस प्रकार के परामर्श से समय की बचत होती है।
2. इस में समस्याओं पर विशेष बल दिया जाता है।
3. परामर्शदाता तथा प्रार्थी में आमने–सामने बात होती है।
4. परामर्शदाता का ध्यान प्रत्याशी की भावनाओं की अपेक्षा उसकी बुद्धि पर टिकता है।
5. परामर्शदाता सहज रूप में उपलब्ध रहता है।

निर्देशात्मक परामर्श की कमियाँ

1. प्रत्याशी पूर्णतया परामर्शक पर निर्भर रहता है।
2. प्रत्याशी के स्वतन्त्र न होने के कारण उस पर परामर्श का प्रभाव कम पड़ता है।
3. प्रत्याशी के दृष्टिकोण का विकास न हो पाने के कारण वह अपनी समस्या का

निराकरण स्वयं नहीं कर पाता।

4. परामर्शदाता के प्रधान होने से प्रार्थी में अपनी क्षमताओं को उत्पन्न करना कठिन हो जाता है।
5. प्रत्याशी के विषय में अपेक्षित सूचनाओं के अभाव में उत्तम परामर्श नहीं मिल पाता।
6. परामर्शदाता के अधिक महत्व से मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया नही हो पाती।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

3. निदेशात्मक परामर्श की मुख्य विशेषतायें क्या है?

....

4. इस परामर्श विधि का सबसे महत्वपूर्ण लाभ क्या है?

....

5. आपके अनुसार निदेशात्मक परामर्श की कमियाँ क्या है?

....

13.5 अनिदेशात्मक परामर्श

निदेशात्मक परामर्श के प्रतिकूल यह प्रत्याशी केन्द्रित परामर्श है। इसमें प्रार्थी के आत्मज्ञान, आत्मसिद्धि तथा आत्मनिर्भरता पर विशेष दृष्टि रखी जाती है। इसे समस्या–केन्द्रित परामर्श भी कहा जाता है। इस प्रकार के परांमर्श के प्रमुख प्रवर्तक कार्ल रोजर्स माने जाते हैं। यह परामर्श अपेक्षाकृत नवीन है और इसके अन्तर्गत व्यक्तित्व विकास, समूह–नेतृत्व, शिक्षा एवं अधिगम, सृजनात्मक आदि सम्मिलित है। परामर्शक ऐसे वातावरण का सृजन करता है जिसमें सेवार्थी स्वतन्त्र रूप से इच्छानुसार अपना निर्माण कर सके।

यह परामर्श प्रार्थी के इर्द–गिर्द घूमती हैं। इसमें प्रार्थी को आत्मप्रदर्शन, भावनाओं, विचारों एवं अभिवृत्तियों को रखने के लिये स्वतन्त्रता दी जाती है। परामर्शदाता निरपेक्ष रहता है। वह बीच में बाधक नहीं बनता और स्वयं दोनों के मध्य बेहतर समन्वयन का प्रयास करता है। इसमें खुले प्रश्न पूछे जाते हैं और ये प्रश्न हल्की संरचना के होते है। उत्तर परामर्श प्रार्थी स्वयं देता है। परामर्शदाता प्राप्त जानकारी का विश्लेषण कर अर्थ निकालता है। प्रार्थी को बोलते समय सही विधा के लिये प्रोत्साहित किया जाता है और प्रार्थी को आभास होता है कि परामर्शदाता उसके विचारों को सम्मान दे रहा है। परामर्शदाता सत्य को जानने हेतु प्रश्न नहीं पूछता। इस प्रक्रिया में

सभी को प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिक की तरह ही अधिकार होता है और प्रार्थी स्वयं विद्वान तथा समझदार की तरह ही प्रतिक्रिया करता है।

अनिदेशात्मक परामर्श की मान्यताएँ

1. **व्यक्ति के अस्तित्व में आस्था**—रोजर्स व्यक्ति के अस्तित्व को मानता है और उसका यह विश्वास है कि व्यक्ति अपने विषय में निर्णय लेने में सक्षम है।

2. **आत्मसिद्धि की प्रवृत्ति**—प्रत्याशी में आत्मसिद्धि, आत्मविकास तथा आत्मनिर्भरता की प्रवृत्ति होती है। रोजर्स यह मानते हैं कि व्यक्ति की अन्तर्निहित क्षमता होती है।

3. **मानवता में विश्वास**—मनुष्य मूलतः सद्भावी तथा विश्वसनीय होता है। कभी–कभी व्यक्ति के जीवन में ऐसी उत्तेजना उभरती है जो उसे सन्मार्ग से दूर हटाने का प्रयास करती है। ऐसी स्थिति में परामर्श के माध्यम से उनका शमन किया जाता है और व्यक्ति को सन्मार्गोन्मुख किया जाता है।

4. **मानव की बुद्धिमत्ता में विश्वास**—इस निमित्त रोजर्स व्यक्ति की बुद्धिमता में अधिक विश्वास रखता है। उसकी मान्यता है कि विषम परिस्थितियों में वह अपनी चैतन्यता का प्रयोग करता है और संगठन से ऊपर उठ कर अपनी कार्यसिद्धि करता है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त विलियम स्नाइडर ने चार अन्य मान्यताओं को स्वीकृति दी है–

(अ) व्यक्ति अपने जीवन का लक्ष्य स्वयं निर्धारित कर सकता है।

(ब) अपने द्वारा निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति में उसे संतोष होता है।

(स) अनिदेशात्मक परामर्श में प्रत्याशी अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए स्वतन्त्र रहता है। अतः परामर्श के पश्चात् वह स्वयं निर्णय लेने में सक्षम हो जाता है।

(द) व्यक्ति के समायोजन में उसका सांवेगिक द्वन्द्व बाधक होता है।

(य) अपने द्वारा निर्धारिते लक्ष्य की प्राप्ति में उसे संतोष होता है।

अनिदेशात्मक परामर्श के प्रमुख सिद्धान्त

1. **प्रार्थी का समादर**—अनिदेशात्मक परामर्श में सेवार्थी की सत्यनिष्ठा और उसकी व्यक्तिगत स्वायतत्ता को समाहित किया जाता है। परामर्शक परामर्श देता है किन्तु निर्णय प्रत्याशी पर छोड़ देता है।

2. **समग्र व्यक्तित्व पर ध्यान**—प्रार्थी के व्यक्तित्व के सम्यक् विकास पर परामर्शक का ध्यान रहता है। अनिदेशात्मक परामर्श का यह दूसरा प्रमुख सिद्धान्त है। इसके अन्तर्गत प्रत्याशी की क्षमता का इस प्रकार विकास किया जाता है कि वह अपनी समस्या का निदान स्वयं कर सके।

3. **सहिष्णुता का सिद्धान्त**—विचार—स्वातंत्र्य की स्थिति में परामर्शक को अपनी सहिष्णुता एवं स्वीकृति का परिचय देना पड़ता है। परामर्शदाता प्रत्याशी में यह भावना उत्पन्न करना चाहता है कि प्रत्याशी की बातें ध्यान से सुनी जा रही हैं और परामर्शक उसके विचारों से सहमत है।

4. **परामर्श प्रार्थी में अपनी क्षमताओं को जानने और समझने की शक्ति उत्पन्न करना**—परामर्शप्रार्थी के सम्मुख परामर्शदाता ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करता है कि वह अपने में निहित क्षमताओं को पहचान सके और परिस्थितियों से समायोजन करना सीख सके। परामर्श के माध्यम से ही ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की जाती है।

परामर्श प्रक्रिया में निहित सोपान—

1. **वार्तालाप**—परामर्शक तथा प्रार्थी के मध्य कुछ औपचारिक तथा कुछ अनौपचारिक बैठकें होती हैं। बैठकों का उद्देश्य परामर्शक तथा प्रार्थी के मध्य सौहार्दपूर्ण वातावरण का निर्माण करना है ताकि परामर्शप्रार्थी अपनी बात स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत कर सके। इसे मैत्री—उपचार भी कहते है।

2. **जाँच पड़ताल**—इस सोपान के अन्तर्गत परामर्शक अनेक विधियों का प्रयोग करता है। इनमें से कुछ प्रत्यक्ष विधियाँ होती हैं और कुछ परोक्ष विधियाँ होती है। इसका मुख्य उद्देश्य सेवार्थी के सम्बन्ध में हर प्रकार की जानकारी प्राप्त करना है।

3. **संवेग—विमोचन**—परामर्शप्रार्थी एक समस्यायुक्त व्यक्ति है जिसके अपने संवेग तथा तनाव होते है। वह अपनी समस्या को परामर्शक के सम्मुख तभी रख पाता है जब उसके मनोभावों को पूर्णतया विमोचित कर दिया जाय। इसलिए तृतीय सोपान में परामर्शक का यह प्रयास होता है कि प्रत्याशी सभी पूर्वाग्रहों तथा तनावों से मुक्त होकर अपनी समस्या प्रस्तुत करें।

4. **सुझावों पर चर्चा**—इसमें प्रत्याशी की भूमिका प्रमुख होती है। परामर्शक द्वारा दिये गये सुझावों पर वह आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाता है और उस पर टीका—टिप्पणी करता है।

5. **योजना का निर्माण**—समस्याओं के प्रस्तुतीकरण के लिए किसी योजना—निर्माण का अवसर प्रत्याशी को दिया जाता है। इस योजना निर्माण में परामर्शदाता एवं प्रार्थी दोनों का सहयोग होता है।

6. **योजना क्रियान्वयन एवं प्रार्थी**—बनायी गयी योजना का क्रियान्वयन तथा मूल्यांकन इस सोपान के अन्तर्गत होता है।

निदेशात्मक तथा अनिदेशात्मक परामर्श में अन्तर

परामर्शप्रार्थी का हित दोनों का लक्ष्य है किन्तु इस लक्ष्य की प्राप्ति के साधन भिन्न है। अन्तर साधन का है, प्रविधि का है, लक्ष्य का नहीं। फिर भी अन्तर के निम्नलिखित बिन्दु दृष्ट हैं—

1. निदेशात्मक परामर्श यह मानकर चलता है कि प्रत्याशी अपनी समस्या से इतना दबा रहता है कि वह अपनी क्षमता को न तो पहचान पाता है और न अपने पूर्वाग्रह से मुक्त हो पाता है। इसके विपरीत अनिदेशात्मक परामर्श यह मानता है कि सेवार्थी क्षमतायुक्त है और स्वतन्त्र वातावरण पाने पर वह अपनी समस्या का समाधान स्वयं कर सकता है।
2. व्यक्ति का चिन्तन बुद्धि एवं संवेग का सम्मिश्रण है। वह कभी एक का प्रयोग करता है कभी दूसरे का। निदेशात्मक परामर्श प्रत्याशी की बुद्धि पर अधिक बल देता है और उसी के अनुरूप परामर्श प्रदान करता है। अनिदेशात्मक परामर्श व्यक्ति के संवेग पर बल देता है और प्रयास करता है कि व्यक्ति अपने तनावग्रस्त मनोभावों से मुक्त होकर परामर्शित हो।
3. निदेशात्मक परामर्श समस्या--केन्द्रित है और अनिदेशात्मक परामर्श व्यक्ति--केन्द्रित है। एक में समस्या को दृष्टिगत करके और दूसरे में प्रत्याशी को दृष्टि में रखकर परामर्श दिया जाता है।
4. निदेशात्मक परामर्श विश्लेषणात्मक है और अनिदेशात्मक परामर्श संश्लेषणात्मक है।
5. निदेशात्मक परामर्श समयबद्ध है जबकि अनिदेशात्मक परामर्श है। दूसरे प्रकार के परामर्श में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है।
6. निदेशात्मक परामर्श में प्रत्याशी के विगत जीवन का कोई सहारा नहीं लिया जाता जबकि अनिदेशात्मक में उसके अतीत के विषय में जानना आवश्यक होता है।

अनिदेशात्मक परामर्श से लाभ

अनिदेशात्मक परामर्श से प्रमुख लाभ निम्न हैं–

1. अनिदेशात्मक परामर्श निश्चय रूप में स्वीकार करता है कि प्रत्याशी में विकास की क्षमता निहित है।
2. प्रत्याशी उन्मुख होने के कारण किसी अन्य प्रकार के परख की आवश्यकता नहीं होती।
3. इसमें व्यक्ति को तनाव रहित बनाने का प्रयास किया जाता है और अवचेतन मन की गुत्थियों को उभार कर चेतनमन में लाया जाता है।
4. इस प्रकार के परामर्श में जो प्रभाव मानव मस्तिष्क पर छोड़े जाते हैं, वे स्थायी होते हैं।

सीमाएँ

1. यह परामर्श मनोविश्लेषणात्मक तह तक नहीं पहुँच पाता।
2. इसमें समस्याओं की अभिव्यक्ति का अवसर दिया जाता है किन्तु समस्याओं की

उत्पत्ति के कारणों का निदान नहीं होता।

3. कभी–कभी प्रत्याशी न तो अपनी समस्या को ठीक से समझ पाता है और न ठीक से प्रस्तुत ही कर पाता है।
4. कभी–कभी परामर्शक की उदासीनता के कारण प्रत्याशी अपनी समस्या को स्पष्ट करने में असफल रहता है।
5. कई बार अधिक लचीलेपन से उचित परिस्थितियाँ नहीं बन पाती।
6. परामर्शदाता प्रार्थी के संसाधन, निर्णय एवं विद्वता पर विश्वास नहीं कर सकता।
7. सभी समस्या मौखिक रूप से निदान नहीं हो पाती।
8. परामर्शदाता के निरपेक्ष होने से प्रार्थी सही सूचना नहीं देता।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

7. अनिदेशात्मक परामर्श अधिक मनोवैज्ञानिक क्यों है?

....

8. अनिदेशात्मक परामर्श को अधिक लचीला क्यों माना जाता है?

....

9. निदेशात्मक व अनिदेशात्मक परामर्श में मूल अन्तर क्या है?

....

13.6 समन्वित परामर्श

वह एक मध्यम वर्गीय प्रविधि है। इसके प्रमुख प्रवर्त्तकों में एफ0सी0 टोम का नाम उल्लेखनीय है। समन्वित परामर्श में निदेशात्मक से अनिदेशात्मक की ओर बढ़ते हैं। यह प्रविधि पूर्णतया व्यक्ति, परिस्थिति तथा समस्या पर आधारित होती है। इसके अन्तर्गत जिन तकनीकों का प्रयोग किया जाता है उनमें प्रत्याशी में विश्वास जगाना, उसे सूचनाएँ प्रदान करना, परीक्षण करना आदि हैं।

इस प्रविधि में परामर्शदाता व प्रार्थी दोनों सक्रिय एवं सहयोगी होते हैं और निदेशात्मक व अनिदेशात्मक दोनों ही प्रविधियों के प्रयोग के कारण दोनों बारी–बारी से वार्ता में प्रतिभाग करते हैं और समस्या का समाधान मिलकर निकालते है।

समन्वित परामर्श की प्रक्रिया

1. **प्रत्याशी के व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं तथा उसकी आवश्यकताओं का अध्ययन**–इसके अन्तर्गत परामर्शप्रार्थी की आवश्यकताओं, उसकी समस्याओं

तथा उसके व्यक्तिगत विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है। परामर्श की प्रक्रिया में आगे बढ़ने के पूर्व परामर्शक प्रत्याशी के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त कर लेता है।

2. **उचित तकनीक का चयन**—परामर्शप्रार्थी की आवश्यकताओं, समस्याओं तथा अपेक्षाओं से पूर्णतया अवगत हो जाने के उपरान्त परामर्शक उचित प्रविधि या तकनीक का चयन करता है।
3. **तकनीकों का प्रयोग**—तकनीक का चयन परामर्शक किसी विशिष्ट परिस्थिति में ही करता है। परिस्थिति का चयन समस्या की प्रकृति एवं प्रत्याशी का स्वभाव देखकर किया जाता है।
4. **प्रयुक्त तकनीकों के प्रभावों का मूल्यांकन**—अनेक विधियों का प्रयोग करके यह देखा जाता है कि प्रत्याशी को परामर्शित करने में जो तकनीक प्रयोग में लाये गये उनका प्रत्याशी पर क्या प्रभाव पड़ा।
5. **परामर्श की तैयारी**—इस स्तर पर परामर्श एवं निर्देशन हेतु उचित तैयारी की जाती है।
6. **प्रत्याशी के विचारों से अवगत होना**—सम्पूर्ण प्रक्रिया के विषय में प्रत्याशी के विचार जानने के प्रयास किये जाते हैं।

समन्वित परामर्श की विशेषताएँ

एफ0सी0 टोम के अनुसार समन्वित परामर्श की विशेषताएँ निम्न हैं—

1. इस प्रकार के परामर्श में समन्वयक विधि का प्रयोग किया जाता है।
2. मुख्य भूमिका परामर्शप्रार्थी की होती है और परामर्शक प्रायः उदासीन रहता है।
3. कार्य क्षमता पर अधिक बल दिया जाता है। सम्पूर्ण प्रक्रिया परामर्शक, परामर्शप्रार्थी की समस्या—समाधान की क्षमता के इर्द—गिर्द घूमती है।
4. यह प्रक्रिया कम खर्चीली है। प्रायः सभी प्रविधियों का प्रयोग कर लिया जाता है।
5. प्रत्याशी, उसकी समस्या तथा उसकी स्थिति को देखते हुए परामर्शक के सम्मुख निदेशात्मक तथा अनिदेशात्मक के विकल्प खुले रहते हैं।
6. प्रत्याशी को समस्या का समाधान निकालने का पूर्ण अवसर प्रदान किया जाता है।

समन्वित परामर्श की सीमायें

1. अधिकांशतः लोग इस प्रक्रिया को ठीक से समझ नहीं पाते और इसे अवसर प्रधान कहते हैं।
2. दोनों अनिदेशात्मक व निदेशात्मक प्रविधि को जोड़ा नहीं जा सकता।
3. प्रार्थी को स्वतन्त्रता देने के आधार और उसकी सीमा पर कोई स्पष्ट संकेत नहीं है।

4. दोनों प्रविधियों के मिलाने से उचित मार्ग चयन और परिणाम प्राप्ति में भी दुविधा होती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

10. समन्वित परामर्श की मुख्य विशेषता क्या है?

....

11. समन्वित परामर्श में किसकी भूमिका बदलती रहती है?

....

13.7 सारांश

परामर्श की विविध प्रविधियों ने ही उसके विविध रूपों को जन्म दिया जिनका मुख्य उद्देश्य प्रार्थी की सहायता करना है। इस इकाई में आपने इसके विविध रूपों के विषय में विस्तार से जाना। यह इकाई आपकों ज्ञानप्रद लगी होगी।

13.8 अभ्यास प्रश्न

निदेशात्मक एवं अनिदेशात्मक परामर्श की प्रक्रिया को वर्णित करते हुये मूलभूत अन्तर को इंगित कीजिये?

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. साइकोथेरेपटिक / मनोउपचारात्मक
2. वैवाहिक समस्या जीवंत समस्या है।
3. परामर्शदाता प्रधान, व्यवस्थित, प्रार्थी का अधिकतम विकास।
4. प्रार्थी का अधिकतम विकास।
5. अमनोवैज्ञानिक प्रार्थी का व्यक्तित्व की उपेक्षा।
6. प्रार्थी को अधिक स्वतन्त्रता देती है।
7. प्रार्थी के अनुसार खुले प्रश्न पूछे जाते है।
8. परामर्शदाता केन्द्रित दूसरी प्रार्थी केन्द्रित।
9. अनिदेशात्मक व निदेशात्मक परामर्श का समन्वय।

13.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Jones, A.J. (1963). Principles of Guidance & Pupil Personnel Work, New York.

Myres, G.E. (1941). Principles and Techniques of Guidance, New York.

Sharma, R.A. Fundaments of Guidance and Counselling.

इकाई–14 वैयक्तिक एवं सामूहिक परामर्श

संरचना

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 वैयक्तिक परामर्श, अवधारणा, आवश्यकता

14.4 वैयक्तिक परामर्श के सिद्धान्त

14.5 समूह परामर्श अवधारणा व आवश्यकतायें व लाभ

14.6 समूह परामर्श की प्रक्रिया

14.7 वैयक्तिक व सामूहिक परामर्श में अन्तर

14.8 सारांश

14.9 अभ्यास के प्रश्न

14.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.1 प्रस्तावना

परामर्श मूलतः दो लोगों के बीच चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें एक प्रदाता व दूसरा लाभार्थी होता है। यह वैयक्तिक परामर्श है परन्तु परामर्श में एक नवीन संकल्पना का जन्म हुआ जिसे समूह परामर्श कहा गया। समूह परामर्श की आवश्यकता इसलिये हुई क्योंकि मनुष्य सामाजिक होता है इसके लिये उसे समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप सामन्जस्य की आवश्यकता होती है। इस इकाई में हम वैयक्तिक एवं सामूहिक परामर्श के विषय में विस्तार से पढ़ेगें।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- वैयक्तिक परामर्श की अवधारणा, आवश्यकता एवं सिद्धान्त का वर्णन कर करेगें।
- समूहिक परामर्श की अवधारणा, आवश्यकताओं एवं निहितार्थ की विवेचना कर सकेंगे।
- वैयक्तिक व सामूहिक परामर्श के मध्य अन्तर को इंगित कर सकेंगे।

14.3 वैयक्तिक परामर्श, अवधारणा व आवश्यकता

आमतौर पर परामर्श व्यक्तिगत रूप से ही सम्पन्न होता है। परामर्श किसी भी प्रकार

की आवश्यकता पर व्यक्तिगत रूप में ही दिया जाता है। व्यक्तिगत परामर्श में व्यक्ति की समंजन क्षमता बढ़ाने उसकी निजी समस्याओं का हल ढूढ़ने तथा आत्मबोध की क्षमता उत्पन्न हेतु दी जाने वाली सहायता होती है।

यह कहना सर्वथा गलत न होगा कि वैयक्तिक परामर्श में व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक, शैक्षिक, व्यावसायिक जीवन से सम्बन्धित समस्याओं को समझना व उनका हल प्राप्त करने की दक्षता विकसित की जाती है। वैयक्तिक परामर्श की आवश्यकता मुख्य रूप से किशोरावस्था से ही मूल रूप में प्रारम्भ होती है। इस परामर्श का मुख्य उद्देश्य होता है–

- व्यक्ति को अपने आसपास के वातावरण की सम्भावनाओं को सही तरीके से समझने के योग्य बनाना।
- व्यक्ति को अपने परिवार, समुदाय विद्यालय एवं व्यवसाय सम्बन्धी सामन्जस्य की व्यक्तिगत समस्याओं को हल करने में सहयोग देना।
- व्यक्ति में सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता विकसित करना।
- व्यक्ति को अपनी क्षमताओं एवं अभियोग्यता को समझने में सहयोग देना।
- व्यक्ति द्वारा लिये जाने वाले व्यक्तिगत निर्णयों को लेने हेतु उचित इच्छाशक्ति विकसित करने में सहयोग देना।
- व्यक्ति को अपने जीवन को सही दिशा देने हेतु क्षमता विकसित करने में सहयोग देना।
- अपने जीवन की विविध परिस्थितियों को समझने व उसी के अनुकूल अपेक्षित सूझबूझ विकसित करने में सहयोग करना।

वैयक्तिगत परामर्श का मुख्य उदेश्य व्यक्तिगत सामंजस्य एवं व्यक्तिगत कुशलता विकसित करना है।

1. वैयक्तिगत परामर्श की आवश्यकता–जैसा कि ऊपर आप पढ़ चुके हैं कि वैयक्तिक परामर्श विशेष रूप में व्यक्ति विशेष की आवश्यकता के अनुरूप उसे सहायता देने हेतु दिया जाता है। बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक अपने जीवन के विविध सन्दर्भो में मधुर सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता ही स्वस्थ मानसिक स्वास्थ्य के परिसूचक है। पुराने एवं नयी परिस्थितियों के मध्य टकराव कम करके सामंजस्य की स्थिति उत्पन्न करवाना ही वैयक्तिक परामर्श का उद्देश्य होता है। उक्त परिप्रेक्ष्य में वैयक्तिक परामर्श की आवश्यकता को निम्नलिखित दृष्टियों से प्रदर्शित किया जा सकता है–

- व्यक्तिगत सामंजस्य एवं समायोजन बढ़ाने की दृष्टि से परिवार तथा विद्यालय के जीवन से सम्बन्धित अनेक समस्याओं का उद्‌भव व्यक्ति के जीवन मे होता है जिनके निदान के लिये परामर्श की आवश्यकता होती है।

2. वैयक्तिगत दक्षता का विकास करने हेतु–परामर्श की दूसरी आवश्यकता अपनी क्षमता को पहचानने, निर्णय लेने व अनुकूलन की क्षमता विकसित करने हेतु होती है।

3. **आपसी तनावों व व्यक्तिगत उलझनों से निजात हेतु**—वर्तमान में उपभोक्तावादी समाज ने आम मनुष्य को तनाव एवं आपसी उलझनों में ढ़केल दिया है इनसे निदान पाने के लिये व्यक्तिगत परामर्श की बहुत ही अधिक आवश्ककता होती है।

4. **व्यक्ति के पारिवारिक एवं व्यावसायिक जीवन में सामंजस्य बैठाने हेतु**—आज शिक्षा का मुख्य उद्देश्य भी व्यक्ति की आत्मनिर्भरता की प्राप्ति है। व्यक्ति किसी न किसी व्यवसाय से जुड़ा रहता है। व्यवसायिक जीवन भी उसका महत्वपूर्ण भाग बन जाता है परन्तु व्यक्ति के निजी पारिवारिक एवं सामुदायिक जीवन के साथ उसका समायोजन एवं सामंजस्य बिठाने का संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है और इसी के लिये उसे व्यक्तिगत परामर्श की आवश्यकता होती है।

5. **जीवन में धैर्य व संयम के साथ सन्तुलन बनाये रखने हेतु**—व्यक्ति के जीवन में जीवन पर्यन्त उसको अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है और उसके लिये उसे धैर्य व संयम का प्रयोग करना पड़ता है और इनके अभाव में उसका कुसमायोजन होने लगता हैं। वैयक्तिक परामर्श से उसमें धैर्य व संयम का विकास किया जाता है।

6. **निर्णय लेने की क्षमता के विकास हेतु**—व्यक्ति को सम्पर्ण जीवन में अनेक निर्णय लेना पड़ता है जो कि उसके सम्पूर्ण जीवन पर प्रभाव डालता है। वैयक्तिक परामर्श के द्वारा व्यक्ति को उसकी परिस्थितिजन्य समस्याओं के समय सही निर्णय लेने की क्षमता विकसित की जाती है।

7. **व्यक्ति के जीवन में सुख, शान्ति व सन्तोष के भाव लाने हेतु**—हर व्यक्ति के जीन में प्रमुख लक्ष्य सुख शान्ति व सन्तोष लाना होता है। इसके लिये उसकी मनोवृत्ति को समझते हुये उसमें सन्तोष के भाव पैदा करना भी वैयक्तिक परामर्श की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपेक्षित कुशलता, आत्मसन्तोष एवं सामंजस्य स्थापित करने तथा स्वस्थ, प्रभावी एवं सहज आत्मविकास का मार्ग प्रशस्त करने हेतु वैयक्तिक परामर्श की आवश्यकता होती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. व्यक्तिक परामर्श किसे कहते है?

....

2. अपनी व्यक्तिगत तनावों व समस्याओं से निपटारा के लिये किस प्रकार के परामर्श से मदद मिलती है?

....

3. व्यक्तिगत परामर्श का मूल उद्देश्य क्या है?

....

14.4 वैयक्तिक परामर्श के सिद्धान्त

वैयक्तिक परामर्श की सम्पूर्ण प्रक्रिया के संचालन हेतु कुछ निश्चित सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाता है।

1) **तथ्यों के गोपनीयता का सिद्धान्त**—इस परामर्श में इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि प्रार्थी से सम्बन्धित जो भी सूचनायें एवं तथ्य प्राप्त हों उन्हें गोपनीय रखे जायें।

2) **लचीलापन का सिद्धान्त**—वैयक्तिक परामर्श पूर्णतया प्रार्थी के हिताय चलने वाली प्रक्रिया होती है अतः इसे समय, काल, परिस्थिति के अनुसार लचीला बनाकर संचालित किया जाता है जिससे प्रार्थी को अपनी समस्याओं से निदान मिल सके।

3) **समग्र व्यक्तित्व पर ध्यान**—इस परामर्श में प्रार्थी के सम्यक बिकास हेतु परामर्शदाता का ध्यान रहता है और उसकी क्षमता एवं व्यक्तित्व विकास का पूरा प्रयास किया जाता है।

4) **सहिष्णुता एवं सहृदयता का सिद्धान्त**—वैयक्तिक परामर्श में परामर्शदाता प्रार्थी को विचारों को व्यक्त करने की स्वतन्त्रता देता है और उसके प्रति सहिष्णु एवं सहृदय रहता है। प्रार्थी को इस बात का आभास कराया जाता है कि वह परामर्शदाता के लिये महत्वपूर्ण है।

5) **प्रार्थी के आदर का सिद्धान्त**—वैयक्तिक परामर्श का उद्देश्य प्रार्थी को विभिन्न क्षेत्रों में अपेक्षित दक्षता, कुशलता, आत्मसन्तोष एवं सामजस्य कायम करते हुये स्वस्थ प्रभावी एवं सहज आत्म विकास का मार्ग प्रशस्त करने की दृष्टि से सहयोग देना है। अतः प्रार्थी का आदर किया जाता है।

6) **सहयोग का सिद्धान्त**—वैयक्तिक परामर्श में प्रार्थी के ऊपर अपने दृष्टिकोण को विचारों को लादने के बजाय उसे स्वयं की समस्याओं के प्रति उचित समझ विकसित करते हुये उन्हें सुलझाने हेतु सहयोग दिया जाता है।

उपरोक्त सभी सिद्धान्त वैयक्तिक परामर्श की प्रक्रिया को और अधिक प्रभावशाली बना देते हैं।

बोध प्रश्न—

टिप्पणी—क— नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख— इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4. परामर्श प्रक्रिया में किसकी गोपनीयता पर ध्यान दिया जाता है?

....

5. वैयक्तिक परामर्श में प्रार्थी को किस योग्य बनाया जाता है?

....

14.5 समूह परामर्श

समूह परामर्श

समूह परामर्श की संकल्पना अपेक्षाकृत नवीन है। यह पद्धति ऐसे प्रत्याशियों के लिए उपयोगी सिद्ध हुई है जो व्यक्तिगत परामर्श से लाभान्वित नहीं हो पाये हैं। प्रत्येक व्यक्ति मूलतः सामाजिक होता है। कभी–कभी समाज में रहकर ही व्यक्ति अपना अनुकूलन एवं अपनी समस्याओं का निदान कर लेता है। सी0जी0 केम्प (1970) ने लिखा है कि व्यक्ति को अपने जीवन के सभी क्षेत्रों में सार्थक सम्बन्ध बनाने की आवश्यकता पड़ती है। इन्हीं सम्बन्धों के आधार पर वे अपने जीवन को निकटता से समझ पाते हैं और एक लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। इसके सन्दर्भ में सामूहिक परिप्रेक्ष्य के प्रति रूचि बढ़ती जा रही है।

समूह परामर्श के आधार–समूह परामर्श के कुछ मूलभूत आधार हैं जिनकी चर्चा नीचे की जा रही है–

1. व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व सम्बन्धी पूँजी तथा अभाव का ज्ञान हो। व्यक्ति अपनी क्षमताओं के प्रति या तो अल्प ज्ञान रखता है, या अज्ञानी होता है। कभी–कभी तो वह अपनी क्षमताओं को बढ़ा–चढ़ा कर कहता है। उसके स्वमूल्यांकन में यथार्थ का अभाव होता है। सामूहिक परामर्श प्रत्याशी को इस योग्य बनाता है कि वह समूह में रहकर अन्य व्यक्तियों की पृष्ठभूमि में अपनी वास्तविक क्षमता को पहचान सके और अपनी कमियों को दूर कर सके।
2. समूह परामर्श व्यक्ति को इस योग्य बनाता है कि वह अपने व्यक्तित्व में सन्निहित सम्भावनाओं के अनुरूप सफलता प्राप्त करने में सफल हो सके। समूह में रहकर वह अपनी प्रत्यक्ष सम्भावनाओं को भलीभाँति पहचान सकता है।
3. वैयक्तिक भिन्नता एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कार्य, अभिवृत्ति, बुद्धि आदि में भिन्न होता है। समूह परामर्श इस मनोवैज्ञानिक तथ्य की उपेक्षा नहीं करता। यह कुशल परामर्शक पर निर्भर करता है कि वह वैयक्तिक भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए भी समूह परामर्श प्रदान कर सकें।
4. प्रत्याशी को समाज का अंग मानना समूह–परामर्श का चौथा सिद्धान्त है। प्रत्येक व्यक्ति समूह अथवा समाज में रहकर ही अपना विकास कर पाता। सामूहिक जीवन का अनुभव ही उसे विकास के पथ पर अग्रसर करता है। समाज से पृथक रहकर व्यक्ति कुण्ठाग्रस्त हो जाता है।
5. प्रत्याशी में सम्प्रत्यय का विकास सामूहिक परामर्श का पाँचवाँ सिद्धान्त है। समूह में रहकर ही व्यक्ति का सर्वांगीण विकास सम्भव हो पाता है और वह अपने विषय में सही धारणा बना सकता है।

मूह–परामर्श के लाभ

1. सीमन लिखता है कि सामूहिक–परामर्श एक सुरक्षित एवं समझदारी का परिवेश प्रस्तुत करता है। इस परिवेश में सबका सहभाग होता है और सबका अनुमोदन भी होता है।

2. इसमें ऐसा अवसर सुलभ होता है जो स्वच्छ, निःशंक तथा उन्मुक्त हो और जिसमें समस्याओं का समाधान ढूँढा जा सके और खुला मूल्यांकन किया जा सके।

3. परामर्शदाता को समूह–आचरण सम्बन्धी ज्ञान का उपयोग करने का अवसर प्राप्त होता है।

4. अनेक मानवीय दुर्बलताओं जैसे नशा–सेवन, यौन–शिक्षा आदि पर खुली बहस हो सकती है।

समूह–परामर्श की आवश्यकताएँ

1. **व्यक्तिगत साक्षात्कार**–समूह–परामर्श समाप्त होने के उपरान्त परामर्शक प्रत्येक सेवार्थी का व्यक्तिगत साक्षात्कार करता है ताकि वह प्रत्याशी की व्यक्तिगत समस्याओं से अवगत हो सके। परामर्शक को जो सूचनाएँ समूह–परामर्श से प्राप्त नहीं होती हैं उनकी पूर्ति व्यक्तिगत साक्षात्कार द्वारा कर लेता है। इस प्रक्रिया से प्रत्याशी की सहायता करने में परार्शक को सरलता होती है।

2. **परामर्श–कक्ष** की समुचित व्यवस्था–जिस कक्षा में समूह–परामर्श दिया जाता है उस कक्ष को सर्वप्रथम सुखद बनाया जाना चाहिए। कक्ष का वातावरण ऐसा हो कि प्रत्याशी अपनेपन का अनुभव करें। बैठने की कुर्सियाँ आरामदेह एवं सुखकारी हों।

3. **समूह में एकरूपता**–जहाँ तक सम्भव हो, परामर्शेय समूह में आयु, लिंग तथा यथासम्भव समस्या की एकरूपता हो ताकि परामर्श प्रदान करने में सुविधा हो। कुछ परामर्शदाताओं का यह मत है कि असमान समूह को परामर्शित करना अधिक लाभदायी होता है।

समूह का आकार–समूह का आकार वृहत् होने पर परामर्श निरर्थक हो जाता है अतः समूह का आकार यथासम्भव छः से आठ तक होना चाहिए। इसमें विचारों का आदान–प्रदान उत्तम हो जाता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

6. समूह परामर्श व्यक्ति को किस योग्य बनाता है?

....

7. समूह परामर्श की आवश्यकता क्यों हुयी ?

....

14.6 समूह परामर्श की प्रक्रिया एवं क्रियाकलाप

समूह–परामर्श की प्रक्रिया

समूह–परामर्श के लिए परामर्शप्रार्थी के लक्ष्य की जानकारी आवश्यक है और लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए समूह के अन्य सदस्यों के सहयोग की अपेक्षा होती है। इसके लिए निम्न प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है।

1. **प्रत्येक सदस्य के लक्ष्य का ज्ञान प्राप्त करना**–समूह–परामर्शक तभी सफल हो पाता है जब उसे सेवार्थी के उद्देश्यों की पूरी जानकारी हो।
2. **संगठन का निर्णय**–अपनी परामर्श–योजना में यदि परामर्शक संगठन द्वारा लिये गये निर्णयों को ध्यान में रखकर परामर्श देता है तो सामूहिक परामर्श अधिक प्रभावकारी होता है।
3. **समूह का गठन**–व्यक्ति के लक्ष्य और व्यक्ति के स्वभाव को ध्यान में रखकर ही समूह के प्रत्येक सदस्य को अधिक लाभ पहुँचाया जा सकता है।
4. **परामर्श का आरम्भ**–समूह–परामर्श को आरम्भ करते समय परामर्शदाता को अपनी तथा अन्य सदस्यों की भूमिका स्पष्ट करनी चाहिए। यदि समूह के सभी सदस्य परामर्श में सहयोग दें तो परामर्शक का कार्य अधिक सुगम हो सकता है।
5. **सम्बन्धों का निर्माण**–सामूहिक–परामर्श की प्रक्रिया में जैसे–जैसे परामर्श का कार्य आगे बढ़ता है, सम्भावना रहती है कि सेवार्थी अपने लक्ष्य से भटक जाय। अतः परामर्शदाता का यह दायित्व बनता है कि वह अपनी निष्पक्षता का परिचय देते हुए अपने प्रति प्रत्याशी में विश्वास जगाये और उसे उसके लक्ष्यों का निरन्तर स्मरण दिलाता रहे।
6. **मूल्यांकन**–परामर्श के प्रभाव का मूल्यांकन अन्तिम सोपान है। परामर्शदाता को अपने प्रभाव का मूल्यांकन करते रहना चाहिए ताकि वह जान सके कि उसके परामर्श का क्या प्रतिफल रहा है।

समूह–परामर्श के क्रियाकलाप

समूह–परामर्श के अंतर्गत विविध प्रकार के क्रियाकलापों का समावेश होता है। यथा, अभिमुखीकरण, कैरियर/वृत्ति वार्ताएँ, कक्षा–वार्ताएँ, वृत्ति–सम्मेलन, किसी संस्था जैसे : उद्योग, संग्रहालय, प्रयोगशाला आदि की शैक्षिक यात्राएँ तथा अनेक प्रकार के अनौपचारिक नाटक–समूह। आगे इन सभी की चर्चा विद्यालय–परिस्थिति में आयोजन करने की दृष्टि से की जा रही है।

विद्यार्थियों का अभिविन्यास

अभिविन्यास कार्यक्रम का प्रयोजन है–प्रत्येक व्यक्ति की इस प्रकार सहायता की जाए कि वह नई परिस्थिति में सहजता का अनुभव करें। ऐसा माना जाता है कि कोई भी नई परिस्थिति व्यक्ति विशेष को असुविधा का अनुभव कराने वाली होती है तथा उसके सामने कठिनाई उपस्थित करती है, जिससे वह इसे स्वीकार करने तथा उसके साथ आसानी से समायोजन करने में कठिनाई अनुभव करता है। घर से विद्यालय के बीच परिवर्तन की स्थिति, यानी बच्चों के नर्सरी कक्षा में प्रवेश लेने पर और बाद में एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय में प्रवेश लेते समय की स्थिति कई बच्चों के लिए कठिनाई अनुभव कराने वाली प्रक्रिया होती है।

अभिविन्यास कार्यक्रम द्वारा संस्था के बारे में इसकी भौतिक स्थिति की रूपरेखा के बारे में और कर्मियों तथा प्रशासनिक व्यवस्थाओं के बारे में पहले ही जानकारी दे दी जाए तो छात्रों को इनका परिचय मिल जाएगा और उन्हें इन्हें ढूँढ़ने में कठिनाई नहीं होगी। नए प्रविष्ट छात्रों को विद्यालय के संबंध में संक्षिप्त सूचनाएँ दी जानी चाहिए। जैसे वहाँ उपलब्ध सुविधाओं के संबंध में, नियम–कानून, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यचर्या के संबंध में तथा उनसे क्या–क्या अपेक्षाएँ हैं, इन सबकी उन्हें पूर्व जानकारी मिल जानी चाहिए। अभिविन्यास कार्यक्रम के दौरान इन जानकारियों के अतिरिक्त छात्र परस्पर एक दूसरे को अपना परिचय दे सकते हैं, वे अपने बारे में बता सकते हैं। बाद में अध्यापकों के साथ एक लघु परिचय गोष्ठी का समायोजन किया जा सकता है। उपबोधन– सेवा का यहीं से श्रीगणेश होता है।

माता–पिता जब पहली बार अपने बच्चे को नर्सरी विद्यालय में लेकर जाते हैं तभी उसका अभिविन्यास प्रारंभ हो जाता है। लेकिन यहीं उसका अन्त नहीं होता। अभिविन्यास के रूप में प्रत्येक व्यक्ति को नए सत्र में और विशेष रूप से एक कक्षा से दूसरी कक्षा में प्रवेश लेते समय इस प्रकार की सहायता दी जानी चाहिए।

प्रारंभिक, माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक कक्षा के छात्रों के लिए अभिविन्यास कार्यक्रम एक जैसा नहीं होता। इन विभिन्न स्तरों पर आवश्यक के अनुसार इसका रूप भिन्न–भिन्न होना चाहिए।

वृत्तिक–परामर्श

इस प्रकार के परामर्श में छात्रों के लिए कई सुनियोजत बैठकों का अयोजन किया जाता है, जिनका उद्देश्य विभिन्न विषयों पर छात्रों को सूचना प्रदान करना है। इनसे छात्रों को

भविष्य में अपने लिए व्यावसायिक और शैक्षिक कैरियर चुनने और उससे संबंधित योजना बनाने में सहायता मिलती है। इस प्रकार की बैठकों के दौरान छात्रों को व्यावसायिक सूचनाएँ मिल जाती है और अध्यापकों, अभिभावकों तथा समुदाय के लोगों में निर्देशन–कार्यक्रम के महत्व के संबंध में सामान्य रूप से जागरूकता पैदा हो जाती है।

कैरियर परामर्श की योजना बनाने में उपबोधक, विद्यालय–संकाय तथा छात्रों के सम्मिलित प्रयासों की आवश्यकता होती है। एक कार्य–योजना–समिति का गठन किया जाए जिसमें इन सभी समूहों के प्रतिनिधि सम्मिलित हों, जिससे समग्र विद्यालय में सहभागिता का भाव आ सके। अभिभावकों को संसाधन–विश्लेषकों के रूप में इस वृत्ति सम्मेलन में भाग लेने के लिए बुलाया जाना चाहिए।

परामर्श की योजना बनाते समय जो मार्गदर्शक रूपरेखा तैयार की जाए, उसमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाए :

- सम्मेलन के प्रयोजन के संबंध में छात्रों को पहले ही बता देना चाहिए :
- जाँच–सूचियों के द्वारा छात्रों की व्यावसायिक अभिरूचियों की जानकारी प्राप्त कर ली जाए ताकि तदनुसार ही उन–उन क्षेत्रों के विशेषज्ञ वक्ताओं को आमंत्रित किया जा सके।
- अतिथि वक्ताओं के नाम बैठक में सुझा दिए जाँए तथा कार्य–प्रभारी की नियुक्ति भी उसी समय कर देनी चाहिए।
- किस दिन किस विषय पर चर्चा होनी है? सम्मेलन किस दिन आयोजित होगा? इन सभी बातों को पहले ही निश्चय कर लेना चाहिए। ध्यान रहे कि उस निर्धारित अवधि में परीक्षाएँ न पड़ती हों। क्योंकि परीक्षा के निकट होने की स्थिति में छात्र अन्य कामों में अपनी रूचि नहीं दिखा सकेंगे।
- प्रत्येक दिन की वार्ताओं का क्रम, चर्चा–समूहों का क्रम, फिल्म–शो आदि की पहले से ही व्यवस्था कर लेनी चाहिए।
- विद्यालय कर्मियों तथा स्वयं–सेवी छात्रों के कामों का बँटवारा पहले ही कर दिया जाए।
- प्रचार–पत्रक तैयार कर लें। सम्मेलन के संबंध में अभिभावकों को पूर्व सूचना भेज दी जाए।
- कैरियर परामर्श में जिन–जिन विषयों के बारे में चर्चा होनी है उनसे संबंधित चार्ट तैयार कर लिए जाएँ ताकि छात्रों को विषयों से संबंधित कुछ पूर्व जानकारी प्राप्त हो सके।
- समूह परामर्श में प्राप्त सूचनाओं के आधार पर व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने हेतु साक्षात्कार किया जा सकता है जिससे कि व्यक्तिगत स्तर पर उत्पन्न कठिनाई का निदान हो सकें।

परामर्श की योजना के चरण

वृत्तिक–परामर्श के लिए महीनों पहले योजना बना लेनी चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित सोपान आवश्यक है।

- परामर्श आयोजित करने का विचार कम से कम 45 दिन पहले ही लोगों के सामने प्रकट कर देना चाहिए। सम्मेलन आयोजित करने की प्रशासनिक स्वीकृति मिल जाने के तुरन्त बाद छात्रों को इसकी सूचना दी जा सकती है। छात्रों को पहले से सूचित करना इसलिए आवश्यक है ताकि वे स्वयं–सेवक कार्यकर्त्ताओं के रूप में अपने नाम दे सकें।
- स्वेच्छा से कार्य करने वाले अध्यापकों तथा छात्रों की एक सूची तैयार कर लेनी चाहिए और उनके बीच कार्य का वितरण कर देना चाहिए। जैसे, माइक का प्रबंध कौन करेगा? भाषणों का आयोजन करने की जिम्मेदारी किस पर होगी? स्वल्पाहार की व्यवस्था किसके हाथों में रहेगी? सूचना–पत्रकों के वितरण की व्यवस्था कौन देखेगा? आदि–आदि।
- दूसरे विद्यालयों के प्रधानाचार्यो तथा अभिभावकों को उचित समय पर पत्र भेज दिए जाएँ। पत्रों के साथ कैरियर परामर्श के उद्देश्य तथा योजना की संक्षिप्त रूपरेखा भी भेजी जानी चाहिए।
- अतिथि–वक्ताओ को पर्याप्त समय पहले पत्र भेज दिए जाएँ।
- वार्ताओं, चर्चाओं फिल्मों व चार्ट आदि का विस्तृत कार्यक्रम पहले से तैयार कर लिया जाए।
- माइक की व्यवस्था, बैठने की व्यवस्था, वीडियों कैसेट बनाने की व्यवस्था आदि पहले से तय हो। जो पत्रक बाँटे जाने हों उन्हें पहले ही मुद्रित करवा लेना चाहिए।
- पर्याप्त समय पूर्व ही सत्रानुसार कार्यक्रम का विवरण निश्चित कर लेना चाहिए तथा छात्रों एवं दूसरे प्रतिभागियों को समय से पूर्व सूचना दे देनी चाहिए।
- प्रत्येक सत्र के लिए वक्ताओं की सूची तैयार कर लें। उचित होगा यदि हर सत्र के लिए दो–तीन वक्ताओं के नामों का विकल्प रहे ताकि यदि कोई वक्ता–विशेष उपलब्ध न हो सके तो दूसरे वक्ता को आमंत्रित किया जा सके। संसाधन–विशेषज्ञों के रूप में अभिभावकों, पूर्व छात्रों तथा स्टाफ सदस्यों को नामित किया जा सकता है।
- वक्ताओं को दिए जाने वाले विषयों की एक रूपरेखा तैयार कर ली जाए ताकि यह पता रहे कि कौन–सा वक्ता किस विषय पर बोलेगा।

जब परामर्श सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाए तब बाद में एक परिचर्चा आयोजित कर उसकी कमियों का आकलन कर लेना चाहिए ताकि अगले सम्मेलन में उन कमियों की पुनरावृत्ति न हो।

कक्षा–परामर्श

समूह–परामर्श के लिए कई प्रभावी उपायों में से यह भी एक तरीका है।

कक्षा–परामर्श समान रूचि वाले छात्रों के लिए आयोजित की जा सकती हैं। कक्षा परामर्श की तैयारी करते समय कुछ ऐसे बिन्दु हैं जिन्हें दृष्टि में रखना होगा :

- जो भी विषय चुना जाए वह छात्रों की आवश्यकता और स्तर के अनुरूप होना चाहिए। इसके साथ ही, विषय उबाने वाला नहीं होना चाहिए।
- विषय को सरल भाषा–शैली में प्रस्तुत करना चाहिए तथा उसमें दैनिक जीवन से संबंधित अधिकाधिक उदाहरण और दृष्टांत देने चाहिए। ध्यान रहे कि अस्पष्ट और कठिन शब्दों से बचा जाए।
- कक्षा–परामर्श में भाषण–विधि को अपनाने की अपेक्षा छात्रों को भी सहभागी और सक्रिय बनाना आवश्यक है। इसके लिए उनसे प्रश्न पूछे जा सकते हैं तथा उन्हें अपने दिन–प्रति–दिन के जीवन से उदाहरण देते हुए उत्तर देने को कहा जा सकता है। इस प्रकार छात्रों को वार्ता में सम्मिलित कर सहभागी बनाया जा सकता है। परिणाम यह होगा कि वे तल्लीन होकर उसमे रूचि लेने लगेंगे।
- विषय के मुख्य–मुख्य बिन्दुओं को प्रभावी रूप से दर्शाने के लिए चार्ट, पोस्टर, पत्रक आदि का उपयोग किया जा सकता है।
- परामर्श बहुत लम्बा नहीं होना चाहिए। वार्ता और उससे संबंधित परिचर्चा के लिए 30–40 मिनट होंगे।
- तालिकाएँ, चित्र आदि भी तैयार किए जा सकते हैं।

कक्षा परामर्श का आयोजन करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाए :

- परामर्श बहुत लम्बा न हो।
- छात्रों की संख्या अधिक न हो।
- छात्रों को परामर्श के विषय, समय, स्थान तथा अन्य संबंधित बातों की सूचना पहले से दे दी जाए।
- अनुपूरक सामग्री, यथा : चार्ट, पोस्टर, फिल्म आदि तैयार रहे। यदि ब्लैक बोर्ड/श्यामपट्ट का प्रयोग किया जाए तो चॉक, डस्टर आदि का पहले से प्रबंध हो।

कक्षा परामर्श के कतिपय विषयों का उल्लेख इस प्रकार है :

- प्रभावी अध्ययन–सामग्री
- विद्यालयों में पाठ्य–सहभागी क्रियाओं की भूमिका
- गृह–कार्य का महत्व
- व्यय–नियोजन
- समय–प्रबंधन
- परीक्षा की तैयारी

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

8. समूह परामर्श में किसके निर्णय पर ध्यान दिया जाता है?

....

9. परामर्शदाता को निष्पक्ष क्यों रहना चाहिए?

....

10. परामर्श के अंत में मूल्यांकन क्यों किया जाता है?

....

14.7 वैयक्तिक व समूह परामर्श में अन्तर

वैयक्तिक और समूह परामर्श के विषय में आप विस्तार से जान चुके हैं अब हम इन दोनों के मध्य मूल अन्तर को भी जानेंगे।

वैयक्तिक परामर्श	समूह परामर्श
• वैयक्तिक परामर्श एक प्राचीन अवधारणा है।	समूह परामर्श एक नवीन अवधारणा है।
• यह परामर्श व्यक्ति को उसकी समस्याओं के निदान की क्षमता उत्पन्न करने हेतु दिया जाता है।	इस परामर्श में समूह को सामाजिक जीवन में उचित व्यवहार एवं समायोजन की क्षमता उत्पन्न करने हेतु सहयोग दिया जाता है।
• इस परामर्श प्रक्रिया में परामर्शदाता प्रार्थी सम्मिलित होते है।	इस परामर्श प्रक्रिया में परामर्शदाता व समूह सम्मिलित होते है।
• इसमें व्यक्ति का परामर्शदाता से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।	इस परामर्श में व्यक्ति का परामर्शदाता से सीधे सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता है।
• वैयक्तिक परामर्श में एक समय में एक व्यक्ति को ही सहयोग मिलता है।	समूह परामर्श में एक समय में एक से अधिक वैयक्तियों (समूह) को सहयोग मिलता है।
• इसमें परामर्शदाता प्रार्थी से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर ही लक्ष्य प्राप्ति तक पहुँचने का प्रयास करता है।	इस परामर्श में समूह के अन्य सदस्यों से भी अपेक्षा की जाती है कि वे लक्ष्य प्राप्ति में सहयोग करें।
• इस परामर्श में दो व्यक्तियों का सहभाग एवं अनुमोदन होता है।	इस परामर्श में समूह का अनुमोदन व सहभाग होता है।
• इस परामर्श में वैयक्तिक सूचनाओं की गोपनीयता अधिक सम्भव है।	इस परामर्श में प्राप्त सूचनाओं की जानकारी पूरे समूह को होती है।

• इस परामर्श में व्यक्तिगत समस्याओं को पूरा प्रश्रय मिलता है और उनको सुलझाने में प्रार्थी को पूरा सहयोग मिल जाता है।	इस परामर्श प्रक्रिया में व्यक्तिगत समस्याआ के उपेक्षित होने की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती है जिसकी पूर्ति व्यक्तिगत साक्षात्कार के द्वारा करनी पड़ती है।
• वैयक्तिक परामर्श में व्यक्ति अकेलेपन से सहज सहज नही हो पाता है।	इस परामर्श में व्यक्ति समूह में अनुभव करता है।
• वैयक्तिक परामर्श व्यक्ति विशेष के लिए उपयोगी होता है।	यह परामर्श सामाजिक जीवन के लिए उपयोगी होता है।
• इसमें समय अधिक लगता है।	एक समूह को एक साथ परामर्श देने के कारण समय एवं आर्थिक बचत होती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

11. वैयक्तिक परामर्श व समूह परामर्श के मध्य चार अन्तर बताइयें?

....

14.8 सारांश

वैयक्तिक एवं समूह परामर्श दोनों ही परिस्थितियों के अनुसार उपयोगी सिद्ध होते है परन्तु दोनों की ही परिस्थितिजन्य समस्याओं के आधार पर उपयोगिता सिद्ध होती है। आवश्यकता इस बात की है कि परामर्श के दोनों रूपों को संवेत रूप से प्रयोग किया जाय। जिससे कि बालक के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन का उत्थान हो सके। आपने इस इकाई में दोनों ही प्रकार के परामर्श को विस्तार से जाना यह इकाई आपके लिए लाभप्रद होगी।

14.9 अभ्यास प्रश्न

1. वैयक्तिक एवं समूह परामर्श की अवधारणा एवं आवश्यकता की विवेचना करते हुए इनके मध्य अन्तर पर प्रकाश डालिए?
2. अपने विद्यालय के कक्षा 10 के विद्यार्थियों के लिए समूह परामर्श की एक कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार कीजिए?

14.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. व्यक्ति विशेष को उसकी समस्याओं से स्वयं निजात पाने हेतु दी जाने वाली सहायता।
2. व्यक्तिक परामर्श।
3. जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपेक्षित कुशलता, आत्मसंतोष एवं सामंजस्य स्थापित करने तथा स्वस्थ एवं सहज आत्मविश्वास का विकास हेतु मार्गप्रशस्त करना।
4. प्रार्थी की समस्याओं से सम्बन्धित सूचनाओं की गोपनीयता।
5. अपनी क्षमता को समझने एवं समस्या को समझते हुए उसके अनुकूल सामंजस्य विठाने की क्षमता।
6. समाज में सामंजस्य हेतु एवं समाज के प्रति उचित दृष्टिकोण के विकास हेतु।
7. सामाजिक समंजन हेतु।
8. समूह के निर्णय पर।
9. जिससे कि परामर्शदाता सही एवं उचित निर्णय लेने के लिए प्रार्थियों को प्रेरित कर सके।
10. परामर्श के प्रतिफल को जानने के लिए।
11. 1. व्यक्तिक परामर्श सामान्य परामर्श है जबकि समूह परामर्श एक नवीन अवधारणा है। 2. व्यक्तिक परामर्श व्यक्ति विशेष को दी जाती है जबकि समूह परामर्श समूह को दिया जाता है। 3. व्यक्तिक परामर्श में व्यक्ति और परामर्शदाता का सीधा सम्बन्ध स्थापित होता है। समूह परामर्श में इस प्रकार का सम्बन्ध नही स्थापित हो पाता। 4. व्यक्तिक परामर्श में दो व्यक्तियों का सहभाग एवं अनुमोदन होता है जबकि समूह परामर्श में समूह का।

14.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Jones, A.J. (1963). Principles of Guidance & Pupil Personnel Work, New York.

Myres, G.E. (1941). Principles and Techniques of Guidance, New York.

Sharma, R.A. Fundaments of Guidance and Counselling.

इकाई–15 निर्देशन में परीक्षणों का उपयोग

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 प्रमापीकृत परीक्षण
15.4 बुद्धि परीक्षण एवं उनका उपयोग
15.5 व्यक्तित्व परीक्षण एवं उपयोग
15.6 अभिक्षमता परीक्षण एवं उपयोग
15.7 उपलब्धि परीक्षण एवं उपयोग
15.8 रूचि परीक्षण एवं उनका उपयोग
15.9 सारांश
15.10 अभ्यास प्रश्न
15.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.1 प्रस्तावना

निर्देशन कार्यक्रमों की उपयोगिता एवं वस्तुनिष्ठता हेतु छात्रों से सम्बन्धित सूचनायें एकत्र करने के लिये निदर्मेशन कार्यकर्ता को अनेक विधियाँ उपयोग में लानी पड़ती है। 'परामर्शदाता किसी एक विधि पर निर्भर नहीं रहकर किसी भी विधि को प्रयोग में लाता है जिससे कि विश्वसनीय एवं वस्तुनिष्ठ सूचनायें प्राप्त हों और निर्देशन कार्यक्रम का सम्पादन हो सकें। सूचनायें एकत्र करने हेतु मुख्यतः प्रमापीकृत परीक्षायें व अप्रमापीकृत विधियों का प्रयोग किया जाता है। प्रमापीकृत परीक्षाओं के अन्तर्गत विविध परीक्षण जैसे रूचि, उपलब्धि, व्यक्तित्व, अभियोग्यता एवं सृजनात्मक से सम्बन्धित परीक्षण आते हैं। इस इकाई में हम इन्हीं परीक्षणों का निर्देशन में उपयोग के विषय में अध्ययन करेंगे।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेगें कि–

- प्रमापीकृत परीक्षण की अवधारणा को समझा सकेंगे।
- विविध प्रमापीकृत परीक्षणों की विवेचना कर सकेंगे।
- इन परीक्षणों का निर्देशन में उपयोग का वर्णन कर सकेंगे।

15.3 प्रमापीकृत परीक्षण

आप पूर्व की इकाई में पढ़ चुके हैं कि निर्देशन कार्यक्रमों की सम्पूर्ण कार्यप्रणाली सूचना प्राप्त करने हेतु प्रमापीकृत परीक्षाओं पर निर्भर हैं। इनके उपयोग के निम्न कारण हैं–

- प्रमापीकृत परीक्षायें निष्पक्ष एवं वस्तुनिष्ठ विधि हैं।
- अन्य विधियों की अपेक्षा प्रमापीकृत परीक्षण द्वारा सूचनायें एकत्र करने में कम समय लगता है।
- परीक्षणों द्वारा प्राप्त सूचनाओं का एक समान अर्थ लगाया जा सकता है।
- इन परीक्षणों द्वारा व्यक्तित्व सम्बन्धी समस्याओं या व्यवहार के क्षेत्र के तथ्यों का अप्रत्यक्ष रूप से पता लगाना सम्भव है।
- निरीक्षण से तथ्य एवं छात्र छूट सकते है परन्तु इन परीक्षणों के उपयोग से एक बड़े समूह से भी सूचनायें प्राप्त हो जाती है।
- परीक्षण से प्राप्त सूचनाओं में विविधता होती है जिससे यह भी पता लगाया जा सकता है कि किन छात्रों पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।
- इन परीक्षणों से अन्तर्निहित दबी इच्छायें, क्षमतायें एवं कमियों का पता लगाया जा सकता है।
- इन परीक्षणों के उपयोग में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है। इन परीक्षणों से परामर्शदाता उन बातों का ज्ञान कर लेता है जो कि निर्देशन व परामर्श की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

  इन मानकीकृत परीक्षणों के अग्रलिखित वर्गीकरण हैं।
- बुद्धि परीक्षण
- उपलब्धि परीक्षण
- अभियोग्यता परीक्षण
- व्यक्तित्व परीक्षण

15.4 बुद्धि परीक्षण एवं उनका उपयोग

बुद्धि परीक्षण के इतिहास एवं विविध बुद्धि परीक्षण के विषय में सामान्य चर्चा आप इकाई 4 में पढ़ चुके है इस इकाई में हम बुद्धि की परिभाषायें, सिद्धान्त एवं उपयोग के विषय में पढ़ेगें।

मनोविज्ञान में बुद्धि शब्द का प्रयोग विशेष अर्थ में होता है। बुद्धि के स्वरूप व अर्थ को समझने हेतु समय–समय पर मनोवैज्ञानिकों ने अपने विचार व्यक्त किए। सबसे पहले बोरिंग (1923) ने बुद्धि को परिभाषित करते हुए कहा कि बुद्धि परीक्षण जो मापता है, वही बुद्धि है। परन्तु इस परिभाषा से बुद्धि के स्वरूप के विषय में कुछ खास पता नहीं चलता। बोरिंग के बाद अनेक मनोवैज्ञानिकों के बुद्धि को अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया।

वेश्लर–''कठिनता, जटिलता, अमूर्तता, आर्थिकता, उद्देश्य–प्राप्यता, सामाजिक मूल्य एवं मौलिकता से सम्बन्धित समस्याओं को समझने की योग्यता को ही बुद्धि कहते हैं।''

राबिन्सन तथा राबिन्सन–''बुद्धि से तात्पर्य संज्ञानात्मक व्यवहारों के सम्पूर्ण वर्ग से होता है जो व्यक्ति में सूझ द्वारा समस्या समाधान करने की क्षमता, नई परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की क्षमता, अमूर्त रूप से सोचने की क्षमता तथा अनुभवों से लाभ उठाने की क्षमता को दिखाता है।''

बुद्धि के प्रकार–ई0एल0 थार्नडाइक ने बुद्धि के तीन प्रकार बताए, जो निम्न है–

1. **सामाजिक बुद्धि**–सामाजिक बुद्धि से तात्पर्य वैसी सामान्य मानसिक क्षमता से है, जिसमें व्यक्ति का सामाजिक जीवन काफी अच्छा होता है, वह व्यवहार कुशल व सामाजिक कार्यो में अधिक निपुण होता है।

2. **अमूर्त बुद्धि**–अमूर्त विषयों के बारे में चिन्तन करने की क्षमता को अमूर्त बुद्धि कहा जाता है। इस प्रकार की क्षमता कलाकारों, दार्शनिकों, कहानीकरों आदि में अधिक होती है। ऐसे लोग शब्द प्रतीक या अपने विचारों के सहारे चिन्तन कर बड़ी से बड़ी समस्याओं का समाधान कर लेते हैं।
3. **मूर्त बुद्धि**–इसके अन्तर्गत उस प्रकार की मानसिक क्षमता होती है जिसमें व्यक्ति किसी ठोस या मूर्त वस्तुओं को देख, उसके बारे में विचार करता है व अपनी इच्छानुसार उसमें परिवर्तन लाकर उन्हे उपयोगी बनाता है। जिन व्यक्तियों में मूर्त बुद्धि अधिक होती है, वे आगे चलकर सफल इंजीनियर या कुशल कारीगर बनते हैं।

बुद्धि के सिद्धान्त–बुद्धि के स्वरूप को अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए बुद्धि के सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है। बुद्धि के स्वरूप के द्वारा उसके कार्यो पर प्रकाश डाला जाता है, जबकि बुद्धि के सिद्धान्तों द्वारा उसकी संरचना का उल्लेख किया जाता है। बुद्धि की संरचना कैसी है? बुद्धि में किन–किन कारकों का समावेश है? इन प्रश्नों पर विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने विचार व्यक्त किये और कारकों के आधार पर विभिन्न बुद्धि–सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। ये सिद्धान्त मुख्यतः निम्न हैं–

1. **बिने का एक–कारक बुद्धि सिद्धान्त**–इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अल्फ्रेड बिने ने किया। बाद मे टर्मन, स्टर्न तथा एबिंघॉस ने इसका समर्थन किया। इस विचारधारा के अनुसार, "बुद्धि वह शक्ति है जो समस्त मानसिक कार्यो को प्रभावित करती है।" एक कारक को ध्यान में रखकर बिने ने बुद्धि की व्याख्या, निर्णय देने की योग्यता, टर्मन ने विचारों की योग्यता एवं स्टर्न ने नवीन परिस्थितियों में समायोजन रखने की योग्यता के रूप में की।
2. **स्पीयरमैन का द्विकारक सिद्धान्त**–इस सिद्धान्त का प्रतिपादन ब्रिटेन के मनोवैज्ञानिक स्पीयरमैन ने 1904 में किया। इन्होंने कारक विश्लेषण की प्रविधि द्वारा बताया कि बुद्धि की संरचना में मूल रूप से दो कारक निहित होते हैं–सामान्य कारक तथा विशिष्ट कारक। स्पीयरमैन के अनुसार सामान्य कारक से तात्पर्य प्रत्येक व्यक्ति में हर मानसिक कार्य करने की एक सामान्य क्षमता भिन्न–भिन्न मात्रा में होती है। इस तरह से सभी मानसिक क्रियाओं के करने में जी कारक भिन्न–भिन्न मात्रा में व्यक्ति में मौजूद रहते है। स्पीयरमैन के अनुसार जिस व्यक्ति में सामान्य 'जीव' कारक जितना ही अधिक होगा, व्यक्ति उतना ही अधिक सभी तरह की मानसिक कार्यो को करने में प्रवीण होगा।
3. **थॉर्नडाइक का बहु–कारक**–बहुकारक सिद्धान्त में थॉर्नडाइक तथा गिलफोर्ड के सिद्धान्तों को रखा गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि विभिन्न कारकों का मिश्रण है जिसमें कई योग्यताएँ निहित रहती है। किसी भी मानसिक कार्य में विभिन्न कारक मिलकर एक साथ कार्य करते हैं। थॉर्नडाइक ने बुद्धि में सामान्य कारकों की आलोचना की। उन्होंने मानसिक योग्यताओं की व्याख्या में मूल कारकों एवं सामान्य कारकों का उल्लेख किया। उनके अनुसार विभिन्न मूल मानसिक योग्यताएँ जैसे–आंकिक योग्यता, तार्किक

योग्यता, भाषण योग्यता आदि व्यक्ति के समस्त मानसिक कार्यों को प्रभावित करती है। जब दो मानसिक क्रियाओं के प्रतिपादन में ध नात्मक सह–सम्बन्ध पाया जाता है तो स्पष्ट है कि उनमें सामान्य कारक निहित है।

4. थर्स्टन का समूह–कारक–इस सिद्धान्त का प्रतिपादन थर्स्टन (1938) द्वारा किया गया। थर्स्टन ने स्पीयरमैन के 'जी' कारक की मान्यता अस्वीकार की है। थर्स्टन के सामूहिक कारक सिद्धान्त में कुछ मानसिक क्षमताओं का एक सामान्य प्रधान कारक होता है जो इन सभी मानसिक प्रक्रियाओं को आपस में एक सूत्र में बाँधे रखता है। साथ ही साथ उनके मानसिक प्रक्रियाएं जिनका एक प्रधान कारक होता है, आपस में सहसंबंधित होती है और एक साथ मिलकर एक समूह का निर्माण करती है। इस समूह का प्रतिनिधित्व करने वाले कारक को प्रधान क्षमता की संज्ञा दी जाती है। इसी तरह, दूसरे की मानसिक प्रक्रियाओं को एक सूत्र में बाँधने वाला एक अन्य प्रधान कारक होता है। थर्स्टन ने अपने सिद्धान्त में सात प्रधान क्षमताओं का स्पष्टीकरण किया है। ये सात मानसिक क्षमतायें है–शाब्दिक अर्थ क्षमता, शब्द प्रवाह क्षमता, पैशिक क्षमता, आंकिक क्षमता, तर्कक्षमता, स्मृति क्षमता, प्रत्यक्षणात्मक गति क्षमता। इस तरह थर्स्टन ने अपने सिद्धान्त में सात प्रधान क्षमताओं के आधार पर बुद्धि की व्याख्या की।

5. गिलफोर्ड का त्रि–आयाम सिद्धान्त–गिलफोर्ड का विचार था कि बुद्धि के सभी तत्वों को तीन विमाओं में सुसज्जित किया जा सकता है। ये तीन विमाएँ हैं–1.संक्रिया 2. विषय वस्तु 3. उत्पादन

क. संक्रिया–संक्रिया से तात्पर्य व्यक्ति द्वारा की जाने वाली मानसिक प्रक्रिया के स्वरूप से होता है। गिलफोर्ड ने संक्रिया के आधार पर मानसिक क्षमताओं को पाँच भागों में बाँटा है–मूल्यांकन, अधिसारी चिन्तन, अपसारी चिन्तन, स्मृति, संज्ञान।

ख. विषय–वस्तु–इस विमा से तात्पर्य उस क्षेत्र से होता है जिसके एकांशों या सूचनाओं के आधार पर संक्रियाएँ की जाती हैं। गिलफोर्ड ने ऐसे एकांशों को चार भागों में बाँटा हैं–आकृतिक, सांकेतिक, शाब्दिक तथा व्यावहारिक।

ग. उत्पादन–इस विमा से तात्पर्य किसी विशेष प्रकार की विषय वस्तु द्वारा की गई संक्रिया के परिणाम से होता है। इस परिणाम को गिलफोर्ड ने 6 भागों में बाँटा, ये हैं–इाकइयाँ, वर्ग, सम्बन्ध, पद्धतियाँ, स्थानान्तरण तथा अपादान।

6. बर्ट एव वर्नन का पदानुक्रमिक सिद्धान्त–बर्ट एव वर्नन (1965) ने बुद्धि के सर्वाधिक नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। अपने इस सिद्धान्त में उन्होंने बुद्धि की तुलना एक पिरामिड से की जिसमें बुद्धि के भिन्न–भिन्न तत्वों या कारकों को एक पदानुक्रम के रूप में व्यक्त किया गया। पिरामिड के सबसे ऊपरी भाग में स्पीयरमैन के जी–कारक को रखा गया, जिसकी जरूरत सभी तरह के बौद्धिक या मानसिक कार्य को करने में होती है। एस–कारक सबसे निचली सतह पर तथा अन्य संकीर्ण समूह कारकों को इन दोनों के बीच में रखा गया है।

7. पियाजे का सिद्धान्त–पियाजे ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन 1920–30 तक कर लिया था उसका संशोधित रूप 1970 में प्रकाशित किया। पियाजे ने अपने इस सिद्धान्त को 'संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त' भी कहा है। इसके अनुसार बुद्धि एक

प्रकार की अनुकूली प्रक्रिया है, जिसमें जैविक परिपक्वता तथा वातावरण के साथ होने वाली अन्तःक्रियाएँ सम्मिलित होती हैं। इनके अनुसार जैसे–जैसे बच्चों में संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का विकास होता जाता है, वैसे–वैसे उनका बौद्धिक विकास भी होता जाता है। मार्गन, किंग, विस्ज तथा स्कौपलर (1986) ने लिखा है कि, ''पियाजे के विचार में बुद्धि एक ऐसी अनुकूली प्रक्रिया है जिसमें 'जैविक परिपक्वता का पारस्परिक प्रभाव तथा वातावरण के साथ ही कई अन्तःक्रिया दोनों ही सम्मिलित होती हैं।

बुद्धि परीक्षण के उपयोग

1. **बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिताएँ**–बुद्धि परीक्षणों का व्यापक प्रयोग किया जाता है। जीवन के विभिन्न क्षेत्र शिक्षा हो या व्यवसाय, उद्योग, सरकारी सेवा या व्यवहारिक अध्ययन, सब में इसकी आवशकता प्रतीत होती है। जब तक व्यक्ति की विभिन्न योग्यताओं को ज्ञात नहीं कर लिया जाता, तब तक उस व्यक्ति का दिशा–निर्देशन असम्भव है। अतः निर्देशन हेतु बुद्धि परीक्षण अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

शैक्षिक उपयोग–आज बुद्धि परीक्षणों का सर्वाधिक प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में किया जाता है–

(i) कक्षा में प्रवेश लेने में–बुद्धि परीक्षण द्वारा विद्यार्थियों की बौद्धिक क्षमता को ज्ञात कर उसके अनुसार उन्हें एक उपयुक्त कक्षा में प्रवेश देने में मदद मिलती है। अन्यथा अनुपयुक्त कक्षा में प्रवेश लेकर बालक कुसमायोजित हो जायेगें।

(ii) विद्यार्थियों का श्रेणीकरण–बुद्धि परीक्षण द्वारा शिक्षक विद्यार्थियों को उनकी क्षमतानुसार श्रेणी में विभक्त कर शिक्षा प्रदान कर सकता है। जैसे–प्रतिभाशाली, सामान्य बुद्धि आदि के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है।

(iii) पाठ्य विषयों के चयन में–इसके द्वारा विद्यार्थियों को उनकी बौद्धिक योग्यता व रूचि के अनुरूप शैक्षिक विषयों के चयन हेतु मार्गदर्शन दिया जा सकता है। इसके आधार पर चयन विषय विशेष में विशेषज्ञता लाते हैं।

(iv) व्यावसायिक निर्देशन–माध्यमिक स्तर से ही विद्यार्थियों को उनके व्यवसाय के लिए तैयार करने में परामर्शदाता व शिक्षक को मदद मिलती है। विद्यार्थी को उसकी बुद्धि के अनुरूप व्यवसाय चयन व व्यवसाय प्राप्ति हेतु आवश्यक पाठ्यविषय के चयन में सहायता मिलती है।

(v) विशेष शिक्षा की व्यवस्था हेतु–मन्द बुद्धि, प्रतिभाशाली या समस्याग्रस्त विद्यार्थियों की पहचान कर उनके अनुरूप शैक्षिक वातावरण के निर्माण में सहायता प्राप्त होती हैं।

2. **अनुसंधान में उपयोग**–मनोवैज्ञानिक, शैक्षिक एवं सामाजिक अनुसंधान में प्रदत्तों को एकत्रित करने में बुद्धि परीक्षणों का व्यापकता से प्रयोग किया जाता है। ये परीक्षण विविध प्रकार की शिक्षण विधियों के उदभव व प्रयोग में सहायक होते हैं।

3. **व्यावहारिक उपयोग**–व्यवहारिक जीवन की समस्याओं के निदान में बुद्धि

परीक्षण का प्रयोग उपयोगी है। उदाहरण—अभिभावकों को निर्देशन प्रदान करने में, जिससे वे अपने बच्चे की क्षमताओं को जानकर उसे स्वीकार करें व उसी के अनुरूप बच्चे से अपेक्षाएँ करें। लोगों की समायोजन सम्बन्धी समस्याओं की जानकारी में भी मदद मिल सकती है।

4. **व्यावसायिक उपयोग**—व्यवसाय हेतु सूचना प्रदान करने, किस व्यवसाय हेतु कितनी बौद्धिक क्षमता की आवश्यकता, व्यवसाय हेतु प्रशिक्षित अधिकारियों के चयन में, व्यवसाय के विकास के लिए व व्यवसाय में संलग्न लोगों के समायोजन में सहायता हेतु इसका उपयोग किया जाता है।
5. **पूर्व कथन करने में**—बुद्धि परीक्षणों का उपयोग कर किसी भी व्यक्ति के बारे में पूर्व कथन करने में मदद मिलती है। इसके अनुसार ही व्यक्ति अपनी भावी योजनाओं को रूप प्रदान करते है।

बुद्धि परीक्षण के प्रकार—बुद्धि परीक्षणों का दो कसौटियों के आधार पर वर्गीकरण किया गया है—

बुद्धि क्रियान्वयन के आधार पर—क्रियान्वयन के आधार पर बुद्धि परीक्षणों को व्यक्तिगत व सामूहिक श्रेणी में विभक्त किया जा सकता है। व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण में एक समय में केवल एक व्यक्ति पर बुद्धि परीक्षण बिने तथा साइमन द्वारा 1905 में विकसति किया गया। कोह ब्लॉक डिजाइन परीक्षण, पास अलांग परीक्षण आदि व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण के उदाहरण है।

सामूहिक बुद्धि परीक्षण, एक समय में एक से अधिक व्यक्तियों पर प्रशासित किया जा सकता है। सबसे पहला सामूहिक बुद्धि परीक्षण प्रथम विश्व युद्ध के दौरान अमेरिका में बनाया गया। युद्ध के समय कम से कम समय में बहुत से सैनिकों की बुद्धि का मापन करना था, इसलिए मनोवैज्ञानिकों ने सामूहिक बुद्धि परीक्षण जैसे आर्मी अल्फा परीक्षण तथा आर्मी बीटा परीक्षण आदि का निर्माण किया। कई भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने भी सामूहिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया, वे हैं—प्रयाग मेहता : सामूहिक बुद्धि परीक्षण (1962), एम0सी0 जोशी : मानसिक योग्यता परीक्षण (1960), आर0 के0 टण्डन: सामूहिक मानसिक योग्यता परीक्षण (1961) आदि।

बुद्धि एकांशों के स्वरूप के आधार पर—इस आधार पर इसके चार प्रकार बताए गए हैं—

1. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
2. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
3. क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण
4. अभाषाई बुद्धि परीक्षण

1. **शाब्दिक बुद्धि परीक्षण**—शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों में लिखित शब्दों या भाषा का प्रयोग किया जाता है ताकि परीक्षार्थी पढ़ कर प्रश्नों का उत्तर लिख सकें। इस तरह के बुद्धि परीक्षण में व्यक्ति का पढ़ा—लिखा होना आवश्यक है। कुछ शाब्दिक बुद्धि परीक्षण हैं—बिने—स्टेनफोर्ड परीक्षण, वैश्लर—वैलेव्यू परीक्षण, भाटिया बुद्धि परीक्षण, डॉ0 जलोटा सामूहिक साधारण मानसिक योग्यता परीक्षण।
2. **अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण**—इस प्रकार के परीक्षण में शब्दों, वाक्यों या संख्या

का प्रयोग निर्देश में तो होता है परन्तु उसके एकांशों में भाषा का प्रयोग नहीं होता। इसमें चित्रों, चिन्हों या आकृतियों का प्रयोग किया जाता है। रेवेन्स प्रोग्रेसव मेट्रिसेज, ड्रा ए मैन टेस्ट, पोस्टर्स मेज टेस्ट आदि प्रमुख अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण।

3. **क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण**—क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण में भाषा का प्रयोग निर्देश में हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। साथ ही एकांशों में भाषा का प्रयोग बिल्कुल नहीं होता। परीक्षार्थी के समक्ष कुछ वस्तुएँ वास्तविक रूप में उपस्थित की जाती हैं, जिनकों जोड़—तोड़ कर परीक्षार्थी सही करता है। परीक्षार्थी द्वारा जोड़—तोड़ में की गई त्रुटियाँ, उसमें लगे समय व परिशुद्धता के आधार पर बुद्धि की माप की जाती है। कुछ प्रमुख क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण हैं—क्यूब कन्सट्रंक्शन टेस्ट, अलैक्जेण्डर्स पास—एलांग टेस्ट, भाटिया बैटरी ऑफ इंन्टेलिजेन्स।
4. **अभाषाई बुद्धि परीक्षण**—यह परीक्षण क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण से मिलता—जुलता है। यह परीक्षण भाषा के बंधन से मुक्त होता है। इस तरह के परीक्षण में परीक्षार्थी को वस्तुओं का जोड़—तोड़ नहीं करना होता। ड्रा—ए—मैन परीक्षण व कैटेल संस्कृतियुक्त बुद्धि परीक्षण इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

प्रमुख बुद्धि परीक्षण—प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के विषय में संक्षिप्त ज्ञान आपको इकाई 3 में दिया गया है।

बोध प्रश्न—

टिप्पणी—क— नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।
ख— इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. बुद्धि क्या है?

....

2. बुद्धि के द्विकारक सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया?

....

3. बुद्धि परीक्षण में शाब्दिक बुद्धि परीक्षण का क्या उपयोग है?

....

4. परामर्शदाता बुद्धि परीक्षण का उपयोग क्यों करते है?

....

15.5 व्यक्तित्व परीक्षण एवं उपयोग

व्यक्तित्व का स्वरूप—व्यक्तित्व सम्पूर्ण व्यवहार का दर्पण है। व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति, व्यक्ति के आचार—विचार, व्यवहार क्रियाओं एवं उसकी गतिविधियों द्वारा होती है। व्यक्ति के व्यवहार में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक गुणों का मिश्रण होता है, जिसमें एकरूपता पायी जाती है। इस प्रकार व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार का समग्र गुण है। व्यक्ति का समस्त व्यवहार सामाजिक परिवेश से अनुकूलन करने के लिए होता है।

आलपोर्ट के अनुसार–''व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तंत्रों का गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करते हैं।'' आलपोर्ट ने अपनी परिभाषा में व्यक्तित्व के भीतरी गुणों तथा व्यवहार दोनों को सम्मिलित किया है।

वाल्टर मिसकेल के अनुसार–''व्यक्तित्व से तात्पर्य व्यवहार के उस विशिष्ट पैटर्न (जिसमें चिन्तन एवं संवेग भी सम्मिलित हैं) से होता है जो प्रत्येक व्यक्ति की जिन्दगी की परिस्थितियों के साथ होने वाले समायोजन का निर्धारण करता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर व्यक्तित्व का अर्थ स्पष्ट हो जाएगा, जो इस प्रकार हैं–

1. **मनोशारीरिक गुण**–व्यक्तित्व में न केवल शारीरिक गुण बल्कि सामाजिक गुण भी सम्मिलित होते हैं जो आपस में अन्तःक्रिया करते हैं। इनमें मुख्य तत्व हैं शीलगुण, संवेग, आदत, ज्ञान शक्ति आदि जो सभी मानसिक गुण हैं, इन सबका आधार व्यक्ति की तंत्रिकीय प्रक्रियाएँ है।
2. **गत्यात्मक संगठन**–व्यक्तित्व के ये मानसिक व शारीरिक गुण, एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं और इन दोनों का प्रभाव व्यक्तित्व पर दिखाई पड़ता है। ये गुण स्थिर नहीं होते, परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं, इसलिए इसे मन व शारीरिक गुणों का गत्यात्मक संगठन कहा गया हैं।
3. **पर्यावरण से समायोजन**–परिभाषा में तीसरी उल्लेखनीय बात यह है कि यह पर्यावरण से समायोजन पर बल देता है। वातावरण समान होने पर भी प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार, विचार आदि अपूर्व होता है, जिसके कारण उस वातावरण के साथ समायोजन करने का ढंग भी प्रत्येक व्यक्ति में अलग–अलग होता है अर्थात् व्यक्ति का समायोजन व्यक्तिगत भिन्नताओं से प्रभावित होता है।

अतः स्पष्ट है कि व्यक्तित्व में मानसिक व शारीरिक गुणों का समन्वय है जो गत्यात्मक है। जिसके कारण व्यक्ति का व्यवहार तथा विचार किसी भी वातावरण में अपने आप में अपूर्व होता है।

व्यक्तित्व के प्रकार–व्यक्तित्व संबंधी विभिन्नताओं को जानने के लिए व्यक्तित्व के प्रकारों को जानना आवश्यक है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न आधारों पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया है जो निम्न हैं–

1. क्रेचमर ने शारीरिक रचना की दृष्टि से निम्न प्रकार बताये हैं–

प्रकार

शक्तिहीन खिलाड़ी नाटा

दुबला, पतला, छोटे कंधे वाला भुजाएँ पतली, सीना छोटा। दूसरों की आलोचना करने वाला पर अपनी आलोचना नहीं सुनना चाहता। शरीर हृष्ट–पुष्ट व स्वस्थ सीना चौड़ा व उभरे कंधे, चौड़ी भुजायें मजबूत। दूसरों से सामंजस्य करना चाहता है।
शरीर छोटा, मोटा, गोल व चर्बी वाला। सीना नीचा और पेट निकला व चेहरा गोल। यह आरामतलबी व लोकप्रिय होते है।

2. युंग के अनुसार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से

प्रकार

अन्तर्मुखी	उभयमुखी	बर्हिमुखी

ये लोग समाज में मिलना जुलना पसंद नहीं करते। एकांत में रहना पसंद करते है। लेखक, वैज्ञानिक व दार्शनिक बनते है।इसमें अन्तर्मुखी व बर्हिमुखी दोनों के गुण विद्यमान होते है। यह व्यक्ति अपना व समाज दोनों का लाभ देखता है। इस प्रकार के लोगों को वाह्य जगत में रूचि होती है। ये व्यवहार कुशल होते हैं। ये अभिनेता, नेता या खिलाड़ी बनते हैं।

3.कैनन ने अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के आधार पर प्रकार बताए–

प्रकार

थायराइड ग्रन्थि वाला	पिट्यूटरी ग्रन्थि वाला	एड्रिनिल ग्रन्थि वाला

इस ग्रन्थि का विकास ठीक से न होने पर मंद बुद्धि बौने, दुर्बल, चिन्तित व उदास दिखाई देते हैं। इस ग्रन्थि का अधिक स्राव होने से या कम होने से शरीर का विकास ठीक से नहीं होता। इसका अधिक विकास होने पर व्यक्ति झगड़ालू व परिश्रमी होते है।

4. स्प्रैंजर ने समाजशास्त्रीय आधार पर प्रकार बताए–

प्रकार

सैद्धान्तिक आर्थिक धार्मिक राजनैतिक सामाजिक
कलात्मक

सिद्धान्तों पर अधिक बल देते हैं। हर चीज का मूल्यांकन आर्थिक दृष्टि से करते हैं। ईश्वर व आध्यात्मिकता में विश्वास। सत्ता व प्रभुत्व में विश्वास। समाज कल्याण में रूचि रखते हैं। कला व सौन्दर्य के पुजारी होते हैं।

व्यक्तित्व की विशेषताएँ–व्यक्तित्व में सम्मिलित गुण या व्यवहार देश काल व परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। किसी विशेष समय या परिस्थिति में देखकर व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को समझना कठिन होता है। परन्तु फिर भी कुछ ऐसे गुण हैं जिनके आधार पर अच्छे व्यक्तित्व का अनुमान लगा सकते हैं–

1. **आत्म चेतना**–व्यक्ति की क्रियाशीलता का आधार चेतना है। इस गुण के कारण ही उसमें सही व गलत का निर्णय, अहं भाव, कर्तव्य पालन का बोध होता है।
2. **समायोजन**–व्यक्ति अपने समाज व वातावरण से अनुकूलन स्थापित करने का प्रयत्न करता है।
3. **सामाजिकता**–जिस व्यक्ति में सामाजिकता की भावना का अभाव होता है वह समाज के साथ समायोजन नहीं कर पाता। व्यक्ति के सामाजिक गुणों को देखकर ही उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जाता है।
4. **दृढ़ संकल्प शक्ति**–एक अच्छे व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि वह लक्ष्य को

प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील और सजग रहे।

5. **साधन पूर्णता**—व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न साधन या युक्ति ढँढ़ता रहता है, जिससे उसमें कुछ अनुभव, रूचियाँ, गुण आदि अर्जित होते रहते हैं।
6. **एकीकरण**—व्यक्तित्व की समस्त क्रियाएँ एक—दूसरे से परस्पर सम्बन्धित रहती है, उनमें एकीकरण रहता है। व्यक्तित्व का कोई भी तत्त्व (शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि) अकेले कार्य नही करता। इन सभी तत्त्वों में एकता होती है।
7. **सन्तोष व उच्चाकांक्षा**—व्यक्ति में सन्तोष की भावना, निरन्तर आगे बढ़ने की इच्छा और उनका व्यक्तित्व विकास होता है। इससे उनके शारीरिक व मानसिक स्वास्थ का अनुमान लगाया जा सकता है।

व्यक्तित्व परीक्षण—व्यक्तित्व में व्यक्ति के शारीरिक व मानसिक गुणों को सम्मिलित किया गया है। अतः इन गुणों का मापन ही व्यक्तित्व परीक्षण कहलाता है। व्यक्तित्व का मापन करना एक जटिल प्रक्रिया है क्योंकि व्यक्ति तथा व्यक्तित्व आपस में जुड़े है तथा व्यक्ति के आंतरिक पक्षों को समझना व निष्कर्ष पर पहुँचना एक कठिन प्रक्रिया है। व्यक्तित्व निर्धारण करते समय कुछ विशेष शीलगुणों का चयन कर उनका माप करते है। चूँकि यह शीलगुण गत्यात्मक (परिवर्तित) होते हैं। इसलिए व्यक्तित्व का निर्धारण अनुमानतः किया जाता है। व्यक्तित्व परीक्षण की विधियाँ इस प्रकार हैं—

विधियॉ

व्यक्तित्व सूचियाँ   प्रक्षेपण विधियाँ   अन्य विधियाँ

1. शीलगुण माप सूची 2. समायोजन मूल्यांकन सूची 3. अभिवृत्ति माप सूची 4. रूचि माप सूची 5. मूल्य माप सूची।
1. शब्द साहचर्य परीक्षण 2. वाक्य पूर्ति परीक्षण 3. खेल प्रणाली 4. कहानी बनाओ परीक्षण 5. रोर्शा स्याही के धब्बे वाला परीक्षण 6. टी0ए0टी0 7. सी0ए0टी0।
1. साक्षात्कार 2. प्रश्नावली 3. निरीक्षण 4. व्यक्ति इतिहास विधि 5. समाजभिति 6. आत्मकथा 7. रेटिंग मापनी।

विविध प्रकार के व्यक्तित्व परीक्षण का वर्णन इकाई 4 में किया जा चुका है।

व्यक्तित्व परीक्षण का उपयोग—

1. व्यक्तित्व परीक्षण के प्रयोग से व्यक्तित्व के प्रकार का पता चलता है जिससे कि व्यक्ति के अनुरूप शैक्षिक विषयों के चयन में आसानी होती है।
2. व्यक्तित्व परीक्षण व्यक्तित्व के गुण एवं अवगुणों को प्रदर्शित कर देते है जिनका प्रयोग परामर्श एवं निर्देशन में किया जा सकता है।
3. इन परीक्षणों का उपयोग करके बालक को उसके अनुरूप व्यवसाय चयन करने हेतु निर्देशन दिया जा सकता है। जिससे कि वह रूचि व अभियोग्यता के अनुरूप व्यवसाय पाकर उसमें विकास तथा,

4. इन परीक्षणों के उपयोग से बालक के मन में दमित उन इच्छाओं का पता चलता है जो उसके व्यक्तित्व को दूषित एवं कुण्ठित कर रही है। इनको जानकर उपयुक्त निर्देशन के द्वारा इन कुण्ठाओं को दूर किया जा सकता है।
5. इन परीक्षणों का प्रयोग कर व्यक्तिगत कुसमायोजन में उपयुक्त निर्देशन दिया जा सकता है।
6. व्यक्तित्व परीक्षणों का प्रयोग शिक्षा, मनोविज्ञान व निर्देशन के क्षेत्र में अनुसंधान हेतु किया जाता हैं। इनके प्रयोग के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में नवाचार किया जाता है।
7. इन परीक्षणों का प्रयोग बालक के विषय में पूर्वकथन किया जा सकता है कि आगे भविष्य में यह बालक कैसा जीवन यापन करेगा।
8. व्यक्तित्व परीक्षणों का प्रयोग व्यवहारगत समस्याओं के कारणों को जानने हेतु किया जाता है जिससे कि बालक को उपयुक्त निर्देशन दिया जा सके।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

5. 'व्यक्तित्व' शब्द से तुम क्या समझते हो ?

....

6. व्यक्तित्व का सर्वाधिक उपयुक्त परिभाषा किसने दी है?

....

7. स्प्रेन्जर ने व्यक्तित्व के कुल कितने प्रकार बताये है?

....

8. व्यक्तित्व की विशेषताये बताइये?

....

9. दमित इच्छाये व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव डालती है?

....

15.6 अभिक्षमता परीक्षण एवं उनका उपयोग

अभिक्षमता का स्वरुप–अभिक्षमता किसी एक क्षेत्र या समूह में व्यक्ति की कुशलता की विशिष्ट योग्यता अथवा विशिष्ट क्षमता है। व्यक्ति के विकास एवं व्यावसायिक सफलता में माता पिता अभिक्षमता के महत्व को समझ सकें तो बालक के समुचित विकास हेतु उपयुक्त पर्यावरण तैयार किया जा सकता है। अतः अभिक्षमता व्यक्ति के सीखने व ज्ञान हासिल करने की अन्तःशक्ति है। किसी भी विद्यार्थी की अभिक्षमता को जानकर शिक्षक उसके निष्पादन के बारे में पूर्वानुमान लगा सकता है।

बिंघम के अनुसार–"अभिक्षमता किसी व्यक्ति के प्रशिक्षण के पश्चात् उसके ज्ञान, दक्षता या प्रतिक्रियाओं को सीखने की योग्यता है। दूसरे शब्दों में अभिक्षमता उस तत्परता अथवा रूझान से है जो किसी कार्य में भावी सफलता पाने हेतु आवश्यक होती है तथा जिसका प्रस्फुटन शिक्षा एवं अभ्यास द्वारा होता है।"

टुकमैन के अनुसार–"क्षमताओं एवं अन्य गुणों चाहे जन्मजात हो या अर्जित हो का एक ऐसा संयोग जिससे व्यक्ति में सीखने की क्षमता या खास क्षेत्र में निपुणता विकसित करने की क्षमता का पता चलता है, अभिक्षमता कहलाता है।"

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि–

1. अभिक्षमता व्यक्ति के भीतर एक तरह की अन्तःशक्ति होती है।
2. यह अन्तःशक्ति अर्जित भी हो सकती है या जन्मजात भी।
3. अभिक्षमता के आधार पर व्यक्ति के क्षेत्र विशेष में निष्पादन का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।
4. अभिक्षमता का रूचि, योग्यता व संतुष्टि से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।
5. यह व्यक्ति के गुण या विशेषताओं की ओर संकेत करती है, इसलिए यह व्यक्तित्व का अंग समझी जाती है।

अभिक्षमता परीक्षण–अभिक्षमता परीक्षण में व्यक्ति की किसी विशेष प्रकार के कार्य को करने वाली योग्यता का मापन करते है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा सभी अभिक्षमता परीक्षणों को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

1. सामान्य या विभेद अभिक्षमता परीक्षण।
2. विशिष्ट अभिक्षमता परीक्षण

1. सामान्य या विभेद अभिक्षमता परीक्षण–सामान्य अभिक्षमता परीक्षण वे होते हैं जिनके द्वारा विद्यार्थियों की किसी एक विशिष्ट क्षेत्र में नही बल्कि कई ऐसे विशिष्ट क्षेत्रों की अभिक्षमता का मापन एक साथ हो जाता है, इसलिए ऐसे अभिक्षमता परीक्षण को बहु–अभिक्षमता परीक्षणमाला भी कहा जाता है। इस प्रकार के परीक्षणों को चार भागों में बाँटा गया है।

1. दृष्टि एवं श्रवण सम्बन्धी परीक्षण
2. पेशी एवं हस्तश्रम सम्बन्धी परीक्षण
3. यान्त्रिक योग्यता वाले परीक्षण
4. लिपिक अभिक्षमता परीक्षण

1. **सामान्य अभिक्षमता परीक्षण बैटरी**–सन्–1947 में संयुक्त राज्य अमेरिका की नियुक्ति सेवा व्यक्तियों को रोजगार दिलाने हेतु इस बैटरी का उपयोग किया। इस परीक्षण माला का मानकीकरण 17 वर्ष से 39 वर्ष आयु के 3156 व्यक्तियों पर किया गया। इनमें 9 उपपरीक्षण हैं–1.सामान्य तर्क योग्यता 2. शाब्दिक अभिक्षमता 3. संख्यात्मक अभिक्षमता 4. स्थानागत अभिक्षमता 5. आकृति प्रत्यक्षीकरण 6. लिपिक प्रत्यक्षीकरण 7. क्रियात्मक सामंजस्य 8. अंगुली निपुणता 9. हस्तश्रम निपुणता।
2. **विशिष्ट अभिक्षमता परीक्षण**–इन परीक्षणों के द्वारा किसी एक ही तरह की अभिक्षमता का मापन किया जाता है। इसमें मुख्यतः वे परीक्षण सम्मिलित है जो शिक्षा एवं व्यवसाय के विशिष्ट क्षेत्रों जैसे–कला, चिकित्सा, विज्ञान, संगीत आदि का मापन करते है। ऐसे प्रशिक्षण को एककारक अभिक्षमता परीक्षण भी कहा जाता है। कुछ प्रमुख अभिक्षमता परीक्षण निम्न है–

चिकित्सा–मेडिकल कालेज दाखिला परीक्षण।

संगीत–1. सीशोर संगीत योग्यता परीक्षण, 2. ड्रेक संगीत अभिक्षमता परीक्षण 3. अलफियर संगीत उपलब्धि परीक्षण।

विज्ञान–1. स्टैंडर्ड विज्ञान अभिक्षमता परीक्षण 2. इंजीनियरिंग अभिक्षमता परीक्षण 3. मिनेसोटा इंजीनियरिंग अभिक्षमता परीक्षण।

कला–1 मायर कला निर्णय परीक्षण 2. नोवर कला योग्यता परीक्षण 3. ग्रेव डिजायन निर्णय परीक्षण।

कुछ अभिक्षमता परीक्षणों के विषय में इकाई 4 में जान चुके है।

अभिक्षमता परीक्षणों के उपयोग–निर्देशन के क्षेत्र में अभियोग्यता का अधिक महत्व है। किसी छात्र को शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन देते समय अभियोग्यता अपना विशेष महत्व रखती है।

- अभियोग्यता परीक्षण से व्यक्ति उपयुक्त व्यवसाय पाता है जिससे समय व शक्ति का अपव्यय रूकता है।

1. अभिक्षमता परीक्षण के माध्यम से अध्यापक, निर्देशक व माता–पिता को बच्चे की विशेष क्षमता का ज्ञान हो जाता है जिसके आधार पर वे उचित शैक्षिक पर्यावरण प्रदान कर, उसे विशेष क्षमता के विकास में योगदान दे सकते है।
2. अध्यापकों व निर्देशक को विद्यार्थियों के निष्पादन में पूर्ण कथन करने में सहायता मिलती है।
3. विद्यार्थियों को शैक्षिक निर्देशन देने में सहायता मिलती है। विषय की क्षेत्र विशेष में कुशलता का ज्ञान उसके भावी व्यवसाय के चयन में भी मदद देता है।
4. अभिक्षमता परीक्षण के आधार पर शिक्षक विद्यार्थियों का श्रेणीकरण कर उसके अनुरूप शिक्षा की योजना तैयार कर सकते है।
5. इसके द्वारा किसी क्षेत्र विशेष में विद्यार्थियों की समस्याओं को पहचान कर उनका निदान किया जा सकता है।
6. अभिक्षमता परीक्षण द्वारा न केवल व्यक्ति का बल्कि व्यवसाय या रोजगार का भी विकास संभव है। व्यवसाय विशेष में अपेक्षित योग्यता परखने वाले व्यक्तियों का चयन होने पर ही उसका विकास होगा।

15.7 उपलब्धि परीक्षण एवं उनका उपयोग

जिस प्रकार बुद्धि परीक्षण द्वारा जन्मजात बुद्धि की परीक्षा की जाती है, उसी प्रकार अर्जित ज्ञान परीक्षा करने के लिए उपलब्धि परीक्षण का निर्माण किया गया है। उपलब्धि परीक्षण को ज्ञानार्जन का निष्पत्ति–परीक्षण भी कहते है।

फ्रीमैन के अनुसार–''उपलब्धि परीक्षण वह अभिकल्प है जो एक विशेष विषय या पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों में व्यक्ति के ज्ञान, समझ एवं कौशल का मापन करता है।''

सुपर के शब्दों में–''उपलब्धि या क्षमता परीक्षण यह ज्ञात करने के लिए प्रयोग किया जाता है कि व्यक्ति ने क्या और कितना सीखा तथा वह कोई कार्य कितनी भली–भाँति कर लेता है।''

गे के विचार में–''उपलब्धि परीक्षण द्वारा ज्ञान या कौशल के किसी विशेष क्षेत्र में व्यक्ति की अर्जित निपुणता की वर्तमान स्थिति की माप होती है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से कुछ महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते है, वे हैं–

1. उपलब्धि परीक्षण द्वारा विद्यार्थियों की किसी विशेष क्षेत्र में अर्जित निपुणता या ज्ञान को मापा जाता है।
2. उपलब्धि परीक्षण एक मानकीकृत विधि पर आधारित होता है। इससे प्राप्त परिणामों द्वारा विद्यार्थियों के एक समूह की उपलब्धि की तुलना विद्यार्थियों के

दूसरे समूह की उपलब्धि से की जाती है।

3. इस प्रशिक्षण द्वारा पाठ्यचर्या के विभिन्न तथ्यों का मापन होता है। ऐसे परीक्षणों में विषय–वस्तु की वैधता का होना अनिवार्य है।

उपलब्धि परीक्षण के प्रकार–उपलब्धि परीक्षणको निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है–

प्रकार

मानकीकृत उपलब्धि परीक्षण अध्यापक निर्मित उपलब्धि
परीक्षण

सामान्य उपलब्धि परीक्षण विशिष्ट उपलब्धि परीक्षण

निबन्धात्मक वस्तुनिष्ठ
निदानात्मक

1. गणित
2. भाषा दोहराना
पहचानना
3. विषयों में उन्नति सरल शब्द पूर्ति
4. विज्ञान एकरूप
बहुचयनित

1. मानकीकृत उपलब्धि परीक्षण–मानकीकृत उपलब्धि परीक्षण वे होते हैं जिसमें पदों का चुनाव पाठ्यक्रमके अनुकूल हो तथा जिनकी प्रशासन विधि, निर्देश, समय–सीमा, फलांकन विधि निश्चित हो तथा मानकों की सारिणी तैयार की गई हो। मानकीकृत उपलब्धि परीक्षणों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता हैं–

अ–सामान्य उपलब्धि परीक्षण–सामान्य उपलब्धि परीक्षण में ज्ञान के सम्पूर्ण क्षेत्र का मापन एक ही प्राप्तांक के माध्यम से करते है। एक मानकीकृत परीक्षण माला में सामान्य रूप से चार, छह, दस या इससे अधिक परीक्षण होते हैं जो पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों पर आधारित होते हैं तथा उद्देश्य, न्यादर्श–चयन, विश्वसनीयता एवं वैधता के दृष्टिकोण से सामान्य होते हैं। इनका मुख्य रूप से प्रयोग सम्पूर्ण कक्षा की उपलब्धि का चित्र प्रस्तुत करने, विद्यालय के विभिन्न कक्षा की शैक्षिक वृद्धि मापन करने, तुलनात्मक अध्ययन करने में किया जाता है।

ब. विशिष्ट उपलब्धि परीक्षण–विभिन्न विषयों एवं योग्यताओं में ज्ञान का मापन करने हेतु विशिष्ट उपलब्धि परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है।

ꟾ **अध्यापक निर्मित उपलब्धि परीक्षण**–ऐसे परीक्षण जिन्हें विद्यालय के अध्यापक अपने स्थानीय उद्देश्यों की पूर्ति हेतु बनाते हैं, अध्यापक निर्मित उपलब्धि परीक्षण कहलाते

हैं। इनका प्रयोग स्थानीय एवं वर्तमान स्थितियों में किया जाता है।

अ–निबन्धात्मक परीक्षाएँ–निबन्धात्मक परीक्षाओं में व्यक्ति से कोई भी प्रश्न लिखित या मौखिक रूप से पूछा जाए तथा व्यक्ति उसका उत्तर विस्तार से या निबन्ध के रूप में प्रस्तुत करें। इसमें व्यक्ति अपने विचारों को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करता है, जिससे उसकी उपलब्धि के साथ–साथ व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप प्रतिबिम्बित होती है।

ब. वस्तुनिष्ठ परीक्षण–इन परीक्षणों से अभिप्राय उन परीक्षणों से है जिनकी रचना अध्यापक अपने अनुभवों के आधार पर उद्देश्यों की पूर्ति हेतु करता है। इन परीक्षणों में उद्देश्यों को निश्चित कर, समस्त पाठ्यक्रम में से प्रश्नों या पदों का चयन कर उन्हें परीक्षण के रूप में छात्रों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इनके द्वारा व्यक्ति की सफलता एवं असफलता के संबंध में जाना जाता है।

निदानात्मक परीक्षण–निदानात्मक परीक्षण का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों या व्यक्ति की कमजोरियों या कठिनाइयों को ज्ञात करना तथा उन विद्यार्थियों की पहचान करना, जिन्हें उपचार की आवश्यकता है। अतः इन परीक्षणों के परिणामों या प्राप्तांकों के आधार पर मनोवैज्ञानिक विद्यार्थियों के उन विषय–क्षेत्रों का पता लगाते हैं, जिनमें उन्हें कठिनाई होती है। इस तरह के परीक्षण का निर्माण विशेषज्ञों की मदद से किया जाता है।

उपलब्धि परीक्षण का उपयोग–फ्रीमैन (1965) तथा स्वार्ज (1977) ने उपलब्धि परीक्षण के महत्व को बताया–

1. उपलब्धि परीक्षण के परिणाम के आधार पर शिक्षकों को पाठ्यक्रम के निर्माण में काफी सहायता मिलती है। वे पाठ्यक्रम के कठिन अंशों को पहचान कर उसमें परिवर्तन लाते है तथा उसे विद्यार्थियों के क्षमताओं के अनुकूल बनाते हैं।
2. इन परीक्षणों के परिणाम के आधार पर शिक्षकों की कार्य कुशलता को आँकने में सहायता मिलती है।
3. इससे शिक्षकों को विद्यार्थियों की कक्षोन्नति करने में भी सहायता मिलती है। उपलब्धि परीक्षण द्वारा शिक्षक यह आसानी से तय कर लेते हैं कि किस विद्यार्थी को कक्षोन्नति मिलनी चाहिए।
4. उपलब्धि परीक्षण द्वारा विद्यार्थियों को अपने अर्जित गुणों को समझने का मौका मिलता है साथ ही साथ उन्हें अपने निष्पादन को सुधारने का भी अवसर मिलता है।
5. शिक्षक को इन परीक्षणों के माध्यम से विद्यार्थियों की विषय या क्षेत्र संबंधी समस्याओं को जानने में भी सहायता मिलती है। इसके आधार पर वे उन समस्याओं के कारणों को समझ, उन्हें दूर करने का प्रयास करते है।
6. उपलब्धि परीक्षण से शिक्षक छात्रों का वर्गीकरण कर लेते है।
7. इनसे छात्रों के सीखने व अनुभव प्राप्त करने की योग्यता का ज्ञान होता है।
8. इस परीक्षण से छात्र के अधिगम में वृद्धि का पता लगाया जा सकता है।
9. इससे विद्यार्थी के समझने की क्षमता को लाभ होता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

10. उपलब्धि परीक्षण किसे कहते है?

....

11. उपलब्धि परीक्षा कितने प्रकार की होती है?

....

12. उपलब्धि परीक्षण छात्रों के लिये कैसे उपयोगी है?

....

13 उपलब्धि परीक्षण में शिक्षकों को क्या सहायता मिलती है?

....

15.8 रूचि परीक्षण एवं उनका उपयोग

रूचि का अर्थ—साधारण शब्दों में रूचि का आशय किसी तथ्य, वस्तु या प्रतिक्रिया के प्रति ध्यान केन्द्रित करना है। रेबर के अनुसार प्रारम्भ में इस पद का प्रयोग ध्यान, जिज्ञासा, इच्छा, प्रेरणा आदि जैसे शब्दों के समानान्तर किया जाता था, परन्तु 1940 के बाद मनोवैज्ञानिकों ने इसके स्वरूप पर विचार शुरू किया। ड्रीवर एवं वालरस्टीन के अनुसार अभिरूचि पद का प्रयोग सामान्यतः दो अर्थो में होता है, ये हैं—1. कार्यात्मक अर्थ 2. संरचनात्मक अर्थ। कार्यात्मक अर्थ में अभिरूचि से तात्पर्य एक ऐसे भाव की अनुभूति से होता है जिसे एक सार्थक अनुभूति कहा जाता है तथा जो किसीं वस्तु पर दिये जाने वाले ध्यान या कोई किये जाने वाले कार्य से संबंधित है। संरचनात्मक अर्थ में अभिरूचि से तात्पर्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के एक ऐसे अर्जित या जन्मजात तत्व से होता है जिसके कारण उनमें किसी वस्तु के प्रति एक सार्थक अनुभूति उत्पन्न होती है।

रूचि के प्रकार—रूचियों का वर्गीकरण चार प्रकार से किया जा सकता है—

1. **अभिव्यक्त रूचि**—अभिव्यक्त रूचियों को व्यक्ति से पूछकर ज्ञात किया जाता है। इनमें व्यक्ति किसी वस्तु, प्रक्रिया, व्यक्ति आदि के संबंध में अपने विचार व्यक्त करता है। इस प्रकार की रूचियाँ बहुधा अविश्वसनीय होती है क्योंकि इसमें व्यक्ति अपने वास्तविक विचारों को छिपाकर गलत उत्तर देता है।
2. **प्रदर्शित रूचि**—प्रदर्शित रूचि को शब्दों द्वारा व्यक्त न करके व्यक्ति के व्यवहार के निरीक्षण द्वारा ज्ञात किया जाता है।
3. **परीक्षित रूचि**—जब किसी व्यक्ति का किसी विषय में ज्ञान तथा उस ज्ञान की उपलब्धि के प्राप्तांक समान हो तो कहा जाता है कि व्यक्ति उस ज्ञान की प्राप्ति में रूचि रखता है। इसका मापन विभिन्न निष्पत्ति परीक्षणों के माध्यम से किया जाता है।
4. **प्रपत्र रूचि**—जिन रूचियों का ज्ञान प्रमापीकृत रूचि प्रपत्रों तथा परीक्षणों के माध्यम से होता है। इनमें व्यक्ति की विशाल क्रियाओं के समूहों में से कुछ का चयन करना होता है जिनके माध्यम से उनकी रूचि को समझा जा सकता है।

रूचि परीक्षण—रूचि मापन में दो तकनीक अधिक लोकप्रिय हैं, जो अग्रलिखित हैं—

1. शिक्षक निर्मित प्रविधियाँ
2. मानक अभिरूचि सूचियाँ

1. शिक्षक निर्मित प्रविधियाँ—विद्यार्थियों की रूचियों को मापने के लिए कुछ तकनीकी ऐसी है जिनका प्रयोग शिक्षक करते हैं, जिससे वे शैक्षिक कार्यक्रमों का

मूल्यांकन करते हैं। ऐसी प्रविधियाँ हैं।

(i) **श्रेणीकरण**–इस विधि में शिक्षक विभिन्न तरह की शैक्षिक क्रियाओं की सूची तैयार करते हैं। साथ ही वे छात्रों को इन सूचियों में निर्धारित शैक्षिक कार्यक्रमों में अपनी रूचि के अनुसार क्रम या श्रेणीकरण करने को देते है। प्रथम श्रेणी उस कार्यक्रम को देते हैं जिसे सबसे अधिक पसंद करते हैं व द्वितीय कोटि में कम पसंद क्रिया को रखा जाता है। इस तरह श्रेणीकरण कर देने से छात्र विशेष की रूचियों को ज्ञात कर सकते है।

(ii) **चिन्हांकन सूची**–यह प्रविधि सबसे सरलतम हैं। इसमें शिक्षक विभिन्न शैक्षिक क्रियाओं की सूची तैयार करते हैं तथा विद्यार्थी अपने पसंद के शैक्षिक क्रियाओं में सही का चिन्ह लगा देते हैं। इससे कम समय में ही विद्यार्थियों की अभिरूचि का ज्ञान हो जाता है।

(iii) **स्वतंत्र अनुक्रिया प्रविधि**–इस प्रविधि में शिक्षक विद्यार्थियों से कुछ ऐसे प्रश्न करते हैं जो उनके शौक या क्रियाओं से संबंधित होते हैं। विद्यार्थी इन प्रश्नों की अभिव्यक्ति अपनी इच्छानुसार करने के लिए स्वतंत्र होता है। बाद में शिक्षक–विद्यार्थियों की प्रतिक्रिया का विश्लेषण कर उनकी अभिरूचि के बारे में ज्ञान प्राप्त करते है।

रूचि परीक्षण का उपयोग–निर्देशन एवं परामर्श प्रक्रियाओं में रूचि का महत्वपूर्ण स्थान है। वे समस्त निर्देशन व परामर्श प्रक्रियायें जो रूचि को ध्यान में न रखते हुये सम्पन्न की जाती है अपूर्ण एवं त्रुटिपूर्ण होती है।

- रूचि परीक्षण से वास्तविक रूचि का पता चलता है इससे निर्देशन के द्वारा उसे और विकसित करने का प्रयास किया जा सकता है।
- रूचि परीक्षण से काल्पनिक रूचियों का पता लगाकर उन पर समय व शक्ति अपव्यय को रोककर उनको परिवर्तित किया जा सकता है।
- अध्यापक बालक की रूचियों को जानकर उसके अनुसार कक्षा प्रबन्धन कर सकता है।
- रूचि परीक्षण विविध रूचियों की जानकारी भी देते है इससे अज्ञात व अप्रदर्शित रूचियों का भी पता चलता है जिन्हें प्रोत्साहित किया जा सकता है।
- शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन में रूचि परीक्षण का उपयोग अत्यन्त ही आवश्यक है। शैक्षिक निर्देशन के माध्यम से रूचिकर विषयों के चयन में सहायता दी जा सकती है तो व्यावसायिक निर्देशन के माध्यम से रूचि कर व्यवसाय चयन में सहायता दी जा सकती है।
- रूचि परीक्षण का निर्देशन हेतु अनुसंधान में भी प्रयोग किया जाता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये

14. रूचि क्या होती है?

....

15. परीक्षित रूचि क्या है?

....

15.9 सारांश

इस इकाई में आपने अनेक प्रमापीकृत परीक्षणों के विषय में जाना। इस इकाई को पढ़कर आप यह भी जान गये होगें कि प्रमापीकृत परीक्षण निर्देशन प्रक्रिया में अहम भूमिका निभाते हैं। यह इकाई पढ़कर आपको इनकी उपयोगिता को समझ गये होंगे।

15.10 अभ्यास प्रश्न

निर्देशन में प्रयुक्त विभिन्न परीक्षणों का विस्तार से वर्णन कीजिये तथा उनकी उपयोगिता भी बताइये।

15.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. बुद्धि एक सामान्यीकृत क्षमता है जिसके सहारे व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण क्रिया करता है विवकेशील चिन्तन करता है तथा समायोजन करता है।
2. स्पीयरमैन ने।
3. शाब्दिक योग्यता जानने हेतु।
4. बुद्धि का स्तर जानकर उसके अनुकूल व्यक्तिगत, शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन की सुविधा देने हेतु।
5. मनोगत्यात्मक, मनोदैहिक गुणों का संयोग।
6. ऑलपोर्ट ने।
7. 6 प्रकार–सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, सैद्धान्तिक, आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक।
8. समायोजन क्षमता, विशिष्टता, आत्मचेतना, दृढ़ संकल्प शक्ति, एकीकरण संतोष।
9. कुसमायोजित कर देती है।
10. अर्जित ज्ञान की परीक्षा।
11. मानकीकृत उपलब्धि परीक्षण व अध्यापक निर्मित उपलब्धि परीक्षण।
12. इनसे छात्रों को अपने ज्ञान का स्तर जानकर उसके अनुकूल उन्नति करना सम्भव।
13. छात्रों का स्तर जानकर उसके अनुकूल शिक्षण विधियॉ तय करके छात्रों को सहयोग देना सम्भव।
14. किसी काम को करने व जारी रखने की प्रवृत्ति।
15. जो रूचि विभिन्न निष्पत्ति परीक्षणों द्वारा मापी जा सकती है।

15.12 कुछ उपयोग पुस्तकें

वर्मा एवं उपाध्याय (1996) : शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन, रवि मुद्रणायल आगरा–2,

इकाई–16 विशिष्ट समूहों के लिये निर्देशन

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 विशिष्ट बालक की अवधारणाा एवं प्रकार

16.4 शारीरिक रूप से विकलांग बालक एवं उनका निर्देशन

16.5 मानसिक रूप से असामान्य बालक व निर्देशन

16.6 समस्याग्रस्त व्यवहार वाले बालक व निर्देशन कार्यक्रम

16.7 सारांश

16.8 अभ्यास प्रश्न

16.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.1 प्रस्तावना

प्रत्येक विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने अनेक सामान्य एवं कुछ असमान्य बालक आते है ये बालक अपनी शारीरिक, मानसिक एवं सांवेगिक विशिष्टताओं के कारण सामान्य बालकों से अलग हो जाते है जब ये विशिष्टतायें एवं समस्यायें चरम सीमा पर होती है तब ये विशिष्ट बालकों की श्रेणी में आते है। ऐसे बालक सामान्य बच्चों एवं सामान्य कक्षा व परिवार में भी समायोजित होने में अपने को असफल पाते है। तब इन्हें सहयोग की आवश्यकता होती है जो कि निर्देशन से ही सम्भव होती है। इनके लिये विशिष्ट शिक्षा एवं विशिष्ट निर्देशन की व्यवस्था की जाती है। इस इकाई में हम इस प्रकार के समूह के निर्देशन के विषय में विस्तार से पढ़ेंगे।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- विशिष्ट समूह के बच्चों की विशेषताओं एवं प्रकार को बता सकेंगे।
- विविध प्रकार के निर्देशन कार्यक्रम को विविध समूह की आवश्यकता के अनुसार वर्णन कर सकेंगे।

16.3 विशिष्ट समूह का अर्थ एवं विशेषतायें

व्यक्तिगत विभिन्नतायें जन्मजात होती है। प्रत्येक बच्चे की दक्षतायें, क्षमतायें, मानसिक व शारीरिक स्तर पृथक–पृथक होती है। मन्दबुद्धि, तीव्र, स्वस्थ व अस्वस्थ, सामान्य शारीरिक ढ़ाँचा एवं असामान्य शारीरिक ढ़ाँचा इत्यादि। असामान्य एवं औसत से परे, पृथक एवं भिन्न बालक ही विशिष्ट समूह के अन्तर्गत आते है।

जे0टी0 हण्ट ने विशिष्ट बालकों की परिभाषा देते हुये लिखा है कि–"विशिष्ट बालक वे हैं जो कि शारीरिक, संवेगात्मक व सामाजिक विशेषताओं में सामान्य बालकों से इतने पृथक हैं कि उनकी क्षमताओं को अधिकतम विकासार्थ शिक्षा सेवाओं की आवश्यकता है।"

क्रुकशांक ने विशिष्ट बालकों के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुये लिखा कि–विशिष्ट बालक वह है जो सामान्य बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक तथा संवेगात्मक वृद्धि तथा विकास से इतने पृथक है कि वे नियमित तथा सामान्य शैक्षणिक कार्यो से अधिकतम लाभान्वित नहीं हो पाते जिनके लिये विशिष्ट कक्षाओं एवं अतिरिक्त शिक्षण व सेवाओं की आवश्यकता होती है। इस परिभाषा से आपको ये बालक निम्न क्षेत्रों में पृथक दृष्टिगोचर हुये–

1 शारीरिक क्षेत्रों में पृथकता–

(i) बाह्य अपंगता; जैसे–लूला, लंगड़ा, बहरा, गूंगा आदि।

(ii) आन्तरिक अपंगता–हृदय की खराबी, फेफड़ों की दुर्बलता, निर्बल दृष्टि, ग्रन्थियों की खराबी आदि।

2. मानसिक क्षेत्रों में पृथकता–

(i) प्रतिभा–सम्पन्नता।

(ii) मन्द–बुद्धिता।

3. व्यक्तिगत सन्तुलन क्षेत्र में पृथकता–

(i) संवेगात्मक असन्तुलन।

(ii) सामाजिक असन्तुलन।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. विशिष्ट बालक किसे कहते है?

____

____

____

2. ये किससे पृथक होते है?

____

____

____

3. विशिष्ट बालक अलग क्यों होते है?

____

____

____

16.4 शारीरिक रूप से विकलांग बालक

निर्देशन प्रदान करने के दृष्टिकोण से निम्नांकित शारीरिक विकलांग बालको का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है इन्हें निर्देशन अलग से देना पड़ता है जब ये समायोजन नहीं कर पाते।

(i) दृष्टि–दोष से ग्रस्त बालक।
(ii) श्रवण–दोष से ग्रस्त बालक।
(iii) वाणी–दोष से ग्रसित बालक।
(iv) गामक–दोष से ग्रसित बालक।
(v) अन्य विशिष्ट शारीरिक दोषों से ग्रसित बालक।

आगे हम प्रत्येक के विषय में विस्तार से जानेगें।

1. **दृष्टि–दोष से ग्रस्त बालक**–दृष्टि–दोष कई प्रकार का हो सकता है; जैसे–कम दिखाई देना, निकट की वस्तु स्पष्ट दिखाई न दे, दूर की वस्तुएँ स्पष्ट दिखाई न देना; अन्धापन, तीव्र प्रकाश में धुँधला दिखाई देना, थोड़े से अन्धकार में ही बिल्कुल दिखाई न देना तथा सभी वस्तुएँ एक ही रंग की दिखाई देना। इन बालकों में पूर्ण अन्धे उतनी समस्या पैदा नहीं करते हैं जितनी कि अन्य दृष्टि–दोषों से ग्रसित बालक। खराब दृष्टि का प्रभाव बालक की निष्पत्तियों पर ही नहीं पड़ता है वरन् इससे बालक की समायोजन–शक्ति, व्यक्तित्व तथा रूचि आदि भी प्रभावित होती हैं। तृतीयतः पूर्ण अन्धे बालकों की शिक्षा की विशिष्ट व्यवस्था होती है किन्तु दूषित दृष्टि वाले बालक सामान्य दृष्टि वाले बालकों के साथ ही पढ़ते है। इससे भी समस्याएँ पैदा होती हैं क्योंकि सामान्य बालकों के लिए मुद्रित पुस्तकों के अक्षरों को पढ़ने में इन्हें कठिनाई अनुभव होती है, परिणामस्वरूप ये बालक लम्बे समय तक बोधगम्यता के साथ धाराप्रवाह अध्ययन नहीं कर सकते हैं।

दृष्टिगत दोषों के लक्षण–दृष्टिगत–दोषों से ग्रसित बालकों को निर्देशन सेवाओं से लाभान्वित करने की दृष्टि से निर्देशन कार्यकर्त्ता को सर्वप्रथम दृष्टिगत दोषों से ग्रसित बालकों का पता लगाना पड़ेगा, तदोपरान्त उनका निर्देशन करना पड़ेगा। परामर्शदाता निम्नांकित लक्षणों से दृष्टिगत दोषों का पता लगा सकता है :

(i) बालक आँखे बार–बार रगड़ता हो, पलकों के बाल नोंचता हो,
(ii) आँखे लाल या गंदी रहती हो,
(iii) ठीक से दिखायी न देता हो।
(iv) छोटी वस्तुएँ बड़े ध्यान से देखता हो।
(v) किताब आदि आँखों के अत्यन्त निकट लाकर पढ़ता हो।
(vi) एक वस्तु के दो प्रतिबिम्ब दिखाई देते हो।

(vii) साधारण प्रकाश से चकाचौंध आता हो।
(viii) रंगों की पहचान न कर पाता हो।

निर्देशन के उपाय–

उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर निर्देशन कार्यकर्त्ता को दृष्टिगत दोषों से युक्त बालकों का पता लगाना चाहिए, तदोपरान्त दृष्टिगत दोष की मात्रा को ज्ञात करने की आवश्यकता पड़ती है।

1. गम्भीर दृष्टि–दोषों से ग्रसित बालकों को निर्देशन प्रदान करनें हेतु विद्यालय के सामान्य संचालन में ही नियमित रूप से दृष्टि–संरक्षण कक्षाओं की व्यवस्था की जाय।
2. इन कक्षाओं में नेत्र–चिकित्सक वर्ष में समय–समय पर आकर दृष्टि–दोषों की जाँच करता रहेगा।
3. कक्षा–कक्ष सुन्दर ढंग से सज्जित होना भी आवश्यक हैं।
4. कक्षा–कक्ष में समुचित प्रकार की भी व्यवस्था रहनी चाहिए। लेखनादि के लिए प्रयुक्त कागज हल्के क्रीम रंग पर गहरे नीले या काले रंग से छपी मोंटी पंक्तियों से युक्त होनी चाहिए।
5. इस प्रकार के छात्रों के लिए विशिष्ट भोजन की व्यवस्था भी आवश्यक है। भोजन ऐसे तत्त्वों से युक्त होना चाहिए जो नेत्रों के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हो।
6. साधारण दृष्टि–दोषों से ग्रसित बालकों को साधारण कक्षाओं में ही दृष्टि सुधार हेतु निर्देशन प्रदान किया जा सकता है।
7. नियमित चिकित्सा के साथ ही साथ इनको विद्यालय की साधारण गतिविधियों में सामर्थ्यानुसार भाग लेने के अवसर प्रदान करने चाहिए।
8. इनके साथ व्यवहार करते समय अध्यापक को ध्यान रखना चाहिए कि वह बालकों को यह बोध न होने दे कि उनके साथ दृष्टि–दोष के कारण विशेष प्रकार का व्यवहार किया जा रहा है।

2. श्रवण–दोषों से ग्रस्त बालक–श्रव्य–दोषों से ग्रसित बालकों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है– पूरे बहरे तथा ऊँचा सुनने वाले। पूरे बहरे वे होते है जो कुछ भी नही सुन पाते है। निपट बहरे भी पुनः दो प्रकार के होते है–एक तो वे जो जन्म से बहरे होते है तथा दूसरे वे जो बाद में किसी कर्ण–रोग अथवा कर्णाघात के कारण श्रवण–शक्ति खो बैठते है। साधारणतया जन्म से बहरे गूँगे भी होते है। ऊँचा सुनने वाले अनेक प्रकार के होते है और उनका श्रेणी–विभाजन ऊँचा सुनने मात्रा के द्वारा किया जाता है किन्तु इसको श्रेणीबद्ध करने के पूर्व निर्धारित एवं निश्चित नियम नही है। इनके अतिरिक्त कुछ बालक कर्ण–रोगों से भी ग्रसित होते है; जैसे–कान का बहरा, कान का दर्द, कान में हर समय झनझनाहट का होना आदि। ये रोग बालकों की श्रवण शक्ति को प्रभावित कर सकते है। अतः इनका उपचार करके उनकी श्रवण–शक्ति

की रक्षा करने की आवश्यकता है। ऊँचा सुनने वाले तथा बहरों को शल्य–चिकित्सा द्वारा श्रवण–शक्ति प्रदान की जा सकती है। यदि शल्य–चिकित्सा के द्वारा यह सम्भव न हो तो उन्हें निर्देशन प्रदान करने की आवश्यकता होती है। ऊँचा सुनने वाले श्रवण–उपकरणों का प्रयोग करके भी समस्या का समाध ान कर सकते है।

निर्देशन के उपाय

1. अध्यापक को इन्हें गम्भीर रूप से निर्देशन प्रदान करना होता है। इस प्रकार के बालक न तो दूसरे की वाणी सुन सकते है और न उनकी नकल करके कुछ बोल ही सकते है। ये अपने भावों अस्पष्ट संकेतों के द्वारा ही प्रदर्शित कर सकते है।
2. अध्यापक इस प्रकार के बालकों के लिए अधर–अध्ययन कक्षा की व्यवस्था कर सकता है।
3. अध्ययन–कक्षाओं में बहरे बालकों के सम्मुख अध्यापक धीरे–धीरे स्पष्ट शब्दों में सम्बन्धित सहायक सामग्री की सहायता से भाषण दें और छात्रों को अपने (अध्यापक के) अधरों की गति को ध्यान पूर्वक देखने तथा उस गति का अनुकरण करते हुए उच्चारण करने को प्रोत्साहित करना चाहिए।
4. अधर–अध्ययन कक्षाऐं छोटी–छोटी हो जिससे सभी छात्र अपने अध यापक के अधरों की गति का स्पष्ट अध्ययन सुगमता से कर सकें।

3. वाणी–दोषों से ग्रस्त बालक–वैसे प्रमुख वाणी–दोषों में हम हकलाना, तुतलाना, फटातालू; कुत्तौष्ठ, श्रवण–दोष जनित वाणी–दोष, विदेशी स्वराघात, अटपटी वाणी तथा अनियंत्रित वाणी आदि को सम्मिलित करते है। इनमें कुछ दोष इन्द्रियगति होती है, कुछ कार्यगत तथा कुछ संवेगात्मक एवं पारिवारिक कारणों से होते है।

इन्द्रियों से सम्बन्धित दोषों का यदि अध्यापक को संदेह हो तो उपर्युक्त चिकित्सक के पास परीक्षार्थ बालक को भेज देना चाहिए तथा आवश्यक चिकित्सा की व्यवस्था करनी चाहिए। इन दोषों को अपने वयस्कों के अनुकरण से अपनाता है तथा इन दोषों को उसके घर तथा पड़ोस के वयस्क लोग साधारण तथा सामान्य रूप में ही स्वीकार कर लेते हैं। संवेगात्मक कारणों से जनित दोषों का भी सावधानी से उपचार किया जा सकता है।

निर्देशन के उपाय–

जब बच्चे को ज्ञात हो जाता है कि वे वाणी में असामान्य हैं तो वे संवेगात्मक तनाव के शिकार होते है, सामान्य बालकों से ही पृथक रहते है और यदि साथी उसकी नकल करते है या व्यंग्य करते है तो वह और भी अधिक एकाकी हो जाता है और अपने

वाणी–दोष को भी कम प्रदर्शित हेतु अपना बोलना और भी कम कर देता है। अध्यापक को इन बालकों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने की आवश्यकता होती है। दण्ड या अस्वीकृति समस्या को और अधिक गम्भीर बना देती है।

1. अध्यापक को चाहिए कि वह कक्षा को भी इस प्रकार के व्यवहार के लिए प्रेरित करें।
2. अध्यापक का प्रमुख उद्देश्य इन छात्रों में 'स्व' का सामाजिक रूप में विकास करना होना चाहिए। वाणी–दोषों से ग्रसित बालकों के लिए अध्यापक को वाणी–दोषों को दूर करने की उपायों का भी ज्ञान होना आवश्यक है।
3. उचित शिक्षण विधियों का भी प्रयोग करना चाहिए।

4. गामक–दोषों से ग्रसित बालक–गामक–दोषों से ग्रसित बालक वे हैं जिनका कोई शारीरिक अंग किन्ही कारणों से असामान्य है। शारीरिक अंगों की असामान्यता जन्मजात हो सकती है अथवा किसी रोग या दुर्घटना का परिणाम हो सकती है। इस प्रकार के बालक मानसिक रूप से स्वस्थ होते है, वे देख सकते है, वे सुन सकते है, बोल सकते है तथा सामान्य बालकों की भाँति अन्य मानसिक कार्य कर सकते है, किन्तु असामान्य अंग से सम्बन्धित कार्यो में वे सामान्य बालकों की अपेक्षा पीछे रह जाते है ये बालक क्षतिपूरक शक्तियों का विकास करके अपने व्यक्तित्व को असन्तुलित भी कर सकते है।

निर्देशन के उपाय–

1. अध्यापक का कर्तव्य है कि वह इन बालकों में आत्मग्लानि तथा आत्महीनता की भावना का विकास न होने दें और उनमें एक स्वस्थ 'स्व' का विकास करें।
2. अध्यापकों को इन छात्रों के साथ इस प्रकार व्यवहार करना चाहिए कि वे सामाजिक रूप में क्षतिपूरक शक्तियों का विकास न कर पायें।
3. बालक की व्यापक शारीरिक रचना तथा क्रियाओं में कोई कमी नही है, इस तथ्य का ज्ञान करना अध्यापक का सबसे प्रमुख कर्तव्य है।
4. अध्यापक को ऐसे बालकों में ऐसी क्षतिपूरक शक्तियों तथा क्षमताओं का विकास करना चाहिए जो सामाजिक हो तथा बालक में और भी अधिक दृढ़ तथा स्थायी 'स्व' का विकास करें।

5. शारीरिक दुर्बलताओं से ग्रस्त बालक–कुछ बालक शारीरिक रूप में इतने दुर्बल होते हैं कि वे सामान्य कार्य तथा खेल नही कर पाते है। इस प्रकार के बच्चों को भी उसी प्रकार निर्देशन देने की आवश्यकता पड़ती है जिस प्रकार अध्यापक शारीरिक अपंगता वाले छात्रों को देता है। बालकों में शारीरिक दुर्बलताएँ अनेक कारणों से आ सकती है। कुपोषण, लम्बी बीमारी, क्षय, हृदय रोग या शारीरिक रसायन–रचना आदि के कारण शारीरिक दुर्बलताएँ आ जाती है। शारीरिक शक्ति से हीन बालक सामान्य बालकों के साथ खेल नही सकता है, वह शीघ्र ही थकान का अनुभव करता है, शीघ्र ही क्रोधित हो जाता है, उसमें झुंझलाहट की मात्रा काफी अधिक होती है तथा वह सामान्य बालकों के साथ समायोजन भी स्थापित नही कर

पाता है। इससे व्यक्तित्व सन्तुलन सम्बन्धी समस्याएँ उठ खड़ी होती है।

निर्देशन के उपाय–

1. अध्यापक ऐसे बालकों को सन्तुलित व्यक्तित्व के विकासार्थ ऐसे अवसर प्रदान कर सकता है जिससे बालक पाठ्यक्रम तथा सह–पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं में अपनी शारीरिक सीमाओं को ध्यान में रखते हुए यथा सम्भव भाग ले सके।
2. इन बालकों के सम्बन्ध में अध्यापक का कर्तव्य है कि वह उनकी शारीरिक क्षमताओं तथा बौद्धिक स्तर को ध्यान में रखते हुए उनका पूर्ण सामाजिक विकास करें जिससे वे समाज के उपयोगी सदस्य बन सकें।
3. अध्यापक का भी कर्तव्य है कि वह बालकों की शारीरिक दुर्बलताओं को दूर करने के प्रयास भी करता रहे।
4. इसके लिए अभिभावकों से भी सहयोग लें।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4. वाणी सम्बन्धी दोष कब उत्पन्न हो सकता है?

____

____

____

5. श्रवण–दोष वाले बच्चों को निर्देशन देना कठिन क्यों होता है?

____

____

____

6. दषष्टि–दोष होने का पता परामर्शदाता कैसे पता लगा सकते है?

____

____

____

7. शारीरिक रूप से दुर्बल व्यक्ति क्यों चिड़चिड़ा हो जाता है?

____

____

____

9. शारीरिक विकलांगता का एहसास न हो इसके लिये अध्यापक को क्या करना चाहिए?

____

____

____

16.5 मानसिक रूप से असामान्य बालक व निर्देशन

क्रो0 एवं क्रो0 के शब्दों में "वह बालक जो मानसिक, शारीरिक, सामाजिक और संवेगात्मक आदि विशेषताओं में औसत से विशिष्टता इस स्तर की हो कि उसे वह अपनी विकास–क्षमता की उच्चतम सीमा तक पहुँचने के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता हो, असाधारण या विशिष्ट बालक कहलाता है।"

मनसिक रूप से असामान्य बालक वे हैं जो सामान्य बौद्धिक तथा मानसिक कार्यों से पर्याप्त मात्रा में दूर रहते है। विले ने ऐसे बालकों के सम्बन्ध में लिखा है कि ये बालक सीखने की क्षमता में सामान्य बालकों से काफी पथ्थक होते है। मानसिक रूप से असामान्य बालक मानसिक कार्यो को सामान्य बालकों की तुलना में या तो बहुत ही शीघ्रता तथा कुशलता के साथ कर सकते हैं या फिर काफी सामान्य बालकों के ऊपर तथा नीचे ही दिशाओं में होते है। सामान्य बालकों से ऊपर अच्छी कुशलता से मानसिक कार्य करने वाले बालक प्रतिभावान कहलाते है। तथा सामान्य बालकों की अपेक्षा कम काम करने वाले छात्र मन्दबुद्धि बालक कहलाते है। नीचे दोनों के सम्बन्ध में चर्चा की गयी है।

1. **प्रतिभा–सम्पन्न बालक**–प्रतिभाशाली बालक वे होते है जो सबमें सभी बातों में श्रेष्ठ होते है। स्किनर व हैरीमैन–"प्रतिभाशाली शब्द का प्रयोग उन 01 प्रतिशत के बच्चों के लिए किया जाता है जो सबसे अधिक बुद्धिमान होते है।

   क्रो0 एवं क्रो0–प्रतिभाशाली बालक दो प्रकार के होते है–1. वे बालक जिनकी बुद्धिलब्धि 130 से अधिक होती है जो असाधारण बुद्धि वाले होते है। 2. वे बालक जो गणित, विज्ञान, संगीत व अभिनय आदि में से एक से अधिक में विशेष योग्यता रखते है।

   अध्यापक तथा निर्देशन कार्यकर्ताओं का कर्तव्य है कि वे इन बालकों की प्रतिभाओं के पूर्ण एवं समुचित विकास हेतु आवश्यक निर्देशन प्रस्तुत करें। इन बालकों के उपयुक्त निर्देशन हेतु निम्नांकित तथ्यों को ध्यान में रखना पड़ेगा।

   (अ) पहचान–प्रतिभा–सम्पन्न बालकों को उपर्युक्त निर्देशन सेवाएँ उस समय तक प्रदान नही की जा सकती है जब तब कि उनकी पहचान न हो जाये। शिक्षा–अध्ययन हेतु राष्ट्रीय समिति ने प्रतिभा–सम्पन्न बालकों के सम्बन्ध में लिखा है; 'प्रतिभा–सम्पन्न वह बालक है जो उल्लेखनीय मानसिक कार्य के निष्पादन में काफी सन्तोषजनक प्रगति का प्रदर्शन करता है'। यह परिभाषा प्रतिभा–सम्पन्न बालकों के सम्बन्ध में अब तक जो संकीर्ण धारणा थी कि प्रतिभा–सम्पन्न बालक वही है जिसकी बुद्धिलब्धि काफी ऊँची है उस धारणा से बाहर निकालकर व्यापकता लाती है। इस परिभाषा के अनुसार–बालक की उच्च बुद्धि–लब्धि का ही होना आवश्यक नही है वरन् उसे किसी भी मानसिक क्षेत्र में सामान्य बालकों से काफी ऊँचा निष्पादन प्रदर्शित करना होता है।

   प्रतिभावान बालकों की उपर्युक्त परिभाषा के अतिरिक्त उनकी सही विश्वसनीय एवं वैध पहचान करने के लिए उनकी कुछ सामान्य लक्षणों का जानना भी आवश्यक है। प्रतिभा–सम्पन्न बालकों में सामान्यतया निम्नांकित लक्षण दिखाई देते हैं :

1. बालकों की बुद्धि–लब्धि साधारणतया ऊँची (प्रायः 130 से ऊपर)।
2. शारीरिक स्वास्थ्य तथा सामाजिक समायोजन।
3. चरित्र–परीक्षणों के आधार पर मापित नैतिक अभिवृत्ति में श्रेष्ठता।
4. शैशवास्था में अपेक्षाकृत शीघ्रता के साथ विकास।
5. विद्यालय–विषयों के मापन हेतु प्रयुक्त निष्पत्ति परीक्षणों।
6. तीव्र निरीक्षण–शक्ति, अच्छी स्मरण–शक्ति, तत्काल उत्तर क्षमता, ज्ञान की स्पष्टता एवं मौलिकता, विचारों को तार्किक विधि से प्रस्तुत करने की शक्ति तथा विशाल एवं मौलिक शब्दावली।
7. शब्दावली के प्रयोग में मौलिकता है, भाषा और भाव–प्रदर्शन में श्रेष्ठता।
8. प्रतिभा–सम्पन्न बालक व्यक्तिगत स्वास्थ्य तथा शारीरिक स्वच्छता का पूरा–पूरा ध्यान।
9. सामाजिक विकास सन्तुलन, सामाजिक कार्यों में प्रसन्नता से सहयोग।
10. विद्यालय में अध्ययन हेतु उपस्थित।
11. अध्यापक वर्ग तथा पारिवारिक सदस्यों के साथ व्यवहार मधुर।
12. सामान्य परिपक्वता–स्तर ऊँचा।
13. सष्जनात्मकता अधिक।

(आ) आवश्यकताएँ–इन बालकों की कुछ विशिष्ट आवश्यकताएँ भी होती है। इन आवश्यकताएँ की अवांछित रूप से पूर्ति होने पर इन बालकों में भी असामाजिकता के तत्वों तथा व्यवहारों का विकास हो जाता है किन्तु इनमें सामान्य तथा औसत बालकों की तुलना में असामाजिक व्यवहार अधिक मात्रा में और शीघ्रता से विकसित नही हो पाते हैं।

प्रतिभा–सम्पन्न बालकों की अनेक आवश्यकताएँ होती है। प्रतिभा–सम्पन्न बालकों की इन आवश्यकताओं को मास्लो ने उच्च स्तरीय आवश्यकताएँ कहकर पुकारा है। इन उच्च–स्तरीय आवश्यकताओं में हम ज्ञान, बोध, सौन्दर्यानुभूति तथा आत्मानुभूति से सम्बन्धित आवश्यकताओं को सम्मिलित करते हैं। इन उच्च–स्तरीय आवश्यकताओं की पूर्ति सामान्य रूप से घर तथा परिवार में नही हो सकती है। प्रतिभा–सम्पन्न बालकों की प्रथम विशिष्ट आवश्यकता अपनी इन उच्चस्तरीय आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होती है। प्रतिभा–सम्पन्न बालक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अन्य प्रतिभा सम्पन्न साथियों, अध्यापक, प्रशासक तथा अभिभावकों के साथ सम्पर्क स्थापित करके करता है।

सौन्दर्यानुभूति से सम्बन्धित आवश्यकताओं के अतिरिक्त प्रतिभा–सम्पन्न बालकों की और भी अनेक विशिष्ट आवश्यकताएँ होती है; जैसे–'स्व' का विकास, 'विश्व की समस्याओं का ज्ञान', मानव–व्यवहार का ज्ञान' 'उच्च–स्तरीय गणितीय ज्ञान' आदि। प्रतिभा–सम्पन्न बालक सष्जनात्मक शक्तियों का विकास करना चाहते हैं।

(इ) प्रतिभा–सम्पन्नों का निर्देशन–निर्देशन कार्यकर्ताओं तथा अध्यापक को प्रतिभा–सम्पन्न बालकों को निर्देशन प्रदान करने में विशेष सावधानी रखने की आवश्यकता होती है क्योंकि इनकी आवश्यकताएँ तथा विशेषताएँ

सामान्य बालकों से पष्थक् होती है। परामर्शदाता तथा अध्यापक को प्रतिभा–सम्पन्न बालकों के निर्देशन के सम्बन्ध में निम्नांकित तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए

1. प्रतिभा–सम्पन्नों की समुचित पहचान की जाए तथा उनकी विविध क्षमताओं की माप की जाए।
2. उन क्रियाओं को प्रारम्भ किया जाए जो प्रतिभा–सम्पन्नों की योग्यताओं, क्षमताओं तथा रूचियों के अनुकूल हो तथा उनका विकास करने में सहायक हो।
3. प्रतिभा–सम्पन्नों के कार्यो में रूचि प्रदर्शित की जाए तथा उनके कार्यो की प्रशंसा करके उन्हें प्रोत्साहित किया जाए।
4. कक्षा–कक्ष के सामान्य स्तर से ऊँचा उठाने हेतु सदैव प्रोत्साहित किया जाए।
5. नेतष्त्व गुणों के विकास, स्वाध्याय, चारित्रिक दष्ढ़ता, आत्म–निर्भरता तथा स्वतंत्र चिन्तन–शक्ति का निरन्तर विकास किया जाना आवश्यक है।
6. शिक्षक व्यक्तिगत ध्यान दें।
7. संस्कषति एवं सभ्यता की शिक्षा दी जाए
8. सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा दी जाए।
9. विशेष अध्ययन की सुविधा दी जाए।
10. सामान्य रूप से कक्षोन्नति दी जाए।
11. सामाजिक अनुभव के अवसर प्रदान किये जाए।
12. छात्रों को आत्म–मूल्यांकन तथा आत्म–विवेचन हेतु न केवल प्रोत्साहित ही किया जाये, वरन् इस कार्य में उनकी आवश्यक सहायता भी दी जाए।
13. उन्हें उच्च–स्तरीय शिक्षण प्रदान करने की व्यवस्था की जाए।

(ई) प्रतिभा–सम्पन्नों के लिए विशिष्ट क्रियाओं की व्यवस्था–प्रतिभा–सम्पन्न बालक न केवल अधिक कार्य ही कर सकते हैं, वरन् वे अधिक उच्च–स्तरीय कार्य भी करते हैं। कक्षा के सामान्य कार्य–कलाप उनकी विविध क्षमताओं की पूर्ति नही करते है और न सामान्य शिक्षण ही उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। कक्षा के कार्य को वह अतिशीघ्र कर लेता है; तदोपरान्त वह अन्य कार्यो में व्यस्त हो जाता है। वह ऐसे कार्य अधिक करना पसन्द करता है, जिससे उसकी प्रशंसा हो, या जो अन्य लोगों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित करें, जिनमें साहस हो, जो रोमांचकारी हो, जिनमें नवीनता हो, क्लिष्टता व जटिलता हो तथा जिनमें मौलिकता हो।

जो बालक शारीरिक संरचना, मानसिक शक्ति तथा व्यवहार में सामान्य नहीं हैं वे सभी विशिष्ट बालक कहलाते हैं। अब तक हम शारीरिक संरचना में पृथक् बालक एवं मानसिक क्षमताओं से सम्पन्न एवं समृद्ध बालकों का अध्ययन कर चुके हैं। नीचे उन बालकों का अध्ययन किया गया है जो मानसिक क्षमताओं में सामान्य तथा औसत बालकों से पिछड़े हुए हैं।

कुप्पू स्वामी ने पिछड़े बालक की निम्नलिखित विशेषताये बतायी हैं–

1. सीखने की धीमी गति।

2. निराशा का अनुभव।
3. समाज विरोधी काम में रूचि।
4. कम शैक्षिक लब्धि।
5. विद्यालय पाठ्यक्रम से लाभ लेने में असमर्थ।
6. सामान्य शिक्षण विधियों से शिक्षा ग्रहण करने में विफलता।
7. मानसिक रूप से अस्वस्थ।
8. निम्न बुद्धि लब्धि।
9. सामान्य बच्चों की तरह प्रगति में अयोग्य
10. अपनी व नीची कक्षा के कार्य में अयोग्य।
11. मान्यताओं में अटल विश्वास।
12. सामाजिक कुसमायोजन।
13. केवल अपनी चिन्ता।

शैक्षिक मन्दता के कारण–कुप्पूस्वामी के शब्दों में शैक्षिक पिछड़ेपन के अनेक कारण हो सकते है। जैसे कि–

1. सामान्य से कम शारीरिक विकास हो जो कि वंशानुक्रम या वातावरण के कारण हो।
2. शरीर में कोई दोष हो।
3. लम्बे समय तक कोई शारीरिक रोग लगा रह जाये।
4. निम्न स्तर की सामान्य बुद्धि हो।
5. परिवार में अत्यधिक निर्धनता हो जो कि आवश्यकतायें न पूरी कर पाते हो।
6. परिवार का बड़ा आकार होने से एकान्त स्थान अध्ययन हेतु न मिलता हो।
7. पारिवारिक कलह से बालक तनावग्रस्त रहता हो।
8. माता–पिता अशिक्षित हों।
9. विद्यालय का दोषपूर्ण संगठन व वातावरण भी बालक पर कुप्रभाव डालते हैं।

बौद्धिक स्तर का ज्ञान करने के लिए सामान्यतया बुद्धि–परीक्षण का सहारा लिया जाता है और बुद्धि–लब्धि के आधार पर बालकों का श्रेणी–विभाजन किया जाता है। जिन बालकों की बुद्धि–लब्धि सामान्यतया 75 से कम होती है उन्हें मन्द–बुद्धि बालक कहा जाता है। इन मन्द–बुद्धि बालकों को पुनः तीन उपश्रेणियों में विभाजित किया जाता है–

तारू1. जिनकी बुद्धि–लब्धि 25 से कम होती है। इन्हें जड़–बुद्धि कहा जाता है। ये समाज पर भार–स्वरूप होते हैं। ये कुछ भी कार्य नहीं कर पाते हैं। इन्हें किसी भी प्रकार की शिक्षा प्रदान नहीं की जा सकती है।

2. दूसरे वे जिनकी बुद्धि–लब्धि 25 से 50 मध्य होती है इन्हें मूढ़–बुद्धि कहा जाता है। इनमें भी बुद्धि की अत्यन्त कमी होती है। समाज के एक उपयोगी सदस्य के रूप में कार्य नहीं कर सकते हैं। निरीक्षण के अन्तर्गत ये कार्य कर सकते हैं। इन्हें शारीरिक कार्यो में प्रशिक्षण प्रदान किया जा सकता है और इसी प्रशिक्षण के आधार पर वे कार्य भी कर सकते हैं।

3. मन्द–बुद्धि होते हैं जिनकी बुद्धि–लब्धि 50 और 75 के मध्य होती है। इन्हें मूर्ख कहा जाता है और ये करीब–करीब औसत बालक के पास होते है। थोड़ी–सी सावधानी, परिश्रम तथा लगन के द्वारा इन्हें शिक्षा प्रदान की जा सकती है और इन्हें समाज का एक उपयोगी सदस्य बनाया जा सकता है। मन्द–बुद्धि बालकों में से तीसरी प्रकार के बालक ही सामान्य रूप में विद्यालय में आते हैं और परामर्शदाता तथा अध्यापक दोनों को ही इन्हीं से काम पड़ता है।

प्रो0 उदय शंकर ने लिखा है कि–''यदि पिछड़े बालकों को सामान्य बालकों के साथ शिक्षा दी जायेगी तो वे पिछड़ जायेगें फलस्वरूप वे अपने स्वयं के स्तर के बालकों से और अधिक पिछड़े हो जायेगें और विशिष्ट विद्यालयों में उनको अपनी कमियों का कम ज्ञान होगा और वे अपने समान बालकों के समूह में अधिक सुरक्षा का अनुभव करेगें। इन विद्यालयों में उनके लिये प्रतिद्वन्द्विता कम होगी और प्रोत्साहन अधिक।''

(आ) मन्द–बुद्धि बालकों का निर्देषन–

1. बालकों की क्षमताएँ तथा अभिरूचियाँ ही वास्तव में बालकों की शिक्षा का आधार होनी चाहिए। इस सिद्धान्त के आधार पर मन्द–बुद्धि बालकों की निम्न मानसिक क्षमताओं को उन्हें शिक्षा प्रदान करते समय सदैव ध्यान में रखना चाहिए। परामर्शदाता को इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उनके लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम की योजना निर्मित करनी चाहिए।
2. परामर्शदाता को विद्यालय के सभी शिक्षकों का सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता।
3. परामर्शदाता को मन्द–बुद्धि बालकों के लिए निदानात्मक कक्षाओं की व्यवस्था भी करनी चाहिए। भाषा, गणित तथा वाणी सम्बन्धी क्षेत्रों के लिए निदानात्मक कक्षाएँ अधिक उपयोगी होती हैं।
4. मन्द–बुद्धि बालकों के शिक्षण हेतु छात्र–केन्द्रित शिक्षण–पद्धतियाँ सदैव उपयोगी तथा अच्छी रहती है।
5. परामर्शदाता को सभी मन्द–बुद्धि की ओर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है।
6. इनकी कक्षाओं में पर्याप्त मात्रा में सहायक सामग्री की व्यवस्था होनी चाहिए।
7. इनके लिये विशेष पाठ्यक्रम की व्यवस्था होनी चाहिये।
8. इन्हें हस्तशिल्प व सांस्कषतिक विषयों की शिक्षा दी जानी चाहिये।
9. स्वतन्त्रता व आत्मविश्वास की भावना का विकास किया जाए।
10. परामर्शदाता को बड़ी सावधानी से इन बालकों की रूचियों तथा अभिवषत्तियों की खोज करनी चाहिए जिससे उन्हें आवश्यक तथा उपयोगी शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन प्रदान किया जा सके।
11. मन्द–बुद्धि बालकों के लिए उपयुक्त व्यावसायिक निर्देशन तथा नियुक्ति–सेवाएँ सबसे अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। इस महत्व के दो प्रमुख कारण हैं।
12. व्यावसायिक समायोजन के लिए इन्हें आवश्यक सहायता तथा निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है। व्यावसायिक समायोजन की शक्ति के विकास हेतु

विशिष्ट कक्षाओं के द्वारा इन बालकों को इस योग्य बना देना चाहिए वे अपना स्वतन्त्र जीवन व्यतीत कर सकें और जिस व्यवसाय में लग जायँ, उसके साथ सरलता तथा सुगमता के साथ समायोजन स्थापित कर सकें।

13. मन्द–बुद्धि बालकों के लिए जीवनोपयोगी शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता होती है। इनकी शिक्षा जीवन से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होनी चाहिए।

बोध प्रश्न–

fVIi.kh–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

10. मानसिक रूप से असमान्य बालक किसे कहा जाता है?

11. प्रतिभा–सम्पन्न बच्चों की पहचान कैसे की जाती है?

12. प्रतिभा–सम्पन्न बालक कुसमायोजित कब हो जाते है?

13. मन्द–बुद्धि बालक की क्या विशेषता होती है?

14. बच्चों की उपलब्धि पर किसका प्रभाव पड़ता है?

16.6 समस्याग्रस्त व्यवहार वाले बालक व निर्देशन कार्यक्रम

प्रत्येक प्राणी का व्यवहार उद्देश्यपूर्ण होता है। इनमें मानव प्राणी का व्यवहार विशिष्ट रूप से उद्देश्यपूर्ण होता है। मानव–व्यवहार न केवल उद्देश्यपूर्ण ही होता है वरन् कभी–कभी व्यवहार समायोजन–उपायों के रूप में भी किया जाता है। वे सामाजिक रीति–रिवाजों तथा मान्यताओं के विरूद्ध हों या समाज के अन्य व्यक्तियों के लिए आपत्तिजनक हों तो वे समस्यात्मक व्यवहार की संज्ञा प्राप्त कर लेते हैं। संक्षेप में, यदि बालकों का व्यवहार समाज अथवा सामाजिक संस्थाओं की रीति–रिवाजों, परम्पराओं, मान्यताओं तथा नियमों के उल्लेखनीय रूप में विरूद्ध होता है तो वह समस्यात्मक

व्यवहार कहलाता है।

वेलन्टाइन के अनुसार–'समस्यात्मक बालकों–शब्द का प्रयोग साधारणतः उन बालकों का वर्णन करने के लिये किया जाता है जिनका व्यवहार व व्यक्तित्व किसी बात में गम्भीर रूप से असामान्य होता है।'' समस्यात्मक व्यवहार वाले बालकों के अनेक प्रकार होते है। जैसे कि–1. चोरी करने वाला 2. झूठ बोलने वाला 3. क्रोध करने वाला 4. मादक द्रव्यों का सेवन करने वाला।

(अ) समस्यात्मक व्यवहार के कारण–बालक के समस्यात्मक व्यवहार के अनेक कारण हो सकते हैं। इनमें से कुछेक निम्नांकित प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं :

(i) **असुरक्षा की भावना**–विशिष्ट तथा सामान्य–दोनों की प्रकार की असुरक्षा की भावना पैदा होने से तनाव तथा चिन्ता का जन्म होता है। मानसिक तनाव तथा चिन्ता समस्यात्मक व्यवहार का एक प्रमुख कारण है।

(ii) **पारिवारिक परिस्थितियाँ**–बालक जब विद्यालय में जाने लगता है तब तक उसके व्यक्तित्व की नींव पड़ चुकी होती है। व्यक्तित्व की नींव की रूपरेखा में पारिवारिक परिस्थितियाँ अपना महत्व रखती है। परिवार ने जैसी नींव डाल दी है, विद्यालय उसी पर भवन खड़ा करेगा। परिवार ने बालक की आधारभूत आवश्यकताओं को किस सीमा तक पूरा किया है। इसका उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है।

(iii) **विद्यालय**–विद्यालय वातावरण भी बालकों में तनाव तथा चिन्ता की भावना का विकास करता है। यदि परिवार ने बालक को विद्यालय के लिए ठीक प्रकार से तैयार नहीं किया है और विद्यालय भी बालक को समायोजित होने के पर्याप्त अवसर प्रदान नहीं कर रहा है तो बालक के मन में तनाव व चिन्ता का जन्म होना स्वाभाविक ही है।

(iv) **आर्थिक स्थिति**–जब तक आधारभूत मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ पूरी होती रहती हैं, बालक निम्न आर्थिक स्थिति की चिन्ता न करेगा, किन्तु अगर उसकी इन आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती है तो वह तनाव एवं चिन्ताग्रस्त होकर समस्यात्मक व्यवहार करेगा।

(v) **सामाजिक स्थिति**–अगर समाज में रहकर बालक अपने को निम्न अथवा तुच्छ अनुभव करता है अथवा ऐसा अनुभव करने के लिए बाध्य किया जाता है है तो इससे बालक के मन में तनाव व चिन्ता हो सकती है।

(आ) समस्यात्मक बालकों का निर्देशन के उपाय–व्यवहार अनेक प्रकार के होते है उनके निराकरण हेतु विशिष्ट प्रयास की आवश्कता पड़ती है, फिर भी कुछ सामान्य बातें ऐसी हैं जो परामर्शदाता को सभी क्षेत्रों में ध्यान रखनी चाहिए।

(i) **अभिवृत्ति तथा व्यक्तित्व का मापन**–परामर्शदाता को बालक की अभिवषत्ति तथा व्यक्तित्च का मापन करना चाहिए। इससे परामर्शदाता को बालक के व्यवहार को समझने में सहायता मिलेगी।

(ii) **व्यवहार का मूल्यांकन**–परामर्शदाता को समस्यात्मक व्यवहार का मूल्यांकन करना चाहिए। मूल्यांकन के अन्तर्गत परामर्शदाता को समस्या

के प्रकार, उसकी गम्भीरता तथा कारणों को ज्ञात करना चाहिए। इससे परामर्शदाता को बालक की समस्या का निराकरण करने में सहायता मिलेगी।

(iii) घर के साथ सम्पर्क–स्थापन–परामर्शदाता को बालक के घर तथा परिवार का अध्ययन कर माता–पिता आदि के मानसिक स्वास्थ्य, आर्थिक व सामाजिक स्थिति आदि बातों का ज्ञान करना चाहिए। परिवार के सम्पर्क से बालक के समस्यात्मक व्यवहार के कारणादि को समझने में सफलता मिलेगी।

(iv) रोकथाम, निदानात्मक तथा उपचारात्मक सेवाओं की व्यवस्था–छात्र निर्देशन कार्यक्रम के अन्तर्गत समस्यात्मक व्यवहार के रोकथाम की व्यवस्था करनी चाहिए। इलाज से रोकथाम सदैव अच्छा रहता है, अतः परामर्शदाता को ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे बालक तनाव व चिन्ता से ग्रसित ही न हो।

(v) शिक्षक–वर्ग के साथ विचार–विमर्श–बालकों के समस्यात्मक व्यवहार को समझने के लिए परामर्शदाता को बालकों से सम्बन्धित शिक्षकों के साथ बालक के व्यवहार के सम्बन्ध में विचार–विमर्श करना चाहिए।

(vi) बालक के व्यवहार का अवलोकन–समस्यात्मक बालक अपने को अनेक प्रकार के समस्यात्मक कार्यो के द्वारा प्रदर्शित करता है तथा उसका प्रत्येक कार्य किसी न किसी विचार का प्रतिनिधित्व करता है। परामर्शदाता को, जहाँ तक सम्भव हो, बालक के व्यवहारों का अवलोकन करना चाहिए।

(vii) विशेषज्ञों के साथ सम्पर्क–व्यवहार को समझना अत्यन्त जटिल तथा कठिन कार्य है। समस्यात्मक व्यवहार को सही ढंग से साधारण शिक्षक अथवा परामर्शदाता सही रूप में समझ लें, यह आवश्यक नहीं, अतः परामर्शदाता को क्षेत्र से सम्बन्धित विशेषज्ञों के साथ सम्पर्क कर बालकों के व्यवहार को समझने का प्रयास करना आवश्यक है।

(viii) अनुसन्धान कार्य–सुविधा होने पर परामर्शदाता क्षेत्र से सम्बन्धित अनुसन्धान कार्य भी कर सकता है। शिक्षक वर्ग के अध्ययन, परामर्श तथा सुझाव अवैज्ञानिक तथा अपूर्ण हो सकते हैं।

(ix) व्यक्ति–अध्ययन–समस्यात्मक बालकों का अध्ययन करने के लिए व्यक्ति–अध्ययन पद्धतियाँ बहुत ही उपयोगी होती है। व्यक्ति–अध् ययन पद्धति के द्वारा किसी बालक–विशेष के सम्बन्ध में विस्तष्त अध् ययन किया जाता है तथा बालक के सम्बन्ध में सभी आवश्यक तथ्य संग्रहीत कर लिए जाते हैं, जिनके आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं और तदोपरान्त उपचारात्मक कार्य किए जाते हैं।

11. ऐसे बच्चों में परामर्शदाता आत्मविश्वास जगायें
12. बच्चे के स्थिति के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनायें।

13. बच्चे में परामर्शदाता नैतिक साहस की भावना का अधिकतम विकास करें।
14. बालक के लिये ऐसी संगति एवं वातावरण बनाने का परामर्श अध्यापक एवं परिवार को दिया जाये कि बालक सही व्यवहार करें।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये

14. समस्याग्रस्त व्यवहार के क्या कारण हो सकते है?

15. समस्याग्रस्त बालक को कैसे वातावरण की आवश्यकता होती है?

16. समस्याग्रस्त बालक के परामर्शदाता को किसका सहयोग लेना पड़ता है?

17. परामर्शदाता को अनुसंधान कब करना पड़ता है?

16.7 सारांश

इस इकाई में आपने जाना कि विशिष्ट बालक सामान्य बालकों के समूह को अलग होते हैं। उसका कारण शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक व व्यवहारगत विशिष्टतायें होती है जो इन बालकों को अलग कर देती है और सामान्य परिस्थितियों में कुसमायोजित भी कर देती हैं। ऐसे में निर्देशन ही इन्हें सामान्य जीवन जीने योग्य बना पाता है। यह इकाई आपके लिये लाभप्रद होगी।

16.8 अभ्यास प्रश्न

विशिष्ट बालक की परिभाषा देते हुये उनके प्रकार पर प्रकाश डालियें और सभी प्रकार के विशिष्ट बालकों के लिये उपयुक्त निर्देशन कार्यक्रमों की विवेचना कीजिये?

16.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. जो बालक अपनी कुछ विशिष्टताओं के कारण सामान्य बालक समूह से अलग होते है।
2. सामान्य बच्चों से।
3. अपनी शारीरिक, मानसिक, व्यवहारगत विशेषताओं के कारण।
4. जन्मजात, शारीरिक दोष, लम्बी बीमारी, आत्मविश्वास न होने के कारण।
5. क्योंकि वे कुछ भी सुन नहीं पाते तब समझाना कठिन।
6. बच्चे के व्यवहार व क्रियाकलाप से।
7. कोई **कार्य न कर पाने** की विवशता के कारण।
8. उससे सामान्य बच्चों की तरह ही व्यवहार करें व प्रतिक्रिया करें।
9. जो मानसिक क्षमता सामान्य बच्चों की तरह नही रखते है।
10. बच्चों की उच्च उपलब्धि व सृजनात्मक व मानसिक क्षमता के आंककर।
11. जब परिवार व अध्यापक आम बच्चों के जैसा व्यवहार करते है उसकी क्षमता का सम्मान नहीं कर पाते है।
12. उपलब्धि व मानसिक क्षमता में सामान्य बच्चों व सामान्य कक्षा में पिछड जाता है।
13. यह शिक्षा उसे आम कक्षा में नहीं मिल सकती है।
14. परिवार, विद्यालय, वंशानुक्रम व वातावरण का प्रभाव।
15. परिवार की उपेक्षा, विद्यालय का दूषित वातावरण परिवार की आर्थिक सामाजिक प्रस्थिति।
16. स्नेहपूर्ण, नैतिक साहस से परिपूर्ण साहसपूर्ण वातावरण।
17. अध्यापक, माता–पिता व समुदाय का।
18. जब नयी परिस्थितियों के साथ प्रार्थी निर्देशन के लिये आता है।

16.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. डा0 वर्मा एवं उपाध्याय (1996) : शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–3